50

भारतीय संसदीय लोकतंत्र के पचास वर्ष

1947-1997

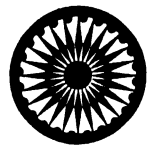

"...हमारी पीढ़ी के महानतम व्यक्ति की अभिलाषा
प्रत्येक व्यक्ति के आँख के आँसू पोंछने की रही है। हो सकता है कि
हम इतना कुछ न कर पाएं, किंतु जब तक लोगों की
आँखों में आँसू हैं और वे पीड़ित हैं,
तब तक हमारा कार्य पूरा नहीं होगा..."

– जवाहरलाल नेहरू

भारतीय संसदीय लोकतंत्र के पचास वर्ष

लोक सभा सचिवालय
नई दिल्ली
अगस्त 1997

© लोक सभा सचिवालय, नई दिल्ली, 1997

लोक सभा के प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन नियम (आठवां संस्करण) के नियम 382 के अन्तर्गत प्रकाशित और मैसर्स जैनको आर्ट इंडिया, 13/10, डब्ल्यु. इ. ए., करोलबाग, नई दिल्ली-110 005 द्वारा मुद्रित।

आमुख

वर्ष 1997 हमारी स्वतंत्रता का ही नहीं अपितु हमारे लोकतंत्र का भी स्वर्ण-जयंती वर्ष है। जब मैंने सभा में नेताओं को यह सुझाव दिया कि जयन्ती वर्ष मनाने का एक उपयुक्त तरीका यह होगा कि हम अपने नित्य-प्रति के सामान्य संसदीय कार्य के दबाव से पूर्णत: मुक्त होकर अपने लोकतांत्रिक अनुभव के बारे में आत्म-विश्लेषण सभा में ही करें, तो इसके लिए वे तुरन्त सहमत हो गए। उन्होंने मुझे 26 अगस्त से 29 अगस्त, 1997 तक सभा का एक विशेष सत्र बुलाने के लिए प्राधिकृत किया। यह प्रकाशन इसी संदर्भ में प्रकाशित किया गया है।

इस प्रकाशन में हमारी पांच दशकों की सफलताओं और विफलताओं तथा उपलब्धियों और कमियों पर दृष्टिपात किया गया है। इस में देश के महत्वपूर्ण क्षेत्रों से संबंधित उपलब्धियों का, स्वतंत्रता प्राप्ति से लेकर अब तक का, विस्तृत चित्रण किया गया है। किन्तु यह चित्रण सम्पूर्ण नहीं है। इन वर्षों के दौरान हमने अपने लोकतंत्र को कैसे चलाया है, उसे हम पांच बुनियादी मापदंडों की कसौटी पर परख सकते हैं। ये मापदंड हैं—राजनीतिक व्यवहार, अर्थव्यवस्था प्रबंधन, बुनियादी सुविधाओं का विकास, विज्ञान और प्रौद्योगिकी तथा, इन सबसे महत्वपूर्ण, मानव संसाधन विकास। इस संबंध में बारीकी से जांच करने के लिए देश के विभिन्न राज्यों में प्राप्त अनुभवों तथा अंतर्राष्ट्रीय अनुभवों को आधार बनाया गया है।

उपरोक्त विषयों को राजनीति से अलग रखकर तथा पारदर्शी और निष्पक्ष रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। समाधान सुझाने की दृष्टि से यह दस्तावेज निदेशात्मक भी नहीं है। निर्देश तो सभा द्वारा ही दिये जाते हैं।

यह कोई अतिरंजित दस्तावेज नहीं है, और सभा के सदस्यों द्वारा इसका उपयोग, तृण-मूल अनुभवों और समस्याओं को ध्यान में रखते हुए, एक संदर्भ-पत्र के रूप में ही किया जाना चाहिए। वर्ष 1997 का यह दस्तावेज यदि आगामी-सहस्राब्दि के लिए कार्यसूची तैयार करने में संसद सदस्यों के लिए सहायक सिद्ध होता है, तभी यह अपने उद्देश्य में सफल और स्मरणीय सिद्ध होगा।

मैं लोक सभा के महासचिव, श्री एस. गोपालन और लोक सभा सचिवालय के उन सभी अधिकारियों की सराहना करता हूं जिनके संगठित प्रयास और अनन्य निष्ठा के बल पर ही यह प्रकाशन संभव हो सका है जो मेरे विचार से निश्चय ही विचारोत्पादक सिद्ध होगा।

मैं इस कार्य हेतु, विशेषत: मानव संसाधन विकास से संबंधित खंड के लिए, डा. (श्रीमती) सरला गोपालन, सेवा-निवृत्त सचिव, महिला एवं बाल विकास विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा दिये गये योगदान की विशेष रूप से सराहना करता हूं।

पूर्णो ए० संगमा,
अध्यक्ष,
लोक सभा।

नई दिल्ली;
14 अगस्त, 1997

प्रस्तावना

लोक सभा, जनप्रतिनिधियों की सभा होने के नाते, हमारे शासन-तन्त्र में संपूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न जनता की आकांक्षाओं को तुरन्त प्रतिबिम्बित करती है। सरकार सामूहिक रूप से सदन के प्रति उत्तरदायी है। सदन का प्रत्येक सदस्य चुनाव प्रक्रिया के माध्यम से जनता के प्रति जवाबदेह है। सरकार की जवाबदेही सुनिश्चित करने हेतु सदन द्वारा इसकी नीतियों, कार्यक्रमों तथा कृत्यों की संवीक्षा की जाती है। यह प्रक्रिया, स्वतंत्रता के बाद से, दस लोक सभाओं में जारी रहते हुए अब ग्यारहवीं लोक सभा में भी विद्यमान है। इन वर्षों के दौरान अब तक की सभी सरकारों तथा लोक सभाओं के सामूहिक कार्य-निष्पादन का क्या परिणाम निकला है? इसका मूल्यांकन सदस्यगण उन तथ्यों के आधार पर स्वयं कर सकेंगे जो इस प्रकाशन में यथावत प्रस्तुत किये गये हैं।

सारा विश्व मानता है कि भारत इस समय दुनिया का सबसे बड़ा और सफल लोकतांत्रिक देश है। हमें यह प्रतिष्ठा अपने उस संविधान के मार्गदर्शन के फलस्वरूप मिली है जो अपने समय के कुछ अत्यन्त प्रबुद्ध व्यक्तियों और पहली पीढ़ी के नेताओं द्वारा प्रदत्त एक अद्वितीय राजनीतिक दस्तावेज है। वे लोग दूरदर्शी थे और इसी कारण उन्होंने उस समय ही हमारी आज की समस्याओं का पूर्वानुमान लगा लिया था। इनमें से कुछ समस्याएं, यथा—जनता के कतिपय महत्वपूर्ण वर्गों की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक उपेक्षा, जो अनुभूत अथवा वास्तविक हो सकती है; भेदभाव, जातीय तथा सामुदायिक विभाजन, सामाजिक हिंसा तथा आतंकवाद और शासन का भय भी—लोकतंत्र के अस्तित्व के लिए गंभीर खतरा बन गई हैं। इस प्रकाशन के विभिन्न स्वरूपों को, जहां भी संभव हो सका है, तथ्यों के साथ प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

माननीय अध्यक्ष श्री पी.ए. संगमा से मिले अपार प्रोत्साहन और सुदृढ़ अवलम्ब के बल पर ही मैं इस दस्तावेज को तैयार करने का साहस जुटा सका हूं।

इस दस्तावेज का प्रकाशन सूचना के अथाह भंडार ग्रंथालय और संदर्भ, शोध, प्रलेखन और सूचना सेवा (लार्डिस), की सहायता के बिना भी संभव नहीं हो सकता था। मैं 'लार्डिस' के सभी अधिकारियों, विशेष रूप से सर्वश्री जॉन जोसेफ, के. विजय कृष्णन, एन.के.आर. कलिंगन और डा. बी.सी. जोशी तथा कार्य के लिए सदैव तत्पर रहने वाले श्री सुरेन्द्र कौशिक और श्री प्रकाश चन्द्र भट्ट के नेतृत्व में संपादन और अनुवाद सेवा के अधिकारियों; और मुद्रण एवं प्रकाशन सेवा के प्रमुख श्री राधेश्याम और सहायक-निदेशकों सर्वश्री के.एल. धींगरा और एस.के. वर्मा के साथ-साथ माननीय अध्यक्ष के सहायक निजी सचिव श्री एस. वेंकटेशन और श्री पी.पी. शास्त्री, आशुलिपिक, के प्रति भी आभार व्यक्त करता हूं जिनकी वृत्तिक कार्य-दक्षता और निर्धारित ड्यूटी के बाद भी कर्तव्य के प्रति सत्य-निष्ठा के बिना 14 अगस्त की समय-सीमा के भीतर इस पुस्तक का प्रकाशन करना मेरे लिए संभव नहीं था।

मैं इस प्रकाशन के मुद्रक, जैनको आर्ट इंडिया के श्री सुधीर कुमार जैन का भी विशेष उल्लेख करना चाहता हूं जिन्होंने इस प्रकाशन को माननीय अध्यक्ष की आकांक्षाओं के अनुरूप सुरुचिपूर्ण रूप दिया है।

यदि इस प्रकाशन में कोई कमियां रह गई हों तो मैं उनके लिए स्वयं को पूरी तरह से उत्तरदायी मानता हूं।

नई दिल्ली;
14 अगस्त, 1997

एस० गोपालन,
महासचिव,
लोक सभा।

विषय सूची

अध्याय **पृष्ठ सं०**

भाग एक

1. **राजनीतिक जीवन (लोकतांत्रिक प्रणाली)** 1
हमारा संविधान—राष्ट्रीय आत्मानुभूति का सजीव दस्तावेज 2
जवाहर लाल नेहरू के "उद्देश्यपरक संकल्प" से उद्भूत आधारभूत विशेषताएं 2
संविधान, परिवर्तन का साधन 3
संविधान—सामाजिक परिवर्तन का एक वाहन 3
उद्देशिका तथा 42वां संशोधन 3
मौलिक अधिकार और उनको बेहतर बनाना 4
राज्य के नीति-निदेशक सिद्धांत तथा आदर्श कल्याणकारी राज्य की अवधारणा 4
अतिरिक्त मूल कर्त्तव्य 5
सत्ता का पृथक्करण — सत्ता का संतुलन 5
स्वतंत्र न्यायपालिका, विधि सम्मत् शासन पर निगरानी रखने वाला 5
संसद—न्यायपालिका के बीच संबंध 5
भारत—राज्यों का संघ, सहकारी संघवाद में प्रयास 6
राष्ट्रीय अखंडता 6
राज्यों का पुनर्गठन 6
नए राज्यों का सृजन 7
संघ-राज्य संबंध 7
चुनाव प्रक्रिया: लोकतंत्र की रक्षक 8
चुनाव प्रणाली 8
चुनाव सुधार 9
बहुराजनीतिवाद 9
दल प्रणाली 10
क्षेत्रीय दल 10
बदलती राजनीतिक परिस्थितियां 10
संसदीय प्रणाली—बढ़ते आयाम 11
विधायी निकाय — नई वास्तविकताओं से संघर्ष 12
हमारी प्रक्रियाएं एवं व्यवहार 12
संसद का बदलता स्वरूप 13
संसद—न्यायसंगति की व्यवस्थापर्क 13
भविष्य 14
संविधान की मूल विशेषताओं की जानकारी 14
सरकार के स्वरूप में परिवर्तन 15
राष्ट्रपति शासन लागू करने संबंधी विवाद 15
गठबन्धन सरकारें 16
सत्ता का विकेन्द्रीकरण और निचले स्तर तक राजनैतिक और प्रशासनिक शक्तियों में भागीदारी 17
हिंसा और आतंकवाद 18
संसद का निष्पादन 18
नौकरशाही का राजनीतिकरण 19
मूल कर्त्तव्य 19

भाग दो

2. **अर्थव्यवस्था** 21

एक

स्वातंत्र्योत्तर आर्थिक प्रगति 22
आर्थिक विकास 22

पृष्ठ सं०

पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि, निवेश और बचतें 23
सतत् विकास 27
विकास में कमी 27
त्वरित विकास 27
राष्ट्रीय आय और प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि 27
संसाधन जुटाना 28
वर्तमान राजस्व अधिशेष और पंचवर्षीय योजनाएं 28
योजनाओं के दौरान अतिरिक्त कराधान 29
सरकारी व्यय 29
राज सहायता 29
देय ऋण राशि 31
ब्याज भार 32
घाटे की वित्त व्यवस्था 33
सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों से प्राप्त राजस्व 34
आर्थिक सुधार और संरचनात्मक समंजन 34
सुधार संबंधी उपाय 35
सुधार परिणाम 35
विदेशी मुद्रा प्रवाह 35

दो

क्षेत्रीय परिदृश्य 37
कृषि 37
विकास दर 38
उत्पादन 38
उत्पादकता 38
पूंजी निवेश 39

तीन

उद्योग 40
पूर्व और वर्तमान नीतियां 40
औद्योगिक नीति संबंधी संकल्प 40
छठी और सातवीं पंचवर्षीय योजनाओं में किया गया विकास 41
निराशापूर्ण अवधि 42
नई औद्योगिक नीति 42
सरकारी क्षेत्र 43
राष्ट्रीय नवीकरण निधि (एनआरएफ) 43
विनिवेश 44
लघु क्षेत्र 44
औद्योगिक रुग्णता 45
औद्योगिक संबंध 46

चार

विदेश व्यापार 46
अतीत 46
आर्थिक सुधार का व्यापारिक पक्ष 48
व्यापार की रचना 49
भविष्य 51

पांच

विषमताएं 51
आय असमानता की समस्या 51
क्षेत्रीय असंतुलन 52

पृष्ठ सं०

भाग तीन

3. आधारभूत ढांचा.. 57

एक

पृष्ठभूमि. 58
व्यापकता 58
समग्र प्रभाव 58
निवेश संबंधी अपेक्षाएं 59
सरकारी क्षेत्र की प्रमुखता 59
देश में बदलता हुआ परिदृश्य 59
विकास—एक नजर में 60

दो

ऊर्जा 61
कोयला क्षेत्र. 61
विद्युत क्षेत्र. 62
पेट्रोलियम क्षेत्र. 66

तीन

परिवहन. 67
रेलवे क्षेत्र. 67
नीति संबंधी प्रारम्भिक उपाय 69
समस्याएं. 69
ह्रासोन्मुख बजटीय समर्थन 69
दो तरफा (क्रास) राजसहायता 70
सामाजिक दायित्व में वृद्धि 70
सड़क यातायात क्षेत्र. 70
नेटवर्क की तुलना में यातायात 70
सड़कों के विकास के लिए धनराशि 71
निजी क्षेत्र की भागीदारी 72
नागर विमानन क्षेत्र. 72
अतीत में 1953 तक 72
निजी क्षेत्र का प्रवेश 72
उदारीकरण 72
विमानपत्तन प्रबंधन: कुछ संरचनात्मक परिवर्तन 72
स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात की गई प्रगति 72
वर्तमान समस्याएं. 73
भविष्य. 74
नौवहन क्षेत्र. 74
महत्वपूर्ण नीतिगत पहलें 74
वास्तविक तथा वित्तीय प्रगति 74
समस्याएं 74
भविष्य 76
पत्तन क्षेत्र. 75
महत्वपूर्ण नीतिगत पहल 75
वास्तविक और वित्तीय निष्पादन 75
समस्याएं 75
भविष्य 75

चार

दूरसंचार. 76
ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य 76
मूल नेटवर्क का विस्तार 77
वर्तमान स्थिति 77
ग्रामीण क्षेत्रों से जोड़ना 77
समस्याएं/मुद्दे 78
भविष्य 78

पृष्ठ सं०

पांच

यहां से आगे कहां? 79

भाग चार

विज्ञान और प्रौद्योगिकी 81
इतिहास 81
1958 का वैज्ञानिक नीति संकल्प 82
योजनावधि के दौरान विज्ञान और प्रौद्योगिकी हेतु संसाधनों का आवंटन 82
अनुसंधान एवं विकास व्यय 83
विज्ञान और प्रौद्योगिकी का विकास—क्षेत्र परिदृश्य 85
परमाणु ऊर्जा 85
नाभिकीय ऊर्जा कार्यक्रम 85
अंतरिक्ष कार्यक्रम 86
भारतीय दूर-संवेदी उपग्रह प्रणाली 86
प्रक्षेपण-यान प्रौद्योगिकी 87
इलेक्ट्रोनिकी 87
महासागर विकास 87
अंटार्कटिका अनुसंधान कार्यक्रम 87
गहरे समुद्र तल में अन्वेषण 88
जैव प्रौद्योगिकी 88
औद्योगिक अनुसंधान 89
कृषि अनुसंधान 89
चिकित्सा अनुसंधान 90
भविष्य 90
अनुसंधान और विकास में कम निवेश 90
अपर्याप्त वैज्ञानिक और प्रौद्योगिक जनशक्ति 90
निजी क्षेत्र द्वारा अनुसंधान और विकास में कम योगदान 90
सरकारी संस्थानों द्वारा अनुसंधान और विकास : परिवर्तन की आवश्यकता 90

भाग पांच
मानव विकास

5. **जनसंख्या** 93
जनसंख्या का परिमाण 93
नीति तथा उपलब्धियां 93
लिंग अनुपात तथा निहितार्थ 94
उच्च मातृक मृत्यु दर 94
उच्च गर्भधारण दर 94
अंतर्राष्ट्रीय तुलना 94
देश के अंदर असमानताएं 95
जनांकिकीय परिवर्तन: एक स्थिति 96
निर्भरता अनुपात 97
शहरी जमघट 97
आर्थिक परिणाम 98
निराशाजनक शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद 98
जोतों का विखंडन 98
खाद्य सुरक्षा: प्रति व्यक्ति कम खाद्यान्न 98
अन्य परिणाम — भविष्य का दृश्य 98
धनी और निर्धन: अंतर 99
डा. स्वामीनाथन दल (ग्रुप) की रिपोर्ट 99
6. **खाद्य सुरक्षा और पोषण** 101
अतीत 101
खाद्य की कमी दूर करना 101
पोषण में प्रगति 101
सतत विद्यमान कुपोषण और रुग्णता 103
कारण 103
सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमियां 104

पृष्ठ सं०

7. **स्वास्थ्य** 106
अतीत.. 106
स्वास्थ्य संबंधी मूलभूत सुविधाओं का विस्तार. 106
स्वास्थ्य क्षेत्र में पूंजी निवेश. 107
स्वास्थ्य क्षेत्र की कमियां. 107
अशक्तता के कारण समयपूर्व मृत्यु 108
8. **शिक्षा** **109**
अतीत.. 109
संवैधानिक उपबन्ध 109
शिक्षा नीति का विस्तार 109
शिक्षा नीति का विकास 109
शिक्षा के क्षेत्र में निवेश 112
भविष्य के लिए चुनौती. 112
शैक्षणिक उपलब्धियों हेतु लक्ष्य निर्धारण 113
बुनियादी शिक्षा. 113
शिक्षक 115
अंतर-राज्यीय असमानताएं 115
प्रोत्साहन 116
संसाधन 116
भारत, पूर्व और दक्षिण-पूर्व एशिया 116
शिक्षा और कार्य जगत. 117
विद्यालय स्तर पर व्यावसायिक शिक्षा 117
शिल्पकार प्रशिक्षण 117
उच्च शिक्षा. 118
तकनीकी शिक्षा. 118
महिला शिक्षा. 119
अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की शिक्षा. 119
शिक्षा क्षेत्र के लिये संसाधन. 120
9. रोजगार **121**
अतीत. 121
रोजगार संबंधी परिदृश्य. 122
मुख्य क्षेत्रों में रोजगार 123
व्यावसायिक ढांचा : भारत, पूर्वी एशिया और दक्षिण एशिया 125
रोजगार वृद्धि संबंधी रुझान. 126
कार्य भागीदारी. 126
बेरोजगारी. 127
शिक्षित बेरोजगारी 128
रोजगार की विशेषता. 128
विगत उपलब्धि और भावी संभावनाएं. 129
10. श्रम मानक. 132
मानक और विधायी कार्य. 132
अनिश्चित रोजगार. 132
आधारभूत श्रम कानून. 133
बंधित श्रम (पद्धति) उत्सादन कानून 133
न्यूनतम मजदूरी कानून 133
समान पारिश्रमिक कानून 133
बाल श्रम 133
दोहरे श्रम मानदंड. 134
श्रम मानक और उत्पादकता. 134
व्यावसायिक सुरक्षा. 135
द्वितीय राष्ट्रीय श्रम आयोग. 136
11. **सामाजिक सुरक्षा.** 137
संवैधानिक प्रावधान. 137
अंतर्राष्ट्रीय सामाजिक सुरक्षा कन्वेंशन्स. 137
भारत के सामाजिक सुरक्षा संबंधी कानून और कार्यक्रम. 137
सामाजिक सुरक्षा सेवा उपलब्ध कराया जाना. 138

पृष्ठ सं०

असंगठित श्रमिक और सामाजिक सुरक्षा 138
कल्याण निधि संबंधी योजनाएं 138
आश्रितों के लिए सामाजिक सुरक्षा 139
12. गरीबी 140
गरीबी की स्थिति 141
13. महिलाओं और पुरुषों के बीच भेद 148
14. पर्यावरण 153
प्राक्कथन 153
पर्यावरणीय समस्याएं 153
प्रकृति और आयाम 153
पर्यावरण संबंधी ढांचा 155
संवैधानिक तथा विधिक प्रावधान 155
संस्थागत सहायता 156
योजना निवेश 156
प्रदूषण की रोकथाम और नियंत्रण 156
जल प्रदूषण 156
वायु प्रदूषण 156
भूमि प्रदूषण 158
ध्वनि प्रदूषण 158
राष्ट्रीय नीति संबंधी दस्तावेज 158
वन 159
विश्व-स्तरीय पहल 159

मूल पाठ बॉक्स

1.1 उद्देश्यों के संकल्प में क्या अन्तर्निहित था? 2
1.2 संविधान की मूल विशिष्टताएं 15
2.1 पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से सकल घरेलू उत्पाद का विकास, निवेश और बचत 23
3.1 विद्युत क्षेत्र के विकास में प्रमुख उपलब्धियां 63
4.1 अनुसंधान : क्या और कहां 83
4.2 विद्युत उत्पादन के लिए नाभिकीय ऊर्जा का उपयोग : प्रगति 85
5.1 जनसंख्या नीति की गतिविधियों का कलेंडर 93
5.2 डा. स्वामीनाथन (ग्रुप) की सिफारिशें 99
6.1 पोषाहार विकास तालिका 102
8.1 बुनियादी तथा शिक्षा के अन्य स्तरों पर कार्य-निष्पादन का तुलन-पत्र 114
9.1 पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से रोजगार नीति 121
9.2 रोजगार और बेरोजगारी की स्थिति 130
10.1 असंगठित श्रम की विशेषताएं 132
12.1 गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों का विस्तार 140
14.1 पर्यावरणीय कुप्रबंधन का स्वास्थ्य और उत्पादकता पर प्रभाव 154
14.2 भारत में पर्यावरण से संबंधित कानून 155
14.3 पर्यावरण संरक्षण के संबंध में अंतर्राष्ट्रीय पहल 159

विषय तालिकाएं

2.1 भारतीय अर्थव्यवस्था में 1950–1997 के दौरान सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि, बचत दर, निवेश दर और वृद्धिशील पूंजी उत्पाद अनुपात 23
2.2 भारतीय अर्थव्यवस्था हेतु क्षेत्रीय बचत दर 26
2.3 भारतीय अर्थव्यवस्था में क्षेत्रीय वृद्धि दर 26
2.4 विकास में क्षेत्रवार कुल अंशदान 26
2.5 राष्ट्रीय आय और प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि 28
2.6 कराधान की योजना पूर्व दरों के आधार पर वर्तमान राजस्व से शेष राशि 28
2.7 योजनाओं के दौरान अतिरिक्त कराधान 29
2.8 केन्द्र सरकार व्यय : मुख्य-मुख्य बातें 29

पृष्ठ सं०

2.9	केन्द्रीय सरकार द्वारा राजसहायता	30
2.10	ऋण सेवा भुगतान और ऋण अनुपात	31
2.11	राज्य सरकारों की भारत सरकार को देय बकाया ऋण देयता	32
2.12	सकल राजकोषीय घाटा	33
2.13	केन्द्र के सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों की लाभप्रदता	34
2.14	विदेशी प्रत्यक्ष निवेश : वास्तविक अंतर्वाह एवं स्वीकृतियां	36
2.15	विदेशी संस्थागत निवेशकों द्वारा कुल निवेश 1992-93 से 1996-97	36
2.16	मेजबान देशों द्वारा विदेशी प्रत्यक्ष निवेश अंतर्वाह	37
2.17	अखिल भारतीय स्तर पर कृषि उत्पादन की संयुक्त वृद्धि दरें	38
2.18	कृषि उत्पादन का रुख	38
2.19	मुख्य फसलों की प्रति हेक्टेयर पैदावार	39
2.20	चुने हुए देशों में प्रति हेक्टेयर औसत उपज	39
2.21	कृषि क्षेत्र में सरकारी और गैर-सरकारी क्षेत्र का अंश	39
2.22	राष्ट्रीय नवीकरण निधि योजना के अन्तर्गत स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति-लाभ ले चुके कर्मचारियों की उद्योगवार संख्या	43
2.23	कंपनियां जिनमें विनिवेश की सिफारिश की गई हैं	44
2.24	लघु उद्योग क्षेत्र का समग्र कार्य निष्पादन	44
2.25	रुग्ण औद्योगिक उपक्रमों की रूपरेखा	45
2.26	भारत : विश्व व्यापार में हिस्सा	47
2.27	सकल घरेलू उत्पाद के प्रतिशत के रूप में भारत का निर्यात तथा आयात	47
2.28	आयात, निर्यात और व्यापार संतुलन का विवरण	48
2.29	1990 के दशक में भारत के व्यापार की दशा	49
2.30	निर्यात तथा आयात की संरचना—1990 दशक	50
2.31	भारत और चुनी हुई एशियाई अर्थव्यवस्थाएं—एक तुलना	51
2.32	वर्तमान कीमतों के आधार पर ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में वर्तमान दरों पर प्रतिव्यक्ति मासिक औसत व्यय	52
2.33	आय का विवरण और उपभोग	52
2.34	भारत के विभिन्न राज्यों के मानव संसाधन विकास सूचकांक	53
2.35	संबंध आधारभूत विकास सूचकांक : 1980-81 से 1993-94	54
2.36	आधारभूत अवसंरचनात्मक सुविधाओं की उपलब्धता के संकेतांक	55
3.1	आधारभूत उद्योगों के कार्य निष्पादन का रुख	60
3.2	बुनियादी क्षेत्र की विकास दर का रुख	60
3.3	देश में विद्युत सेक्टर की वृद्धि	62
3.4	ताप संयंत्र भार गुणक	64
3.5	कृषि क्षेत्र से प्राप्त होने वाले राजस्व में अंतर	64
3.6	पेट्रोलियम क्षेत्र में उत्पादन रुझान	66
3.7	रेलवे : वास्तविक कार्यक्रम और उपलब्धियां	68
3.8	यातायात आउटपुट और इनपुट की वृद्धि के सूचकांक	68
3.9	कार्यक्षमता संबंधी पैरामीटर	70
3.10	क्षेत्र और जनसंख्या के अनुरूप चुने गये देशों के सड़क की लम्बाई—1994	71
3.11	नागर विमानन	73
3.12	विमान पत्तन क्षमता की अन्तर्राष्ट्रीय तुलना	73
3.13	दूरसंचार नेटवर्क में हुई प्रगति	77
3.14	दूरसंचार सेवा क्षेत्र प्रदर्शक, 1993	78
4.1	विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी परिव्यय	82
4.2	अनुसंधान और विकास पर व्यय 1950-51 से 1992-93	84
4.3	वैज्ञानिक और तकनीकी कर्मियों की अनुमानित संख्या : 1950 से 1990	84
5.1	जनसंख्या के मोर्चे पर उपलब्धियां	94
5.2	संसार के उन्नत क्षेत्रों और 12 अन्य अधिक जनसंख्या वाले देशों की तुलना में भारत की स्थिति	95
5.3	जनसंख्या मापदंड : कुछ राज्यों की उपलब्धि के आंकड़े जो राष्ट्रीय औसत से काफी कम हैं	96

पृष्ठ सं०

5.4	जनांकिकीय परिवर्तन की गति दर्शाने वाली जनसंख्या वृद्धि दर की प्रवृत्ति	96
5.5	निर्भरता अनुपात 1951-91	97
5.6	10 लाख से अधिक जनसंख्या वाले शहरों की जनसंख्या	97
5.7	भारत का शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद और प्रति व्यक्ति शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद 1951-94	98
6.1	साक्षरता-जागरुकता-पोषण-शिशु और बाल मृत्यु दर संबंध	103
6.2	प्रमुख आवश्यक पोषक तत्वों की कमी के कारण होने वाली विकृतियों की प्रतिशतता	104
6.3	चुनिन्दा एशियाई देशों और अमरीका में जन्म के समय कम वजन	105
7.1	स्वास्थ्य संबंधी मूलभूत सुविधाओं का विस्तार	106
7.2	सभी क्षेत्रों में किये गये योजनागत निवेश की तुलना में स्वास्थ्य क्षेत्र में किये गये योजनागत निवेश का अनुपात	107
7.3	प्राथमिक स्वास्थ्य रक्षा संबंधी बुनियादी सुविधाओं में अन्तर	107
7.4	मुख्य स्वास्थ्य रक्षा संस्थाओं में कर्मचारियों का अन्तर	108
8.1	1951 से मान्यताप्राप्त शैक्षणिक संस्थाओं का विकास	112
8.2	सकल राष्ट्रीय उत्पाद प्रतिशतता के रूप में शिक्षा पर हुआ व्यय	112
8.3	शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों पर पूंजीगत व्यय	113
8.4	बुनियादी और अन्य स्तरों पर दाखिले	113
8.5	अध्यापकों की संख्या के अनुसार प्राथमिक स्कूलों की स्थिति	115
8.6	महिलाओं के शिक्षा स्तर को पुरुषों की तुलना में दर्शाने वाला विवरण	119
8.7	गैर अ.जा./अ.ज.जा. की तुलना में अ.जा./अ.ज.जा. का शिक्षा संबंधी विवरण	119
9.1	1961 से 1991 तक कामगारों का वर्गीकरण	123
9.2	प्रमुख क्षेत्रों में रोजगार	124
9.3	औद्योगिक क्षेत्र में महिला और पुरुष कामगारों की स्थिति (1972-73 से 1993-94)	124
9.4	कृषि, उद्योग और सेवाओं में लगे श्रमिक (1960-90)	125
9.5	1990-92 के दौरान दक्षिण-एशिया में व्यावसायिक ढांचा	125
9.6	भारत में श्रमिकों के व्यावसायिक ढांचे में परिवर्तन का रुझान 1951-91	126
9.7	रोजगार स्थिति : 1977-78 से 1993-94	126
9.8	कार्य भागीदारी : शहरी-ग्रामीण और पुरुष-महिला विभेद	127
9.9	विश्व के चुने हुए देशों में श्रम भागीदारी	127
9.10	बेरोजगारी : पुरुष-महिला असमानतायें	127
9.11	बेरोजगारी (अर्ध-रोजगार) दर की दैनिक स्थिति में परिवर्तन	128
9.12	शिक्षित बेरोजगारी	128
9.13	पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान रोजगार सृजन	129
10.1	श्रमिकों की असंगठित श्रेणियों की रूपरेखा	133
10.2	बाल श्रमिकों की संख्या	134
10.3	भारत में श्रम उत्पादकता : एक अंतर्राष्ट्रीय तुलनात्मक विवरण	135
12.1	गरीबी रेखा (प्रतिमाह प्रति व्यक्ति व्यय) 1993-94	142
12.2	1973-74 के बाद के दो दशकों में गरीबी में कमी	142
12.3	विभिन्न राज्यों में 1973-74 से 1993-94 के बीच गरीबों की संख्या (गरीबी रेखा से नीचे रह रहे लोगों की संख्या अथवा अनुपात की व्यापकता)	144
12.4	नई सरकारी प्रक्रिया के अनुसार गरीबी रेखा (1973-74 से 1993-94)—ग्रामीण	145
12.5	नई सरकारी प्रक्रिया के अनुसार गरीबी रेखा (1973-74 से 1993-94—शहरी	146
12.6	कई वर्षों के दौरान गरीबी समूह का संक्षिप्त विवरण	147
14.1	आठवीं योजना और वार्षिक योजना परिव्यय : पर्यावरण और वन मंत्रालय	156
14.2	12 प्रमुख शहरों में अनुमानित प्रदूषण	157
14.3	राष्ट्रीय परिवेशी वायु गुणवत्ता मानक	158
14.4	शहरों से प्राप्त ठोस अपशेषों की रचना	158

सन्दर्भ 161

1

राजनीतिक जीवन
(लोकतांत्रिक प्रणाली)

देश ने अहिंसक संघर्ष के माध्यम से विदेशी शासन से जो आजादी पाई, वह मानव जाति के इतिहास में एक अद्‌भुत घटना थी। स्वतंत्रता आंदोलन एक आंदोलन होने के साथ-साथ हमारे लाखों लोगों की सामाजिक-आर्थिक मुक्ति का भी परिचायक था। हमारे महान नेताओं ने हमारे लिए एक उत्कृष्ट संविधान की रचना की जिसमें हमारे राष्ट्रीय लोकाचार और विश्व के बड़े-बड़े लोकतंत्रों की विशिष्ट बातों का समावेश किया गया। इस संविधान में अब तक अस्सी संशोधन किए जा चुके हैं और इक्यासीवां संविधान संशोधन विचाराधीन है। इन संशोधनों के माध्यम से हमने संविधान की प्रस्तावना को और अधिक गहन बनाया है, मौलिक अधिकारों को परिष्कृत किया है, नीति निदेशक तत्वों को पूरा किया है तथा कल्याणकारी राष्ट्र की स्थापना के साथ-साथ सामाजिक-आर्थिक क्रांति लाने का प्रयास किया है। अधिकारों के विभाजन पर सुन्दर ढंग से अमल किया जा रहा है। लोगों के वर्चस्व को विधायी निकायों में सुनिश्चित किया गया है, और न्यायपालिका की स्वतंत्रता का आदर करते हुए कार्यपालिका को आजादी और लचीलापन प्रदान किया गया है, ताकि वह अपने दैनिक प्रशासनिक कार्यों में बिना दखल-अंदाजी के अपने कार्यों का निर्वहन कर सके। देश की अखंडता कायम रखते हुए हमने राज्यों का पुनर्गठन किया तथा सहकारी संघात्मकता पर अमल किया। हमारा चुनाव तंत्र और संबंधित दिशा-निर्देश, स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव तथा सत्ता के सहज हस्तान्तरण में सहायक सिद्ध हुए हैं। बहुदलीय प्रणाली से मजबूत विपक्ष के उभरने में मदद मिली है, जिसके बिना सच्चे लोकतंत्र की कल्पना नहीं की जा सकती। इससे भिन्न-भिन्न समय में देश के भिन्न-भिन्न राज्यों में गठबंधन की सरकारों का बनना भी संभव हो सका है। संसद व्यापक समिति प्रणाली के माध्यम से सरकार के लगातार बढ़ते हुए उत्तरदायित्व को सुनिश्चित करने का प्रयास कर रही है। जनता को समता और सामाजिक न्याय उपलब्ध कराने के लिए इसने कानून के शासन की स्थापना की है।

समस्याएं भी बहुत हैं। बार-बार चुनावों, त्रिशंकु विधान-मंडल निकायों और गठबन्धनों का असर राजनीतिक स्थायित्व पर पड़ता है। गठबन्धनों को सुगम रूप से चलाने के लिए तंत्र अभी भी आदर्श रूप नहीं ग्रहण कर सके हैं। जाति, सम्प्रदाय और धर्म के तत्वों का राजनीति के साथ सम्मिश्रण राजनैतिक जीवन को संयोजित करता है। इस प्रकार के सुझाव भी सामने आए हैं कि संसदीय प्रणाली की जगह पर राष्ट्रपति प्रणाली को लाया जाए। राजनैतिक व्यवहार में मूल्यों के क्षरण के कारण संसद सदस्यों ने आचार तंत्र के पक्ष में जोरदार मांग की है। राज्यों में राष्ट्रपति शासन से संबंधित संवैधानिक प्रावधानों के प्रचालन के तरीके पर बहुधा यह आरोप लगाया गया है कि यह प्रजातांत्रिक सिद्धान्तों और राजनैतिक नैतिकता की प्रतिष्ठा कम करता है। संवैधानिक संशोधनों के बावजूद पंचायतीराज संस्थाओं के साथ राजनैतिक सत्ता की भागीदारी शाश्वत यथार्थ नहीं बन सकी है। इस तरह की शंकाएं हैं कि संसद की बहुधा उग्र कार्यसंचालन शैली एक संस्था के रूप में इसमें गिरावट का संकेत देती है। परंपरा से हटकर दिए गए न्यायालयों के निर्णयों से न्यायिक सक्रियता की शिकायतें बढ़ती हैं। सरकार की निष्क्रियता को संसद के प्रति इसकी जवाबदेही के क्षरण के रूप में देखा जा रहा है। व्यापक हिंसा तथा घरेलू और सीमा-पार की विभिन्न आतंकवादी घटनाओं और क्षेत्रीय आंदोलन, जो संभवत: राजनैतिक एवं आर्थिक विलगाव के द्योतक हैं, पर गंभीरतापूर्वक ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है। इन सबसे बढ़कर, चुनाव सुधारों की मांग की जा रही है, ताकि लोकप्रिय सरकारों की स्थापना की इस प्रक्रिया का परिमार्जन किया जा सके।

आज भारत को स्वतंत्र हुए पचास वर्ष हो गए हैं। एक ऐसा राष्ट्र जिसका इतिहास पांच हजार साल पुराना हो, उसकी सरकार के कार्यकलापों के वास्तविक आकलन के लिए संभवत: पांच दशकों का समय बहुत ही कम है। इसकी भौगोलिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, भाषायी तथा अनेक प्रकार की अन्य विविधताओं की विशालता और जटिलता के कारण यह और भी कठिन हो जाता है। तथापि, चूंकि हम स्वतंत्रता की पचासवीं वर्षगांठ मना रहे हैं, यह उचित होगा कि हम अपनी राजनीतिक प्रणाली, इसकी संचालन संबंधी दशाओं और कुछ समस्याओं का मूल्यांकन करें।

हमारा संविधान—राष्ट्रीय आत्मानुभूति का सजीव दस्तावेज

भारत को विदेशी शासन से मुक्ति अहिंसात्मक संघर्ष के पश्चात् मिली जो कि अब तक के विश्व इतिहास में अनूठा है, हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन का उद्देश्य केवल उपनिवेशवाद को बेड़ी को उतार फेंकना नहीं था। स्वतंत्रता संघर्ष में यह दृढ़ विश्वास

अन्तर्निहित था कि राजनीतिक स्वतंत्रता के साथ-साथ लाखों देशवासियों को सामाजिक-आर्थिक स्वतंत्रता प्रदान करने के लिए कड़े प्रयास किए जाएं। हमारे राष्ट्रीय जीवन के विविध पहलुओं से जुड़ी असंख्य समस्याओं ने हमारे राष्ट्रीय नेतृत्व के समक्ष उपस्थित चुनौतियों को और भी विशाल बना दिया। यह हमारा सौभाग्य ही था कि जब हम स्वतंत्र हुए, हमारे देश में अनेक दिग्गज नेता थे जिन्हें अपने समक्ष उपस्थित कार्य की विशालता का पूर्ण आभास था और जिनके मन-मस्तिष्क में स्पष्ट अवधारणा थी कि भारत के लिए कौन सा मार्ग अथवा प्रणाली उपयुक्त रहेगी। उनकी बद्धिमत्तापूर्ण दूरदर्शिता और कल्पनाशील राजनीतिज्ञता की अभिव्यक्ति हमारे देश के संविधान में हुई है जिसे उन्होंने विरासत के रूप में हमें सौंपा है और जो आकाशदीप की भांति हमारी दिशा और मार्ग को प्रशस्त करता है।

जिन महिलाओं और पुरुषों को स्वतंत्र भारत के संविधान का प्रारूप तैयार करने का महत्वपूर्ण कार्य सौंपा गया था। वे ऐसे नेता थे जिन्हें देश में व्याप्त अनेक बुराइयों का पूर्ण ज्ञान था। देश के कोने-कोने से आकर उन्होंने संविधान सभा को लघु भारत बना दिया तथा इस सभा में लोगों की इच्छाओं और आकांक्षाओं की बात उठाई। पहनावा, खान-पान, भाषा तथा राजनीतिक विश्वास में भिन्न होते हुए भी वे अपने उद्देश्य अर्थात् स्वतंत्र भारत के व्यापक हित के लिए एकमत थे। उन्हें पूर्ण ज्ञान था कि उनका मूल्यांकन इतिहास और इससे भी बढ़कर आने वाली पीढ़ी करेगी। उन्हें इस बात का भी पता था कि वे देशवासियों की आकांक्षाओं और अभिलाषाओं तथा उनमें व्यक्त विश्वास को झुठला नहीं सकते। वे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के इस सुविचारित दृष्टिकोण से पूर्णत: सहमत थे कि "स्वराज" अंग्रेजों का दिया हुआ मुफ्त उपहार नहीं हो सकता बल्कि इसे तो स्वतंत्र रूप से चुने हुए भारत के जन-प्रतिनिधियों के माध्यम से व्यक्त जनाकांक्षाओं से नि:सृत होना चाहिए।

संविधान सभा दो वर्ष ग्यारह माह और अट्ठारह दिनों की अवधि में एक सौ छियासठ बार समवेत हुई।

26 नवम्बर, 1949 को संविधान के अंगीकार किए जाने तक संविधान सभा के प्रतिष्ठित सदस्यों ने अन्य देशों में प्राप्त अनुभवों को देखते हुए इसके प्रत्येक उपबन्ध पर पूरी तरह से चर्चा की थी, जबकि निस्संदेह हमारी आवश्यकताओं तथा वास्तविकताओं को ध्यान में रखा गया था। जैसा कि स्थिति सामने आई संविधान में ब्रिटेन, आयरलैंड, फ्रांस, दक्षिणी अफ्रीका तथा अमेरिका के संविधानों की कुछ विशेषताओं को शामिल किया गया जबकि इसमें भारत के लोकाचार तथा मूल्यों पर आधारित विशिष्ट भारतीय दृष्टिकोण दिखाई देता है।

जवाहर लाल नेहरू के "उद्देश्यपरक संकल्प" से उद्भूत आधारभूत विशेषताएं

पश्च दृष्टि के साथ, हम इन राजनेताओं की बद्धिमता पर केवल आश्चर्यचकित हो सकते हैं जो संविधान की पांडुलिपि का प्रारूप बनाने के लिए कांस्टिट्यूशन हॉल में एकत्रित हुए थे। जैसा कि विगत पचास वर्षों के हमारे अनुभव से पता लगता है, हमारा संविधान राष्ट्रीय स्वायथार्थता का एक गतिशील दस्तावेज रहा है। प्रत्येक अर्थ में, संविधान राष्ट्र की आत्मा को प्रतिबिंबित करता है और हमारे लोगों की एकता तथा हमारी संप्रभु इच्छा का प्रतीक है। संविधान का आधारभूत दर्शन पंडित जवाहर लाल नेहरू द्वारा निर्धारित किया गया था जिन्होंने "उद्देश्यपरक संकल्प" का प्रस्ताव किया था, जो उनके लिए एक घोषणा, एक दृढ़ संकल्प, एक शपथ, एक वचनबद्धता थी तथा हम सभी के लिए एक समर्पण था। अपरिहार्यत: 22 जनवरी, 1947 को अंगीकृत किये गये उद्देश्यपरक संकल्प को आने वाले दिनों में संविधान सभा का मार्गदर्शन करना था।

बाक्स 1.1 : उद्देश्यों के संकल्प में क्या अन्तर्निहित था?

- भारत एक स्वतंत्र, संपूर्ण प्रभुता-संपन्न, गणराज्य है।
- भारत तत्कालीन ब्रिटिश भारतीय क्षेत्रों, भारतीय रजवाड़ों और ब्रिटिश भारत के बाहर अन्य भागों तथा उन राज्यों जो कि संघ का हिस्सा बनने के इच्छुक हैं, का संघ होगा।
- संघ का हिस्सा बनने वाले क्षेत्र स्वायत्त एकक होंगे तथा वे सरकार और प्रशासन की, संघ को सौंपी गई या उसमें निहित को छोड़कर, सभी शक्तियों और कृत्यों का कार्यान्वयन करेंगे।
- संपूर्ण प्रभुता संपन्न स्वतंत्र भारत तथा उसके संघटकों की सभी शक्तियां और प्राधिकार जनता में समाहित रहेंगे।
- भारत के सभी नागरिकों को कानून और लोक नैतिकता के अनुरूप, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय; जीवन स्तर में समानता और विधान के समक्ष अवसर तथा बातचीत, अभिव्यक्ति, विश्वास, निष्ठा, पूजा, व्यवसाय, संसर्ग और कार्य की गारंटी और सुरक्षा दी जाएगी।
- अल्पसंख्यकों, पिछड़े और जनजातीय क्षेत्रों, दलितों तथा अन्य पिछड़ी श्रेणियों को पर्याप्त संरक्षण दिया जाएगा।
- इस गणराज्य की क्षेत्रीय अखंडता और भूमि, समुद्र और आकाश में इसके प्रभुता संपन्न अधिकारों को न्याय तथा सभ्य राष्ट्रों के विधान के अनुरूप कायम रखा जाएगा।
- यह देश विश्व-शांति और मानव के कल्याण को बढ़ावा देने में अपना पूर्ण तथा स्वैच्छिक सहयोग देगा।

संविधान, परिवर्तन का साधन

हमारे संविधान का एक विशिष्ट लक्षण इसका बदलती हुई राष्ट्रीय आवश्यकताओं के अनुरूप ढालने का प्रासंगिक लचीलापन है। यह रचनात्मक वर्षों के दौरान विशेषरूप से सहायक रहा है क्योंकि हमें बदलती परिस्थितियों के अनुरूप अनेक संशोधन करने पड़े।

संविधान में लचीलेपन का तत्व लाना क्यों आवश्यक था, इस बात को स्पष्ट करते हुए पण्डित नेहरू ने संविधान सभा में यह टिप्पणी की:

> ...जबकि हम इस संविधान को एक ऐसा ठोस और स्थायी ढांचा बनाना चाहते हैं जितना हम इसे बना सकते हैं; फिर भी संविधानों में कोई स्थायित्व नहीं होता है। इसमें कतिपय लचीलापन होना चाहिए। यदि आप किसी भी चीज को कठोर और स्थायी बनाएंगे, तो आप उस राष्ट्र की प्रगति को अवरुद्ध कर देंगे जो कि जीवित महत्वपूर्ण जनता की प्रगति है। अत: इसको लचीला होना चाहिए.....। विशेषकर, आजकल जहां विश्व में भारी हलचल मची हुई है और हम तेजी से परिवर्तन के एक त्वरित दौर से गुजर रहे हैं तो जो कुछ हम आज कर रहे हैं, हो सकता है यह कल पूरी तरह उपयुक्त न हो। अत:, जब हम एक ऐसा संविधान बना रहे हैं जो ठोस है, और जितना हो सके मूलभूत है, तो यह लचीला भी होना चाहिए और कुछ समय के बाद हमें इसे संगत सुविधा के साथ बदलने की स्थिति में होना चाहिए। इस तरह, संविधान आंशिक रूप से लचीला और आंशिक रूप से कठोर पाया जाता है। स्वयं संविधान में उल्लिखित संशोधन-प्रक्रिया द्वारा यह स्पष्ट हो जाता है, जिसमें साधारण बहुमत से संशोधन विशेष बहुमत से और विशेष मामलों में कम से कम आधी विधान सभाओं द्वारा विशेष बहुमत से अनुमोदित किये जाने का प्रावधान है।

संविधान—सामाजिक परिवर्तन का एक वाहन

संविधान की नैसर्गिक वास्तविकताओं के लगातार परिवर्तन की अनुकूलनशीलता के कारण यह सामाजिक परिवर्तन का एक प्रभावी वाहन बन गया है। इस प्रक्रिया को हमारी संसद ने सुगमता से प्रामाणिकता के साथ अपनाया है। आज तक, 78 संशोधन अपनाए गए हैं। इनमें से अनेक संशोधन, लोगों की आशाओं और आकांक्षाओं को साकार करने में महत्वपूर्ण सिद्ध हुए हैं। संविधान और संसद को लोगों से ही बल मिलता है। ऐसा कहा जाता है कि संविधान मूलत: लोगों की प्रसंविदा, उनकी स्वतंत्रता का चार्टर और उनके भविष्य की रूपरेखा है। इस तरह हमारे संविधान की परिकल्पना आर्थिक प्रगति और सामाजिक परिवर्तन के एक शस्त्र के रूप में की गई है। सामाजिक और आर्थिक लोकतंत्र के साथ-साथ राजनैतिक लोकतंत्र में उपलब्धियां, हमारे संविधान की एक मूलभूत चिन्ता रही है। मौलिक अधिकार और राज्य के नीति-निदेशक सिद्धान्त इस महत्वपूर्ण चिन्ता के मुख्य तत्व हैं। अपने समापन भाषण में डा. बी.आर. अम्बेडकर ने संविधान सभा में कहा था, कि:

> "राजनैतिक लोकतंत्र तब तक नहीं चल सकता जब तक कि उसका आधार सामाजिक लोकतंत्र न हो। सामाजिक लोकतंत्र का क्या अर्थ है? इसका अभिप्राय है जीवन जीने का ऐसा तरीका जिसमें स्वतंत्रता, समानता और भाईचारे को जीवन के सिद्धान्तों के रूप में स्वीकार किया जाता है। स्वतंत्रता, समानता और भाईचारे के इन सिद्धान्तों को त्रिमूर्ति के अलग-अलग देव की तरह नहीं देखा जाता। इस त्रिमूर्ति का एकत्व इस रूप में है कि एक को दूसरे से अलग करने का अर्थ है लोकतंत्र के मूल उद्देश्य को निष्फल करना, स्वतंत्रता को समानता और समानता को स्वतंत्रता से पृथक नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार स्वतंत्रता और समानता को भाईचारे से अलग नहीं किया जा सकता। समानता के बिना स्वतंत्रता का अभिप्राय है बहुसंख्या पर कुछेक का वर्चस्व स्थापित करना। स्वतंत्रता के बिना समानता व्यक्तिगत सृजनशीलता को नष्ट कर देगी। भाईचारे के बिना स्वतंत्रता और समानता प्राकृतिक रूप से नहीं पनप सकती।
>
> पिछले पांच दशकों से हमारा संविधान वास्तव में सामाजिक परिवर्तन लाने का एक सरल माध्यम रहा है।"

उद्देशिका तथा 42वां संशोधन

समस्त संविधान की भावना एवं उद्देशिका में प्रतिबिंबित होती है जिसमें भारत को एक संप्रभु, समाजवादी पंथ निरपेक्ष, लोकतांत्रिक गणराज्य बनाने के लिए लोगों के संकल्प की घोषणा की गई। उद्देशिका में लोगों के लिए न्याय-सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक, विचार अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समानता प्राप्त कराने के लिए तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखण्डता सुनिश्चित करने वाली बन्धुता बढ़ाने के लिए हमारे संकल्प की घोषणा भी की गई है। उद्देशिका, जैसा कि व्यापक रूप से स्वीकार किया गया है उन विचारों की विस्तृत रूपरेखा को प्रतिबिम्बित करती है जो हमारी प्राचीन विरासत में गहराई तक अन्तर्निहित है और उन भारतीय लोकाचार के भाग हैं, जिसका संविधान पक्षधर है और मौलिक सिद्धान्तों पर जो आधारित है। यद्यपि इसे न्यायालय द्वारा लागू नहीं किया जा सकता, फिर भी जब कभी इसमें किन्हीं उपबन्धों के बारे में कोई स्पष्टता नहीं हो तो इसे संविधान का मार्गदर्शक प्रकाश समझा जाता है।

वर्ष 1976 तक उद्देशिका अपरिवर्तित रही जब 42वें संशोधन के पश्चात्, "समाजवादी" तथा "पंथ निरपेक्ष" तथा "राष्ट्र की एकता तथा अखण्डता" शब्द जोड़े गए। सामाजिक-आर्थिक क्रान्ति के उद्देश्य को पूरा करने में, ताकि गरीबी, अज्ञानता, बीमारी तथा अवसर की असमानता को समाप्त किया जा सके, कई कठिनाइयां उत्पन्न हो गई थी। यह महसूस किया गया कि संविधान में प्रावधान की गई लोकतांत्रिक संस्थाओं पर काफी दबाव डाला गया है और निहित स्वार्थ वाले तत्व जनता की भलाई के विरुद्ध अपने स्वार्थों को बढ़ाने का प्रयास कर रहे थे। इसलिए संविधान में संशोधन करना आवश्यक समझा गया ताकि अन्य

बातों के साथ-साथ समाजवाद, पंथ निरपेक्षता तथा राष्ट्र की एकता का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया जा सके। यह भी विचार था कि प्रस्तावना संविधान का प्रमुख अंग है इसलिए इसमें संविधान की मौलिक विचारधारा को सही ढंग से प्रतिपादित किया जाना चाहिए। कुछ समय तक, यह भी विचार था कि प्रस्ताव संविधान का अंग नहीं है। तथापि, केशवानन्द भारती मामले के पश्चात्, इस बात को व्यापक रूप से स्वीकार किया गया कि प्रस्तावना संविधान का अभिन्न अंग है।

मौलिक अधिकार और उनको बेहतर बनाना

संविधान में समानता के अधिकार, स्वतंत्रता के अधिकार, शोषण के विरुद्ध अधिकार, धर्म की स्वतंत्रता के अधिकार, सांस्कृतिक और शैक्षिक अधिकार तथा संवैधानिक उपाचारात्मक अधिकार की व्यवस्था की गई है। संविधान के अनुसार, राज्य धर्म, प्रजाति, जाति, लिंग अथवा जन्म स्थान के आधार पर किसी भी नागरिक के प्रति भेदभाव नहीं कर सकता है। संविधान में यह भी व्यवस्था है कि राज्य के अधीन रोजगार अथवा किसी पद पर नियुक्ति से संबंधित मामलों में सभी नागरिकों को समान अवसर प्रदान किए जाएंगे। सर्वोपरि संविधान में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि राज्य ऐसा कोई कानून नहीं बनाएगा जिससे संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकारों का अतिक्रमण हो अथवा उनमें किसी प्रकार की कटौती हो और यदि राज्य इस खंड का उल्लंघन करके ऐसा कोई कानून बनाएगा, तो उसे अवैध समझा जाएगा।

जैसाकि स्पष्ट है, संविधान में विभिन्न मौलिक अधिकारों का केवल उल्लेख ही नहीं है बल्कि इसमें संवैधानिक उपचारात्मक अधिकार को मौलिक अधिकारों में शामिल करके इन अधिकारों की गारंटी भी दी गई है। जैसाकि अनेक संविधान विशेषज्ञों ने अपनी राय व्यक्त की है, इस उपचार से ही अधिकार वास्तविक हुए हैं और यदि कोई उपचार नहीं है, तो कोई अधिकार नहीं है। तथापि, आधुनिक कल्याणकारी समाज में सच्चे अर्थों में निरंकुश स्वतंत्रता और समानता की अवधारणा का साकार होना कठिन है। ऐसी स्थिति में, संविधान में मौलिक अधिकारों के उल्लेख के साथ-साथ राज्यों को यह भी बताया गया है कि कुछ ऐसे प्रतिबंध हैं जिनका सरकार, देश के शासन में प्रयोग कर सकती है और इस दृष्टि से राज्य जनहित में इन अधिकारों का अतिक्रमण कर सकता है। किसी मौलिक अधिकार के अतिक्रमण तथा अधिकारों के उल्लंघन की स्थिति में, प्रभावी उपचार निर्धारित करने का अधिकार उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों को प्राप्त है। सम्पत्ति के अधिकार में, जो पहले मौलिक अधिकार था, अनेक बार प्रमुख परिवर्तन किए गए हैं। अन्ततः 44वें संशोधन द्वारा, इसका संविधान के मौलिक अधिकारों से संबंधित भाग तीन से लोप कर दिया गया। वर्तमान में, सम्पत्ति के अधिकार को मौलिक अधिकारों से अलग वैधानिक अधिकार का दर्जा दिया गया है।

राज्य के नीति-निदेशक सिद्धान्त तथा आदर्श कल्याणकारी राज्य की अवधारणा

विधि निर्माण के समय राज्य को कतिपय निर्देशों की स्थिति में, राज्य के नीति-निदेशक सिद्धान्त अनिवार्य हैं। संविधान के अनुसार निदेशक सिद्धान्त किसी न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय नहीं है किन्तु फिर भी इनमें अधिकाधिक तत्व देश के शासन में मूलभूत हैं और विधि बनाने में इन तत्वों को लागू करना राज्य का कर्तव्य होगा। वस्तुतः निदेशक सिद्धान्तों में सामाजिक और आर्थिक लोकतंत्र का आदर्श बनाए रखा गया है और ये सामाजिक स्थिति में मानवतावादी हैं जिनका उद्देश्य कल्याणकारी राज्य के ध्येय को प्राप्त करना है।

वर्षों से राज्य ने अनेक निदेशक सिद्धान्तों को लागू करने का प्रयास किया है। उदाहरणार्थ अनुच्छेद 39(6) में निहित निदेश के संबंध में काफी प्रगति की गई है। इसमें कहा गया है कि राज्य अपनी नीति का इस प्रकार संचालन करेगा कि सुनिश्चित रूप से समुदाय के भौतिक संसाधनों का स्वामित्व और नियंत्रण इस प्रकार बंटा हो जिससे सामूहिक हित का सर्वोत्तम रूप से साधन हो। जमींदारों और जागीरदारों जैसे बिचौलियों की बजाय, राज्य, विभिन्न विधानों के माध्यम से भूमि के काश्तकारों और किसानों को इसके सीधे सम्पर्क में लाने और उचित सीमा तय करके भूमि के एक ही व्यक्ति के पास एकत्र होने से रोकने में सफल रहा है। दूसरी तरफ, निजी एकाधिकार को समाप्त करने के स्पष्ट उद्देश्य से अनेक प्रमुख उद्योगों का राष्ट्रीयकरण किया गया और सरकारी क्षेत्र के उपक्रम स्थापित किए गए। इसकी आवश्यकता प्रारंभिक वर्षों में आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण को रोकने के लिए महसूस हुई। तत्पश्चात् सरकारी क्षेत्र के कार्यनिष्पादन, धन जुटाने तथा संसाधनों के लाभकारी उपयोग और प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रों के लिए संसाधनों की आवश्यकता को देखते हुए और बदलते हुए अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक परिदृश्य में इसकी आवश्यकता महसूस की गई कि सरकारी और निजी क्षेत्र की सापेक्ष भूमिका के पुनर्निर्धारण के लिए कानून बनाए जाएं। काम की न्यायसंगत और मानवोचित दशाओं, प्रसूति सहायता, निर्वाह मजदूरी, उद्योगों के प्रबन्ध में कर्मकारों की भागीदारी, जन स्वास्थ्य, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों तथा समाज के अन्य कमजोर वर्गों के शैक्षिक तथा आर्थिक हितों को बढ़ावा देने के लिए पर्यावरण की सुरक्षा और इसमें सुधार के लिए तथा वनों और वन्य जीवों आदि के संरक्षण के लिए अनेक कानून बनाए गए।

अतिरिक्त मूल कर्तव्य

मूलतः हमारे संविधान में सामान्यतः नागरिकों के लिए किसी प्रकार के मूल कर्तव्यों का उल्लेख नहीं किया गया है। तथापि संविधान के 42वें संशोधन के द्वारा भाग 4'क' में मूल कर्तव्यों का उल्लेख किया गया है जिनका लोगों को समाज और राष्ट्र के प्रति निर्वाह करना है। यह महसूस किया गया कि लोग अपने अधिकारों की तरह ही अपने कर्तव्यों के प्रति भी सजग

रहें। काफी समय से व्यैक्तिक अधिकारों पर ही बल दिया गया है। इसलिए मूल कर्तव्यों के उल्लेख की आवश्यकता भी महसूस की गई।

सत्ता का पृथक्करण—सत्ता का संतुलन

राज्य के अंगों–कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका में शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धान्त की यथार्थ स्वरूप में व्याख्या के कारण किसी भी व्यक्ति को जो राज्य के विभिन्न पदों पर कार्यरत है, को दो पदों के दायित्व निर्वहन की अनुमति नहीं दी गई है। भारत का संविधान, जिसमें शक्तियों के विभेदन का प्रावधान है, यह इस भाव से अपरिवर्तनीय नहीं रहा है कि कार्यकारी शक्ति राष्ट्रपति में निहित है जबकि किसी व्यक्ति अथवा निकाय में विधायी एवं न्यायिक शक्तियों को स्पष्टत: निहित किये बिना संसद और न्यायपालिका हेतु प्रावधान बनाये गये हैं। संविधान विशेषज्ञों का यह मत है कि हमारे संविधान में शक्तियों के विभेदन को पूर्णत: सैद्धांतिक रूप से मान्यता नहीं दी गई है, अपितु इसमें राष्ट्र के विभिन्न अंगों के कार्यों का विस्तृत विवरण दिया गया है। इसके परिणामस्वरूप, तीनों अंगों में एक सुसंगत संबंध की परिकल्पना की गई है जिसके अन्तर्गत वे एक-दूसरे के निजी कार्यकरण में कोई हस्तक्षेप नहीं करेंगे।

स्वतंत्र न्यायपालिका, विधिसम्मत शासन पर निगरानी रखने वाला

संविधान में न्यायपालिका जो कार्यपालिका के प्रभाव से मुक्त है, का प्रावधान है और इसमें भी न्यायिक पुनरीक्षा की परिकल्पना की गई है। यह इस धारणा पर आधारित है कि संविधान राष्ट्र का सर्वोच्च कानून है और सभी अंगों जो संविधान के द्वारा बनाये गये हैं और जो इसके प्रावधानों से अपनी शक्तियां ग्रहण करते हैं को संविधान के अन्तर्गत ही कार्य करना चाहिए तथा संवैधानिक प्रावधानों के अनुरूप कुछ नहीं करना चाहिए। वर्षों से यह धारणा प्रचलित रही है कि न्यायिक स्वतंत्रता और न्यायिक पुनरीक्षा संविधान की मूल विशेषताएं हैं और इन्हें किसी भी संवैधानिक संशोधन द्वारा समाप्त नहीं किया जा सकता है।

संसद—न्यायपालिका के बीच संबंध

ऐसे कुछ अवसर आये हैं जब विधायिका एवं न्यायपालिका के बीच मतभेद उत्पन्न हो गये। यह मतभेद मुख्यत: संसद और विधानमंडलों द्वारा पारित कानूनों, संसदीय विशेषाधिकारों, राज्य विधान मण्डलों के सचिवालयों के कार्य संचालन, 1980 के मध्य में दल-बदल कानून के प्रचालन एवं उसकी व्याख्या की समीक्षा करने के लिए न्यायालयों की शक्तियों से संबंधित था।

हाल ही में न्यायपालिका की सक्रियता सभी के लिए एक चिन्ता का विषय रही है। कई संसद सदस्यों एवं विधायकों का विचार है कि न्यायपालिका, कभी-कभी अपने क्षेत्राधिकार का उल्लंघन करके कार्यपालिका एवं विधायी अधिकार क्षेत्र में अतिक्रमण कर रही है। न्यायिक सक्रियता का समर्थन करने वाले लोग इसके जवाब में इस बात पर जोर देते हैं कि यह हमारे राष्ट्रीय संस्थाओं के पतन को रोकने में कार्यपालिका एवं विधायिका की विफलता का परिणाम है।

विधायिका-न्यायपालिका के बीच संबंध एवं न्यायिक सक्रियता के विवादों के पीछे संविधान के मौलिक ढांचे की धारणा स्पष्ट रूप से स्थापित हो चुकी है। लम्बे समय तक यह माना जाता रहा कि संविधान का कोई भी भाग असंशोधनीय नहीं है और संसद अनुच्छेद 368 के प्रावधानों के अनुसार संशोधन अधिनियम पारित करके मौलिक अधिकारों एवं स्वयं अनुच्छेद 368 के साथ-साथ संविधान के किसी भी प्रावधान में संशोधन कर सकती है। तथापि, गोलकनाथ मामले में उच्चतम न्यायालय ने संसद द्वारा संविधान के सभी भागों में संशोधन कर सकने की शक्ति को उचित ठहराते हुए अपने पूर्वनिर्णयों को बदल दिया। उच्चतम न्यायालय ने यह विचार व्यक्त किया कि संविधान में संशोधन एक विधायी प्रक्रिया है और अनुच्छेद 368 के अन्तर्गत संवैधानिक संशोधन संविधान के अनुच्छेद 13 के अन्तर्गत अपने आप में एक कानून है। अत: उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि ऐसा संवैधानिक संशोधन, जो मौलिक अधिकारों को छीन लेता है अथवा उन्हें सीमित कर देता है, वह अमान्य होगा।

इसे देखते हुए, संसद ने 1971 में संविधान (चौबीसवां संशोधन) अधिनियम पारित करना आवश्यक समझा जिसमें मौलिक अधिकारों संबंधी उपबन्धों सहित संविधान के किसी भी भाग को संशोधित करने की संसद की शक्ति का स्पष्ट रूप से प्रावधान किया गया था।

उच्चतम न्यायालय ने केशवानन्द भारती केस में, गोलकनाथ केस के फैसले की समीक्षा की और 24वें, 25वें, 26वें तथा 29वें संविधान संशोधनों की वैधता पर गौर किया। उच्चतम न्यायालय ने बहुमत के द्वारा यह निर्णय दिया कि संसद को संविधान के किसी भी उपबन्ध में संशोधन करने की शक्ति प्राप्त है, लेकिन इस शक्ति का प्रयोग इस प्रकार नहीं किया जा सकता कि उससे संविधान का बुनियादी ढांचा या स्वरूप ही बदल जाए अथवा समाप्त हो जाए। इस प्रकार संसद की संशोधन करने की शक्ति असीम नहीं है बल्कि इसका क्षेत्र सीमित है। इन्दिरा गांधी बनाम राज नारायण केस में उच्चतम न्यायालय ने बुनियादी ढांचे के सिद्धान्त की पुन: पुष्टि की। तदुपरान्त मिनर्वा मिल्स लिमिटेड बनाम भारत संघ में उच्चतम न्यायालय ने बुनियादी ढांचे की अवधारणा का अनुमोदन करते हुए कहा:

> "चूंकि संविधान ने संसद को संशोधन करने की सीमित शक्ति प्रदान की थी, इसलिए संसद इस सीमित शक्ति के तहत इसी शक्ति को बढ़ाकर असीम शक्ति नहीं बना सकती। नि:सन्देह सीमित संशोधनकारी शक्ति हमारे संविधान की बुनियादी विशेषता है और इसीलिए इस शक्ति की सीमाओं को समाप्त नहीं किया जा सकता। दूसरे शब्दों में, संसद अनुच्छेद 368 के अन्तर्गत अपनी संशोधनकारी शक्ति को इस प्रकार नहीं बढ़ा सकती कि संविधान को निरस्त करने या रद्द करने अथवा इसकी बुनियादी और प्रमुख विशेषताओं

को समाप्त करने का अधिकार स्वयं प्राप्त कर ले। एक सीमित शक्ति का प्राप्तकर्ता अपनी इस शक्ति का प्रयोग करके सीमित शक्ति को असीमित शक्ति में परिवर्तित नहीं कर सकता।''

उच्चतम न्यायालय ने बाद के केसों में ''बुनियादी ढांचा'' अवधारणा को और अधिक विकसित किया है। बुनियादी ढांचे से संबंधित और अधिक महत्वपूर्ण विशेषताओं पर वामनराव बनाम भारत संघ, भीम सिंह जी बनाम भारत संघ, एस.पी. गुप्ता बनाम भारत के राष्ट्रपति, एस.पी. सम्पत कुमार बनाम भारत संघ, पी. साम्बामूर्ति बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य तथा किहोटो होल्लोहन बनाम जाचिल्हू तथा अन्य केसों में जोर दिया गया है।

भारत-राज्यों का संघ, सहकारी संघवाद में प्रयास

संविधान के अनुच्छेद 1 ही में स्पष्ट रूप से यह कहा गया है कि भारत राज्यों का संघ है। वास्तव में, हमारा राष्ट्र सुस्पष्ट एकात्मक चरित्र से युक्त संघ की अद्वितीय प्रणाली है। संघ और राज्यों के क्षेत्र तथा कार्यकलाप स्पष्ट रूप से निर्धारित हैं। संविधान की सातवीं अनुसूची के रूप में शामिल व्यापक संघ सूची और राज्य सूची में, स्पष्ट रूप से क्रमश: संघ और राज्यों के क्षेत्राधिकारों तथा प्राधिकारों का उल्लेख किया गया है। समवर्ती सूची का प्रावधान एक और चमत्कारी विशेषता है। 73वें और 74वें संविधान संशोधनों के द्वारा पंचायतों और नगरपालिकाओं को भी शक्तियां प्रदान की गई हैं। निचले स्तर पर शक्तियों का अन्तरण—''लोगों को शक्ति''—इसके तहत यह महसूस किया गया कि इससे व्यवस्था न सिर्फ अधिक लोकतांत्रिक बनेगी बल्कि प्रशासनिक दृष्टि से भी यह अधिक कुशल बनेगी और अच्छे प्रशासन की व्यापक अवधारणा के अनुरूप होगी।

राष्ट्रीय अखंडता

स्वतंत्र भारत के समक्ष पहला सबसे बड़ा कार्य भारतीय भूखंड पर एक कोने से दूसरे कोने तक फैले 500 से भी अधिक देशी रियासतों का एकीकरण करना था। सरदार वल्लभभाई पटेल के कुशल नेतृत्व में, सभी संबंधित पक्षों की संतुष्टि को ध्यान में रखते हुए इस चुनौती पर विजय पाई गई तथा संपूर्ण राष्ट्र ने राहत की सांस ली। आने वाले वर्षों में, हमने संविधान में विहित अनुसार, अपनी राष्ट्रीय अखंडता के परिरक्षण एवं संरक्षण के लिए मिल-जुल कर प्रयास किया तथा जिसके लिए संविधान में स्पष्ट दिशानिर्देश निर्धारित किए गए।

राज्यों का पुनर्गठन

यदि अपने देश की विशालता एवं विविधता पर विचार किया जाए, तो भारत संघ के भौगोलिक रूप से एकीकरण को उल्लेखनीय सफलता माना जाएगा। यद्यपि इसमें कुछ हद तक सच्चाई है, फिर भी, यह एक तथ्य है कि निश्चित रूप से यह कोई आसान कार्य नहीं था। तथापि, इस नये गणतंत्र के समक्ष अनेक चुनौतियां मुंह बाए खड़ी थीं। राजनीतिक एवं भावात्मक एकता के साथ-साथ भौगोलिक एकता भी भारत संघ के लिए समान रूप से आवश्यक थी। भाषा, धर्म तथा क्षेत्र की अंतरंग विविधताओं से भरे एक नए भारत का निर्माण करना, वास्तव में एक दुष्कर कार्य था। 1956 में, भाषायी आधार पर राज्यों के पुनर्गठन पर विचार किया गया। हिन्दी को राष्ट्र भाषा तथा राजभाषा का दर्जा दिया गया और अंग्रेजी को दूसरी सम्पर्क भाषा के रूप में बनाए रखा गया। संबंधित राज्यों के भीतर, क्षेत्रीय भाषा को प्रमुखता दी गई। भाषायी आधार पर राज्यों का पुनर्गठन करके भाषायी अल्पसंख्यकों की इच्छाओं को पूरा किया गया जबकि आज भी, इस उपाय को लेकर आलोचना की जाती है। जहां हिन्दी को राजभाषा के रूप में बढ़ावा देने के लिए सभी प्रयास किए जाने की बात की गई थी, वहीं संविधान की आठवीं अनुसूची में अन्य अनेक भाषाओं को भी सम्मिलित किया गया। प्रारंभ में, आठवीं अनुसूची में असमिया, बंगला, गुजराती, हिन्दी, कन्नड़, कश्मीरी, मलयालम, मराठी, उड़िया, पंजाबी, संस्कृत, तमिल, तेलुगु तथा उर्दू भाषाओं को सम्मिलित किया गया था। इनके अतिरिक्त, 1967 में सिन्धी तथा 1992 में कोंकणी, मणिपुरी और नेपाली को क्रमश: संविधान के 21वें तथा 71वें संशोधन द्वारा इस अनुसूची में सम्मिलित किया गया। जैसाकि स्पष्ट है, लोगों की युक्तिसंगत आकांक्षाओं को पूरा करने का यथासंभव प्रयास किया गया है।

नए राज्यों का सृजन

1956 में राज्यों का पुनर्गठन करने के काफी समय बाद, लोगों की युक्तिसंगत मांगों को पूरा करने के लिए अनेक नए राज्यों का सृजन किया गया। इस प्रकार, लोगों की युक्तिसंगत मांगों को ध्यान में रखते हुए गुजरात, नागालैंड, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, मणिपुर, मेघालय, त्रिपुरा, मिजोरम, अरूणाचल प्रदेश और गोवा राज्यों का सृजन किया गया।

संघ-राज्य संबंध

जैसाकि पहले कहा गया है, यद्यपि संविधान में संघ और राज्यों के बीच सौहार्दपूर्ण संबंधों की बात कही गई है, फिर भी, कभी-कभी सामाजिक-राजनीतिक तथा आर्थिक कारणों से एवं संवैधानिक प्रावधानों की व्याख्या को लेकर मतभेदों के कारण पारस्परिक संबंधों में उतार-चढ़ाव आते रहे हैं।

संविधान और संविधान निर्माताओं के लिए अत्यधिक विचारणीय विषय यह था कि विघटनकारी शक्तियों पर नियंत्रण रखा जाए ताकि देश की एकता और अखंडता की रक्षा की जा सके। तदनुसार अपकेन्द्रित और विखंडित करने वाली प्रवृत्तियों, देश की एकता, अखंडता और प्रभुसत्ता पर आए खतरे और राष्ट्र की सुरक्षा एवं वित्तीय स्थिति पर आए संकट से निपटने के लिए अर्थोपाय करने हेतु अपने-अपने को सन्नद्ध पाते हैं।

विशेषज्ञों ने अक्सर यह कहा है कि अन्य संघीय राष्ट्रों की भांति, भारत की मौजूदा संघीय प्रणाली किन्हीं एककों के समझौते का परिणाम नहीं है। स्वतंत्रता की पूर्व संध्या पर अधिकांश राजसी राज्यों द्वारा भारत में एक ही सरकार के अधीन बने रहने पर

सहमति व्यक्त की गई। तत्पश्चात् संविधान में समान संघीय प्रणाली के अन्तर्गत इन सबको समानता के अधिकार पर एकत्र किया गया। संयुक्त राज्य अमरीका में दोहरी नागरिकता का प्रावधान है, जबकि हमारे संविधान में ऐसा नहीं है। यह सुस्पष्ट हो जाता है कि हमारे देश में एक ही प्रकार की नागरिकता है।

हमारी संघीय ढांचे की एक अन्य विशेषता यह है कि हमारी संसद को राज्यों के पुनर्गठन का अथवा उनकी सीमाओं में परिवर्तन करने का अधिकार है। यह कार्य समान विधायी प्रक्रिया द्वारा आम बहुमत से किया जा सकता है। वास्तव में, संसद ने इस अधिकार का प्रयोग ऊपर लिखित अनेक नए राज्यों के सृजन में किया है। देश की एकता और अखंडता के संवर्धन को ध्यान में रखकर ही सार्वजनिक सेवाओं का सृजन किया गया है। अखिल भारतीय सेवाओं का प्रावधान इसी संदर्भ में देखा जा सकता है। उच्चतम न्यायालय सर्वोच्च स्तर पर एकमात्र न्यायिक व्यवस्था है जो केन्द्र और राज्यों के उन सभी कानूनों को देखता है जो कि इसके पास विनिर्णय के लिए आने वाले मामलों पर लागू होते हैं। चुनाव, लेखे और लेखा परीक्षा तंत्र भी समान रूप से सुदृढ़ है।

संविधान में संघीय सहयोग की परिकल्पना की गयी है और इसी कारण साझे हितों को ध्यान में रखकर केन्द्र और राज्यों के बीच तथा सभी राज्यों के बीच आपसी सहयोग और अच्छे संबंध बने हुए हैं। तथापि प्रणाली के वास्तविक कार्यकरण में विभिन्नता आई है जबकि यह सच है कि केन्द्र कुल मिलाकर जन आकांक्षाओं के प्रति जागरुक है और नए राज्यों का गठन किया जाना इसका प्रमाण है। इस बात की आलोचना की गई है कि व्यावहारिक रूप से जो दिखाई दे रहा है वह है अत्यधिक संकेन्द्रित संघवाद। कई लोगों द्वारा निरन्तर यह मांग की जाती रही है कि राज्यों को और अधिक अधिकार, विशेष रूप से वित्तीय स्वायत्तता अथवा वित्तीय अधिकार प्रदान किए जाएं। ऐसी मांग का प्रस्ताव करने वालों का विचार है कि संविधान में एकात्मक आधार में इतना अधिक परिवर्तन आया है कि देश में संघवाद बहुत कम रह गया है। इस विचार का विरोध करने वालों का मत था कि यदि हमें अपने देश की एकता और अखंडता को बनाए रखना है और उसकी रक्षा करनी है तो केन्द्र को ज्यादा मजबूत बनाना आवश्यक है।

केन्द्र और राज्यों के बीच अधिकारों के बंटवारे के समय दोनों के संबंध विवाद में रहे हैं। हालांकि संविधान में स्पष्ट रूप से दोनों के अपने-अपने न्यायाधिकार निश्चित किए गए हैं, तथापि हाल ही में कई राज्यों ने बार-बार यह कहा है कि केन्द्र को बहुत अधिक अधिकार प्राप्त हैं अत: यह आवश्यक है कि उसके अधिकारों को कम करके उनका विकेन्द्रीकरण किया जाए।

संघ में सत्ता के अति-केन्द्रीयकरण का आशय है कि छोटी-छोटी बातों के लिए केन्द्र के पास जाना। इस तर्क का समर्थन करने वाले यह भी महसूस करते हैं कि कई बार केन्द्र स्थानीय समस्याओं और स्थानीय आवश्यकताओं से पूरी तरह अवगत नहीं होता। यदि इस सम्बन्ध में समय पर उपचारात्मक कार्यवाही नहीं की जाती तो इससे अव्यवस्था उत्पन्न हो सकती है, जिसके माध्यम से निहित स्वार्थ वाले लोग समस्या को और उग्र बनाने का प्रयास कर सकते हैं।

केन्द्र के पास वित्तीय शक्तियों का केन्द्रीयकरण संघ और राज्यों के बीच मतभेद का मुख्य मुद्दा रहा है। वित्त आयोग संघ-राज्य वित्तीय सम्बन्धों की जांच-पड़ताल करता है। इस आयोग की केन्द्र का पक्ष लेने और स्थानीय एवं क्षेत्रीय मुद्दों के प्रति उचित दृष्टिकोण न अपनाने के कारण कई बार आलोचना हुई है। केन्द्रीयकृत आयोजना की, जिसका हम अनुसरण कर रहे हैं, स्थानीय विकास एवं आयोजना आवश्यकताओं की सुविज्ञता के अभाव के कारण तथा वार्षिक योजनाओं के लिए अल्प वित्तीय आवंटन के कारण कई बार राज्यों द्वारा आलोचना हुई है। संघ और राज्यों के बीच राजस्व के वितरण की भी कटु आलोचना हुई है। इन सभी कारकों के कारण तथा राज्यों के असन्तुलित विकास के कारण गत वर्षों में संघ-राज्य सम्बन्धों पर काफी विपरीत प्रभाव पड़ा है।

रुचिपूर्ण स्थिति यह है कि देश के बदलते राजनीतिक परिदृश्य का भी इस महत्वपूर्ण क्षेत्र पर प्रभाव पड़ा है। 1967 तक यह स्थिति लगभग बिना अधिक अड़चन के चलती रही क्योंकि तब तक केन्द्र और अधिकांश राज्यों में कांग्रेस पार्टी का शासन था। यदि उस समय कोई समस्या उभर कर सामने आई तो उसे इस पार्टी का, अपना मामला समझा गया। तथापि, जैसाकि पहले उल्लेख किया गया है कई राज्य कांग्रेस के हाथ से निकल जाने तथा क्षेत्रीय राजनैतिक दलों के उद्‌भव से यह स्थिति नाटकीय ढंग से 1967 में बदल गयी। तब से केन्द्र-राज्य संबंधों में कठिनाइयों का दौर चला आ रहा है। क्षेत्रीय राजनैतिक दलों ने अपनी बात को जोरदार ढंग से कहना आरम्भ कर दिया तथा वे सत्ता और स्वायत्तता-वित्तीय एवं अन्य अधिकारों के और अधिक विकेन्द्रीकरण के पक्ष में लोकप्रिय जनमत बनाने का प्रयास करने लगे।

बदलते राजनीतिक परिदृश्य के साथ इस प्रक्रिया को 1980 और 1990 में और गति मिली। केन्द्र में निरन्तर राजनीतिक अस्थिरता से स्थिति और उग्र हो गई। राजनैतिक और संवैधानिक रूप से संविधान के अनुच्छेद 356 के प्रयोग और तथाकथित दुरुपयोग की कड़ी आलोचना की गई तथा राजनैतिक संकटपूर्ण स्थिति एवं उक्त स्थिति को उग्र बनाने में विभिन्न राज्यपालों की भूमिका की भी कड़ी आलोचना हुई।

इन सभी मामलों को देखने के लिए अन्तर-राज्यीय परिषद, राष्ट्रीय एकता परिषद, राष्ट्रीय विकास परिषद और मुख्य मंत्रियों का सम्मेलन जैसे विभिन्न तंत्र हैं। राज्यों के बीच समस्याओं को सुलझाने के लिए कई तरह के अन्तर-राज्यीय वाद-विवाद निपटान तंत्र हैं। तथापि, इन मुख्य विषयों, विशेषकर अनुच्छेद 356, सत्ता का विकेन्द्रीकरण और राज्यों को अधिक वित्तीय स्वायत्तता देने के बारे में इन सभी मंचों पर अलग-अलग दृष्टिकोण रहे हैं।

राज्यों ने यह बात कही है कि अब यह कुल मिलाकर महत्वपूर्ण बात है कि उदारीकरण की प्रक्रिया सुदृढ़ हुई है।

अपनी ओर से केन्द्र अत्यावश्यकताओं के प्रति जागरूक रहा है, परन्तु राज्यों की धारणा है कि वह स्थिति को सुव्यवस्थित और सौहार्दपूर्ण बनाने के लिए पर्याप्त प्रयास नहीं कर रहा है। 1966 के प्रशासनिक सुधार आयोग और 1971 के राजामन्नार आयोग ने कुछ अन्तर्ग्रस्त मुद्दों पर ध्यान नहीं दिया। सरकारिया आयोग द्वारा संघ तथा राज्यों के बीच संबंधों की व्यापक समीक्षा की गई थी। आयोग जिसकी रिपोर्ट वर्ष 1988 में प्रकाशित हुई थी उसमें तनाव वाले क्षेत्रों को कम करके संघीय राज्य तंत्र के सुव्यवस्थित कार्यकरण हेतु अनेक सिफारिशें की गई थीं। देश में तेजी से बदलते हुए राजनीतिक परिदृश्य से सरकारिया आयोग की सिफारिशों को पूर्ण रूप से लागू करने में थोड़ी कठिनाई है। राजनीतिक दलों में और राज्यों तथा केन्द्र के नेताओं के बीच सरकारिया आयोग की कुछ सिफारिशों के संबंध में विभिन्न विचार हैं। सरकारिया आयोग की सिफारिशों के अनुरूप राष्ट्रीय एकता परिषद् पहले ही गठित कर दी गई हैं। आयोग ने देश के संवैधानिक तंत्र में प्रबल अथवा मूलभूत परिवर्तनों के प्रति अनिच्छा व्यक्त की है। तथापि, आयोग द्वारा केन्द्र और राज्यों के बीच निरन्तर परामर्श और सहयोग की आवश्यकताओं पर बल दिया है। आयोग ने सहकारी संघवाद पर भी ध्यान केन्द्रित किया और इसे हमारे संघीय ढांचे की एक स्थायी विशेषता बनाने की सिफारिश की। यदि हमें देश भर में वितरणात्मक न्याय प्राप्त करना है और एक राष्ट्र के रूप में धीरे-धीरे प्रगति करनी है तथा अपने उस संविधान को बनाए रखना है जिसमें संघ और राज्यों के बीच सौहार्दपूर्ण संबंधों की बात कही गई है तो सहकारी संघवाद हमारा आदर्श वाक्य होना चाहिए, विशेषकर ऐसे समय जब हमें अन्दर से और बाहर से देश की एकता और अखण्डता को खतरों का सामना करना पड़ रहा है।

चुनाव प्रक्रिया : लोकतंत्र की रक्षक

चुनाव अगर लोकतंत्र की कसौटी है तो राजनैतिक दल व प्रत्याशी चुनाव को साकार करने का माध्यम है। चुनाव संपन्न करा कर ही सहमति और प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त को मूर्त रूप दिया जा सकता है। जैसा कि कहा भी गया है निर्धारित अवधि के अंतराल पर कराये गये चुनाव राजनैतिक व्यवस्था को मान्यता प्रदान करते हैं। इससे जनता को भी सरकार और उसके द्वारा चुने गए प्रतिनिधियों के कार्यनिष्पादन के संबंध में अपना निर्णय देने तथा नयी सामाजिक-आर्थिक और राजनैतिक व्यवस्था के निर्माण में अपना योगदान देने का अवसर मिलता है जिससे कि कुल मिलाकर राष्ट्र के भविष्य के बारे में निर्णय लिया जा सकता है। इस परिप्रेक्ष्य में यह जरूरी हो जाता है कि मतदाता अपने मताधिकार का प्रयोग स्वतंत्र, निष्पक्ष तथा पारदर्शी ढंग से करने में सक्षम हो। संक्षेप में संविधान में उल्लिखित अवधि के अंतराल से ऐसे चुनाव कराये जाना लोकतंत्र के लिए अनिवार्य है।

चुनाव प्रणाली

स्वतंत्र भारत में, हमारे लिये, चुनाव एक राष्ट्रीय वचनबद्धता है। संविधान में, अनुच्छेद 324 के अन्तर्गत निर्वाचन आयोग नाम से एक स्वतंत्र चुनाव तंत्र का प्रावधान है। संसद और राज्य विधान सभाओं तथा राष्ट्रपति और उप-राष्ट्रपति के चुनावों हेतु निरीक्षण, दिशा-निर्देश, नियंत्रण, संचालन और मतदाता सूचियां तैयार करने का कार्य चुनाव आयोग करता है। चुनाव आयोग में एक मुख्य चुनाव आयुक्त और राष्ट्रपति द्वारा समय-समय पर निर्धारित संख्या में ऐसे ही अन्य चुनाव आयुक्त होते हैं। यह सुनिश्चित करने के लिये कि चुनाव आयोग बाह्य दबाव से दूर रहे, मुख्य चुनाव आयुक्त और चुनाव आयुक्तों की नियुक्ति, सेवा शर्तें तथा उन्हें पद से हटाये जाने की प्रक्रिया आदि का प्रावधान संविधान में ही किया गया है। राष्ट्रपति ने संविधान के अनुच्छेद 324(2) के अन्तर्गत अपने अधिकारों का प्रयोग करते हुए 1.10.1993 से मुख्य चुनाव आयुक्त के अतिरिक्त अन्य चुनाव आयुक्तों की संख्या दो निर्धारित की है। तदनुसार, अब हमारा चुनाव आयोग तीन सदस्यीय है।

अनुच्छेद 327 के अन्तर्गत, संसद को मतदाता सूचियां तैयार करने, चुनाव क्षेत्रों के सीमानिर्धारण और संसद के दोनों सदनों के समुचित गठन हेतु आवश्यक सभी अन्य मामलों सहित संसद और राज्य विधान सभाओं के चुनावों के संबंध में समय-समय पर उपबन्ध करने का अधिकार है। तदनुसार, संसद ने 1950 और 1951 में लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम बनाए, जिनमें आवश्यकता अनुसार समय-समय पर संशोधन किये गये। 1950 के अधिनियम में व्यापक उपबन्ध, विशेषरूप से मतदाता अयोग्यता संबंधी, किए गए हैं; जबकि 1951 का अधिनियम निर्वाचित प्रतिनिधियों के कुछ विशिष्ट आधारों पर अयोग्य घोषित किए जाने संबंधी उपबंधों और प्रक्रिया सहित सम्पूर्ण चुनाव संचालन से संबंधित है। 1951 के अधिनियम में चुनाव संचालन नियम, 1961 जोड़ दिए गए हैं।

चुनाव सुधार

लोक सभा के ग्यारह आम चुनाव और विधानमंडलों तथा अन्य प्रतिनिधि निकायों के अधिसंख्य चुनावों के सफलतापूर्वक संपन्न होने से भारतीय मतदाता की लोकतंत्र के प्रति सहज निष्ठा पूर्णत: प्रामाणित हो चुकी है। हो सकता है इसमें कुछ दोष भी रहे हों, लेकिन वास्तविकता यह है कि करोड़ों लोगों को समय-समय पर यह फैसला करने का अवसर दिया जाता है कि उन पर किसे शासन करना चाहिए। यह चुनाव प्रक्रिया स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव सुनिश्चित कराने संबंधी संवैधानिक उपबंधों तथा इसके साथ ही निरंतर एक के बाद एक आने वाले निर्वाचन आयुक्तों और सरकारों द्वारा किए गए सुधारों के कारण संभव हुई है। हमारे चुनावी इतिहास की एक प्रमुख विशेषता यह रही है कि जनता के फैसले को हमेशा स्वीकार किया गया है और राजनैतिक बदलाव भी बिना किसी कटुता के शांतिपूर्वक हुआ है।

भारतीय निर्वाचन तंत्र की व्यापकता आश्चर्यचकित कर देने वाली है। जैसे कि पहले चर्चा की जा चुकी है पिछले वर्षों में उत्पन्न हुई स्थितियों को ध्यान में रखते हुए चुनाव प्रणाली में बहुत से परिवर्तन हुए हैं। राजनीतिक दलों की संख्या में वृद्धि, सभी स्तरों पर चुनावों की बारंबारता, बढ़ता चुनावी खर्च, चुनाव प्रचार का बदलता स्वरूप तथा बदलते चुनावी गठबंधन से भारत के चुनावी स्वरूप में भारी परिवर्तन हुआ है। इसके परिणामस्वरूप, सभी संबंधित व्यक्तियों का ध्यान व्यापक चुनाव सुधारों की ओर गया है। इस क्षेत्र के कुछ मुख्य मुद्दों में मतदाता तथा निर्वाचन क्षेत्र का आकार; उम्मीदवारों की संख्या में कमी; चुनावों का राज्य द्वारा वित्तपोषण और चुनावों में उम्मीदवारों द्वारा खर्च की जाने वाली वास्तविक राशि का निर्धारण, चुनावों में धन और बल का प्रयोग, चुनावी राजनीति के अपराधीकरण पर रोक, चुनावों में जातीय, धार्मिक और क्षेत्रीयता की भावनाओं के शोषण पर प्रतिबंध, राजनीतिक दलों, विशेषत: सत्तारूढ़ दल और उम्मीदवारों के लिए एक आदर्श आचार संहिता, दलीय आंतरिक स्वतंत्रता और दल के संविधान का अनुपालन और कार्यान्वयन तथा सभी उम्मीदवारों को सरकारी प्रचार माध्यमों में समान अवसर उपलब्ध कराना शामिल है।

तिहत्तरवें और चौहत्तरवें संविधान संशोधनों के पारित होने के बाद निम्न स्तर पर लोकतांत्रिक प्रक्रिया और अधिक सुदृढ़ हुई है। स्वतंत्र, निष्पक्ष तथा पारदर्शी चुनाव प्रक्रिया के लिए पंचायती राज संस्थाएं आदर्श प्रशिक्षण केन्द्र का कार्य करती हैं। वस्तुत: हमारी राजनीतिक व्यवस्था की निम्नतम इकाई तक चुनाव सुधार किये जाने चाहिएं। प्रत्येक राजनीतिक दल अपने निचले स्तर के कार्यकर्ताओं को चुनाव प्रक्रिया की पावनता के प्रति शिक्षित करने में सार्थक भूमिका निभा सकता है। ऐसा सकारात्मक दृष्टिकोण और साथ ही निर्वाचन आयोग द्वारा निर्धारित नियमों का सख्ती से अनुपालन करने की सभी राजनीतिक दलों की स्पष्ट प्रतिबद्धता हमारी चुनाव प्रक्रिया को और अधिक स्वागत योग्य तथा सराहनीय बनाने में सहायक हो सकते हैं जोकि विश्व में अन्यत्र हुए कतिपय हास्यास्पद चुनावों के पूर्णत: विपरीत है। महत्वपूर्ण बात यह है कि चुनाव सुधार प्रक्रिया एक सतत् प्रक्रिया है। यदि हमें निर्वाचन की अवधारणा के प्रति अपनी राष्ट्रीय प्रतिबद्धता को तरोताजा बनाये रखा है, तो सामान्यत: इसके लिए राजनीतिक दलों, निर्वाचन तंत्र, निर्वाचित प्रतिनिधियों तथा निर्वाचकों की सक्रिय भागीदारी नितांत आवश्यक है।

बहु-राजनीतिवाद

राजनीतिक दलों और समूहों की अनेकता भारतीय राजनीति प्रणाली की एक प्रमुख विशेषता रही है। भारत की स्वतंत्रता के आरम्भिक वर्षों में हमने एक ही राजनीतिक दल—भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस—का अधिपत्य देखा है जिसने केन्द्र में तथा लगभग सभी राज्यों में शासन किया है। पंडित नेहरू, सरदार पटेल, मौलाना आज़ाद, लाल बहादुर शास्त्री, पंडित पन्त तथा कई अन्य दिग्गज महानुभावों सहित कांग्रेस दल का किसी सीमा तक विरोध किया जाता था। तथापि इसका श्रेय लोकतन्त्र को ही दिया जा सकता है कि भारत का अस्तित्व अक्षुण्ण है और इसकी स्थिति एक दलीय प्रणाली तक ही सीमित नहीं रही जैसा कि विश्व के अनेक भागों में हुआ है। कांग्रेस दल ने संसद और राज्य विधान मंडलों में तथा अन्य राजनीतिक मंचों पर कारगर रूप से प्रकट की गयी विपक्ष की विचारधाराओं पर समुचित ध्यान दिया। विपक्षी दल भी लोकतंत्र की ज्वाला को शास्वत रखने और सत्तारूढ़ दल को मनमानी न करने देने के मामले में अपनी ओर से सदैव सतर्क रहे हैं।

दल प्रणाली

प्रारंभिक वर्षों की एक प्रमुख दल सहित बहु-दलीय प्रणाली ने बदलते राजनीतिक परिप्रेक्ष्य और समीकरणों के परिणामस्वरूप देश में शीघ्र राजनीति में अनेकता को जन्म दिया। भारतीयता की व्यापकता में अनेकताओं को देखते हुए यह स्वाभाविक ही था। क्षेत्रीय, भाषायी और सांस्कृतिक आधारों पर क्षेत्रीय आकांक्षाओं के उभरने से नए राजनीतिक दलों का जन्म हुआ। दूसरी ओर, जातीय, जाति और धार्मिक आधारों पर कई राजनीतिक विभिन्नतायें सामने आने लगीं। विद्यमान राजनैतिक परिदृश्य में अन्याय, असमान सामाजिक-आर्थिक विकास और प्रमुख राजनीतिक दलों के विखंडन से प्रमुख राजनैतिक दलों के प्रति लोगों का मोहभंग होने लगा। इसका निष्कर्ष यह हुआ कि नये राजनैतिक दलों का उदय हुआ जिसके कारण नये क्षेत्रीय दल बने और चेतना का संचार हुआ।

क्षेत्रीय दल

1957 में केरल राज्य ने एक इतिहास रचा जब वहां कम्युनिस्ट पार्टी निर्वाचित होकर सत्ता में आई। भारत में या विश्व में अन्यत्र कहीं भी इस प्रकार की यह पहली घटना थी। 1959 में संविधान की धारा 356 के अन्तर्गत केरल की कम्युनिस्ट सरकार को, जिसे राज्य विधानसभा में बहुमत प्राप्त था, पहली बार केन्द्र सरकार द्वारा बर्खास्त किया गया था, इससे राजनीतिक और निर्वाचक प्रणाली को तथा साथ ही संविधान के सहकारी संघवादी की अवधारणा को भी एक नया आयाम मिला।

1960 के दशक में क्षेत्रवाद की भावना प्रबल हो गयी जो पहले कभी इतनी प्रबल नहीं थी। तत्कालीन मद्रास राज्य वर्तमान तमिलनाडु में भाषाई दंगे बड़े पैमाने पर भड़क उठे। अन्य कई क्षेत्रों में भी क्षेत्रीय दल सत्ता की ओर बढ़ने लगे। कांग्रेस पार्टी में भी क्षेत्रीय नेता अपना प्रभाव डालने लगे। 1960 के दशक के मध्य सत्तारूढ़ दल में आन्तरिक दबाव अत्यधिक बढ़ने लगा।

1967 का आम चुनाव हमारी राजनीतिक व्यवस्था में महत्वपूर्ण साबित हुआ। भारत की स्वतंत्रता के इतिहास में पहली बार कांग्रेस पार्टी आठ राज्यों में चुनाव हार गयी तथा केन्द्र में भी यह अपेक्षाकृत कम बहुमत से सत्ता में आयी। राजनीतिक बहुदलीय व्यवस्था में एक दल का वर्चस्व समाप्त हो गया था। क्षेत्रीय आंकांक्षाएं निरंतर मजबूत होती चली गई हैं। तमिलनाडु में द्रविड़

मुनेत्र कषगम (डीएमके) को भारी सफलता मिली, यह एक ऐसा परिवर्तन था जिसकी ओर अन्य क्षेत्रीय दल अपनी निगाहें लगाये हुए थे।

वर्ष 1969 में जब कांग्रेस पार्टी में औपचारिक रूप से विभाजन हुआ, तब श्रीमती इंदिरा गांधी का साथ छोड़ने वाले सदस्यों की संख्या विपक्षी दल की पहचान बनाने के लिए पर्याप्त थी और इस दल के नेता को लोक सभा में विपक्ष के नेता का दर्जा मिला तथा स्वतंत्रता के पश्चात् यह पहला अवसर था जब विपक्ष के नेता को पहचान मिली।

बदलती राजनीतिक परिस्थितियां

वर्ष 1975 में आपातकाल की घोषणा हमारी राजनीति में एक और मील का पत्थर साबित हुई। 1977 के आम चुनाव में नई दिल्ली और कई राज्यों में नए राजनैतिक परिदृश्य का उदय हुआ जिसमें कांग्रेस पार्टी को अपनी परम्परागत सीटों पर भी हार का मुंह देखना पड़ा। इससे विपक्ष को भी नई जिम्मेदारीपूर्ण भूमिका मिली। लोक सभा और राज्य सभा में विपक्ष के नेता को सांविधिक दर्जा और संसद में विपक्ष के नेता के वेतन और भत्ते अधिनियम, 1977 के अंतर्गत केबिनेट मंत्री के समान कतिपय अन्य सुविधाएं मिलीं। केन्द्र में 1977 में जनता पार्टी की सरकार का प्रयोग भी अधिक सफल नहीं रहा और अंतत: गठजोड़ सरकारों के युग का सूत्रपात हुआ। जनता सरकार के अनुभव की असफलता के कारण तथा केन्द्र में प्रभावी सरकार लाने की लोगों की मूल आकांक्षा से श्रीमती इंदिरा गांधी सत्ता में वापस आई और तदन्तर श्रीमती इंदिरा गांधी की हत्या के कारण उत्पन्न संकट की स्थिति और राष्ट्रीय एकता और अखंडता को प्रत्यक्ष रूप से उत्पन्न खतरे के कारण श्री राजीव गांधी की भारी बहुमत से विजय हुई थी।

1980 के उत्तरार्द्ध और 1990 में देश में नए राजनैतिक समीकरणों का उदय हुआ। इसके परिणामस्वरूप इस अवधि के दौरान विपक्ष की भूमिका में भी प्रभावी परिवर्तन आया। एक समय ऐसा भी आया जब कांग्रेस पार्टी केन्द्र में सत्ता में थी और अधिकांशत: सभी राज्यों में उसका विरोध समाप्त-सा हो गया था। वर्तमान में एक ओर सभी प्रमुख राजनैतिक दल किसी न किसी राज्य में सत्ता में हैं तो दूसरी ओर कुछ राज्यों में क्षेत्रीय दल सत्ता संभाले हुए हैं। कई राज्यों में कुछ राष्ट्रीय दल अथवा अन्य दल विपक्ष की भूमिका निभा रहे हैं। केन्द्र में दल अथवा दल गठजोड़ से सरकार बना रहे हैं जबकि प्रमुख राजनैतिक दल विपक्ष में बैठे हुए हैं तथा दूसरी ओर सत्तारूढ़ गठजोड़ की सरकार से उनका संबंध है। वर्तमान संदर्भ में सरकार में शामिल हुए बिना बाहर रहकर समर्थन देने की प्रथा ने अनिवार्य रूप से विपक्ष की भूमिका पर प्रभाव डाला है। कुल मिलाकर हाल ही के वर्षों में बनी स्थिति और सरकार के स्वरूप से विपक्ष की भूमिका में अत्यधिक परिवर्तन हुआ है। इससे विपक्ष पर हमारी विधायी संस्थाओं का सुचारू कार्यकरण सुनिश्चित करने की एक महत्वपूर्ण जिम्मेदारी आ गई है और विपक्ष को सिर्फ विरोध की प्रवृत्ति के कारण ही विरोध नहीं करना है अपितु हमारे संसदीय प्रजातंत्र के व्यापक हित में रचनात्मक और सार्थक पक्ष की भूमिका निभानी है।

यद्यपि 1989 में कांग्रेस दल लोक सभा में संख्या की दृष्टि से एक सबसे बड़े दल के रूप में चुना गया था, फिर भी उसने सरकार बनाने का अपना दावा प्रस्तुत नहीं किया और इसके बजाए विपक्ष में बैठना स्वीकार किया। परीक्षण के तौर पर जनता दल का भारतीय जनता पार्टी (बी.जे.पी.) के साथ सहयोग अधिक समय तक कायम नहीं रहा। वह (बी.जे.पी.) सरकार को बाहर से समर्थन कर रही थी और उसने अपना समर्थन वापस ले लिया। चंद्रशेखर सरकार को भी सत्ता में थोड़े समय रहने के बाद ही हटना पड़ा, जबकि कांग्रेस दल (जोकि सरकार को बाहर से समर्थन दे रहा था) ने भी सरकार को आगे और समर्थन नहीं देने का निर्णय लिया।

इसके बाद श्री पी.वी. नरसिंह राव के नेतृत्व में कांग्रेस द्वारा सत्ता संभालने के साथ परीक्षण के तौर पर अल्पमत सरकार बनी। यद्यपि यह अल्पमत सरकार बहुमत के समर्थन से बच गई और अपने शासन काल के पूरा होने तक सरकार ने स्वयं ही अपना पर्याप्त बहुमत जुटा लिया था। 1996 के चुनावों में भारतीय जनता पार्टी सबसे बड़े दल के रूप में उभरी। जब राष्ट्रपति ने भारतीय जनता पार्टी को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया, तो उसने निमंत्रण स्वीकार किया और सत्ता संभाल ली, किन्तु अन्य दलों से उसे संसद में कामचलाऊ बहुमत हेतु स्पष्ट रूप से समर्थन न मिलने के कारण सत्ता से दो सप्ताह के भीतर ही हटना पड़ा। कांग्रेस, जो कि सदन में दूसरा सबसे बड़ा दल है, ने अपना दावा प्रस्तुत नहीं किया, किंतु उसने देवेगौड़ा के नेतृत्व में संयुक्त मोर्चा को बाहर से समर्थन देने का प्रस्ताव किया। एक वर्ष की अवधि में देवेगौड़ा सरकार, जोकि कई दलों की मिली-जुली सरकार थी और जिसे कुछ दल बाहर से भी समर्थन दे रहे थे, को लोक सभा में उस समय विश्वास मत हासिल न हो सका जबकि कांग्रेस पार्टी ने नेतृत्व परिवर्तन की मांग करते हुए इस प्रस्ताव के विरुद्ध अपना मतदान किया। तदुपरांत, श्री इन्द्र कुमार गुजराल ने संयुक्त मोर्चा के मुखिया के रूप में कांग्रेस के बाह्य समर्थन से नये प्रधानमंत्री के रूप में सत्ता संभाली, इस समय भारतीय जनता पार्टी मुख्य विपक्षी दल के रूप में थी।

पिछले कुछ वर्षों में जो भी घटनाक्रम चला इसकी मुख्य बात यह रही कि राजनैतिक शक्तियों का आपस में पुन: गठबंधन हो गया। इसके साथ ही इस घटनाचक्र से अन्य कई तथ्य भी उभरकर आये हैं—त्रिशंकु संसद की संभावना, संवैधानिक संकट की स्थिति में राष्ट्रपति स्वयं को अजीब-सी स्थिति में पाते हैं, विशेषरूप से जबकि कुछ राजनीतिक गुट, जो अलग-अलग घोषणापत्रों पर परस्पर विरोधियों के रूप में चुनाव लड़ते हैं और फिर एकजुट होकर एक गठबंधन बनाकर अथवा संयुक्त रूप से मिलकर सरकार बनाने का दावा पेश करते हैं। इस प्रकार क्षेत्रीय दलों का सापेक्ष महत्व बढ़ जाता है जोकि केन्द्र में गठबंधन में शामिल होते हैं और इससे राजनीतिक अस्थिरता पैदा होती है और

इसका राष्ट्रीय विकास तथा राष्ट्र की एकता और अखण्डता पर प्रभाव पड़ता है तथा राजनीतिक आचार और नैतिकता से जुड़े मुद्दों की तो बात ही क्या। राजनीतिज्ञों के एक वर्ग विशेष, जो हाल की घटनाओं से चिन्तित है, ने तो केन्द्र में एक राष्ट्रीय सरकार की आवश्यकता का भी सुझाव दिया है।

हाल ही में हमारी राजनैतिक व्यवस्था जिस दिशा में जा रही है उस पर विशेषरूप से व्यापक चिन्ता व्यक्त की गई है। पूरे देश के नागरिक राजनीति के तथाकथित अपराधीकरण तथा राजनैतिक नेताओं में सत्यनिष्ठा के अभाव के बारे में नियमित रूप से प्रकाशित होने वाली बढ़ती हुई खबरों से चिन्तित हो गए हैं। सत्ता में बैठे लोगों के द्वारा मनमानी किए जाने के बारे में प्रकाशित घटनाओं के संबंध में अधिकाधिक लोग न्यायालयों में जनहित याचिका दायर कर रहे हैं। जबकि न्यायालय इन जनहित याचिकाओं को स्वीकार करने तथा उन पर सक्रिय कार्यवाही करने के लिए उदार है, तो वास्तव में साख और विश्वसनीयता पर आंच आती है। जो लोग इससे प्रभावित होते हैं उन्हें न्यायिक सक्रियतावाद के बारे में शिकायत है। राजनीतिक नेता ऐसी घटनाओं पर व्यथित होते हैं और उन्होंने अवांछनीय तत्वों को इस प्रणाली से हटाने के लिए प्रभावी रूप से आवाज उठायी है। राज्य सभा नैतिकता समिति पहले ही गठित कर चुकी है। लोक सभा ने इस प्रयोजन के लिए व्यापक कार्यवाही आरम्भ कर दी है। राजनीति को स्वच्छ बनाए जाने के लिए चुनावी प्रक्रिया को भी अनिवार्य रूप से स्वच्छ बनाया जाना आवश्यक है। इसके एक विकल्प के रूप में व्यापक चुनावी सुधारों की वकालत की गई है। कई लोगों ने सरकार के सभी विभागों में बहुत-सी शंकाओं के समाधान के रूप में पारदर्शिता की भी वकालत की है। सूचना के अधिकार की भी मांग की जा रही है।

संसदीय प्रणाली—बढ़ते आयाम

संसदीय प्रणाली अपनाये जाने के 50 वर्षों से भी कम समय में भारत ने विश्व के सबसे बड़े संसदीय लोकतंत्र के रूप में हर तरफ से प्रशंसा प्राप्त की है। प्रतिनिधि संस्थाओं की प्रभावकारिता के प्रति हमारा विश्वास हाल ही में नहीं बढ़ा है। हमारे देश में विमर्शी प्रतिनिधि निकायों तथा लोकतांत्रिक संस्थाओं का अस्तित्व वैदिक काल से है जब हमने रूसो के "वोक्स पोपुली वोक्स डी" लिखने से कई शताब्दी पहले ही "पंच परमेश्वर" की बात कही थी। आधुनिक काल में हमारा संसदीय गणतंत्रवाद उपनिवेशवादी शासकों के विरुद्ध हमारे संघर्ष के साथ-साथ समृद्ध हुआ। जैसाकि प्रारम्भ में कहा गया है—हमारी जनता के लोकतांत्रिक आदर्श भी हमारे राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन में महत्वपूर्ण रहे। इस प्रकार, जब स्वतंत्रता भारतीय क्षितिज पर उभरी, तब यह तर्कसंगत ही था कि हमारे संस्थापकों ने हमारी जनता के लिए संसदीय लोकतांत्रिक राज्य व्यवस्था को चुना।

विधायी निकाय—नई वास्तविकताओं से संघर्ष

अपने प्रारंभिक शब्दों "हम भारत के लोग" में हमारा संविधान इस बात की घोषणा करता है कि हमारी राजनैतिक प्रणाली आम जनता से ही अपना औचित्य तथा समर्थन प्राप्त करती है। जनता का प्रभुसत्ता संपन्न संकल्प संसदीय संस्था के द्वारा मुखर होता है तथा प्रयोज्य बन जाता है, जो कि देश का सर्वोच्च विचार-विमर्श करने का साधन है। राज्यों में विधान सभाएं निर्वाचित प्रतिनिधियों को अपने निर्वाचन क्षेत्र की शिकायतों को उजागर करने तथा उनके समाधान की मांग के लिए मंच प्रदान करती हैं। ऐसा होने के कारण संसद को हमारी लोकतांत्रिक राज्य व्यवस्था में वस्तुत: गौरवपूर्ण स्थान और श्रेष्ठता प्रदान की गई है। संसद के दोनों सदन मिलकर संवैधानिक आदर्शों के अनुरूप हमारी राजनीतिक प्रणाली का सुचारू रूप से संचालन करने में बहुत ही निर्णायक भूमिका निभाते हैं।

यह एक सर्वविदित तथ्य है कि हमने अपनी लोकतांत्रिक राज्य व्यवस्था को वेस्टमिनस्टर पद्धति के अनुरूप ढाला है। इस बात पर बल देना उचित नहीं होगा कि भारतीय राजनीतिक प्रणाली ब्रिटिश लोकतंत्र की प्रतिकृति है। न तो दो प्रणालियां एक जैसा कार्य कर सकती हैं और न कोई विदेशी प्रणाली किसी दूसरे समाज द्वारा उसी रूप में अपनायी जा सकती है। हर देश के लोकाचार, मूल्य, सहज वास्तविकताएं और आवश्यकताएं भिन्न-भिन्न होती हैं और केवल इन्हीं कारकों के संबंध में ही कोई संस्थान विकसित हो सकता है। यद्यपि हमने वेस्टमिनस्टर प्रणाली का मुख्य ढांचा स्वीकार किया है लेकिन इतने दशकों में हमने इसे अपनी मांगों और आवश्यकताओं के अनुकूल बना लिया है। संसदीय संस्थाओं के विशेष मामले में भी यह बात सत्य है। हमने एक सीमा तक अपनी संसदीय प्रक्रिया और व्यवहार को ब्रिटेन के हाउस ऑफ कामन्स की प्रक्रिया और व्यवहार पर ही आधारित रखा है। लेकिन इन वर्षों में हमने अपने अनुभवों के परिप्रेक्ष्य में अपनी स्वयं की प्रक्रियाएं तथा व्यवहार विकसित करना शुरू किया। इसकी शुरुआत में हमने ब्रिटिश पूर्वोदाहरणों से सम्बद्ध परम्पराओं और राजचिन्हों को अमान्य कर दिया क्योंकि हमने यह महसूस किया कि हमारी संस्थाओं को भारतीय यथार्थ को प्रतिबिम्बित करना ही चाहिए। बाद में हमने अपनी आवश्यकताओं पर ध्यान देने की दृष्टि से ब्रिटिश संसदीय प्रक्रियाओं से काफी छुटकारा पा लिया है।

हमारी प्रक्रियाएं एवं व्यवहार

हमारे अधिकांश प्रक्रियात्मक कानून संविधान द्वारा संसद और राज्य विधान मंडलों का अपने स्वयं के प्रक्रिया नियम बनाने हेतु प्रदत्त शक्ति के अंतर्गत बनाए गए हैं और इतने वर्षों में सुस्थापित संसदीय परम्पराएं और प्रथाएं विकसित हुई हैं। यह बात भी ध्यान में रखनी होगी कि संसदीय संस्थाएं गतिशील और

निरंतर विकासमान हैं। जैसाकि अक्सर कहा जाता है कि यद्यपि मूल सिद्धांत समान रह सकते हैं, लेकिन संसदीय प्रक्रिया और व्यवहार में परिवर्तन होना अपरिहार्य है अन्यथा वे सामने आने वाली परिस्थितियों का सामना करने में असमर्थ होंगे।

हमारी संसद ने संवैधानिक रूप से उसे प्रदत्त भूमिकाओं को पूरा करने के प्रयास में अनेक प्रक्रियात्मक पहल की हैं और नई प्रक्रियायें स्थापित की हैं। प्रमुख रूप से जो कुछ पहल और परिवर्तन किए गए हैं उनमें ध्यानाकर्षण सूचनाएं, कार्य-स्थगन प्रस्ताव, आधे घंटे की चर्चायें, "शून्य काल", कार्य-मंत्रणा समिति, याचिका समिति, सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति आदि शामिल हैं। वित्तीय समितियों के अतिरिक्त, हमने हाल ही में विभागों से सम्बद्ध स्थायी समिति प्रणाली का पूर्ण रूप से गठन किया है ताकि कार्यपालिका की संसद के प्रति अधिक जवाबदेही सुनिश्चित की जा सके। वर्ष 1963 से लेकर अब तक 15 अविश्वास प्रस्ताव प्रस्तुत किए गए हैं। पहली और दूसरी लोक सभा में कोई भी अविश्वास प्रस्ताव प्रस्तुत नहीं किया गया। शेष सभी लोक सभाओं में, नौवीं लोक सभा को छोड़कर, अविश्वास प्रस्ताव प्रस्तुत किए गए थे। कुल मिलाकर ऐसे 25 प्रस्ताव प्रस्तुत किए गए हैं। ये सभी प्रस्ताव अस्वीकार कर दिए गए। इन प्रस्तावों का विभाजन इस प्रकार से था:

जवाहर लाल नेहरू के विरुद्ध	1
लाल बहादुर शास्त्री के विरुद्ध	3
इन्दिरा गांधी के विरुद्ध	15
मोरारजी देसाई के विरुद्ध	2
राजीव गांधी के विरुद्ध	1
पी.वी. नरसिंह राव के विरुद्ध	3
कुल	25

अब तक नौ बार विश्वास मत प्रस्ताव प्रस्तुत किए गए हैं:

चरण सिंह द्वारा प्रस्तुत	1
वी.पी. सिंह द्वारा प्रस्तुत	2
चन्द्रशेखर द्वारा प्रस्तुत	1
पी.वी. नरसिंह राव द्वारा प्रस्तुत	1
अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा प्रस्तुत	1
एच.डी. देवेगौड़ा द्वारा प्रस्तुत	2
इन्द्र कुमार गुजराल द्वारा प्रस्तुत	1
कुल	9

इन प्रस्तावों में से 5 प्रस्ताव स्वीकार कर लिए गए, दो अस्वीकार किए और दो रद्द हो गए। इन 34 अविश्वास प्रस्तावों/विश्वास-मत प्राप्त करने संबंधी प्रस्तावों से यह बात सामने आई कि इनमें से प्रत्येक अवसर पर सदन में मंत्रिपरिषद का सामूहिक उत्तरदायित्व और विपक्ष की सतर्कता प्रमाणित हुई।

किसी संसदीय राज्यव्यवस्था में लोगों की भूमिका को पूर्णत: स्वीकार करते हुए हमारी संसद ने प्रमुख संसदीय कार्यवाही का दूरदर्शन पर प्रसारण शुरू करके संसद को लोगों के नजदीक लाने का महत्वपूर्ण निर्णय लिया। संसद द्वारा अपने क्रियाकलापों के बारे में जानकारी उपलब्ध कराने से आम जनता अपने प्रतिनिधियों तथा संसद के बारे में अधिक जानकारी प्राप्त कर सकी है और इस प्रकार उसे काफी लाभ हुआ है। जहां तक संसद सदस्यों का संबंध है, दोनों सभाओं के सचिवालय उन्हें हर संभव सहायता उपलब्ध कराते हैं ताकि वे लोगों के प्रभावी प्रतिनिधियों के रूप में अपने कृत्य और अपनी भूमिका को पूरा कर सकें।

संसद का बदलता स्वरूप

गत कई वर्षों में संसद के संरचनात्मक स्वरूप में नाटकीय परिवर्तन हुए हैं। ये परिवर्तन विशेषरूप से लोक सभा के मामले में जो कि एक निर्वाचित सदन है, हुये हैं जो वस्तुत: भारतीय मतदाताओं के बदलते दृष्टिकोण को भी परिलक्षित करते हैं। विशेषरूप से हाल के वर्षों में लोक सभा में प्रतिनिधित्व करने वाले दलों की संख्या में वृद्धि हुई है। ऐसा बहुत बड़ी संख्या में राजनीतिक दलों के अस्तित्व में आने, प्रमुख राजनीतिक दलों का विभाजन होने और क्षेत्रीय राजनीतिक दलों का गठन होने आदि के कारण हुआ है। इस प्रकार पहली लोक सभा के 4 या 5 प्रमुख राजनीतिक दलों की तुलना में ग्यारहवीं लोक सभा में 28 क्षेत्रीय राजनीतिक दलों के प्रतिनिधि हैं।

समय के साथ लोक सभा के सदस्यों के शैक्षिक स्तर में भी काफी परिवर्तन आया है। पहली लोक सभा में लगभग 23.2 प्रतिशत सदस्य मैट्रिक से कम शिक्षा प्राप्त थे जबकि वर्तमान ग्यारहवीं लोक सभा में उनका प्रतिशत घटकर मात्र 2.90 रह गया है। ग्यारहवीं लोक सभा में लगभग 77.36 प्रतिशत सदस्य स्नातक हैं। इस लोक सभा में स्नातकोत्तर और डाक्टर की उपाधि प्राप्त सदस्यों की संख्या भी पिछली सभी लोक सभाओं की संख्या की तुलना में सबसे अधिक है। इस संबंध में सामान्य प्रवृत्ति यह है कि यद्यपि संविधान में सभा की सदस्यता के लिए कोई शैक्षिक योग्यता निर्धारित नहीं की गई है, फिर भी मतदाता उन प्रतिनिधियों को चुनते हैं जिनके पास बुनियादी शिक्षा हो और जो उनकी समस्याओं को समझ सकें और इस प्रकार देश के सर्वोच्च विधायी मण्डल में प्रभावी ढंग से उनकी शिकायतों को व्यक्त कर सकें।

पिछले अनेक दशकों से विभिन्न लोक सभाओं में सदस्यों की व्यावसायिक पृष्ठ-भूमि में भी परिवर्तन होते रहे हैं। इससे पूर्व, विविध व्यावसायिक पृष्ठभूमि के सदस्यों की संख्या अन्य व्यवसायों से संबंधित सदस्यों की संख्या से अधिक होती थी। इस

प्रकार प्रथम लोक सभा में वकालत व्यवसाय से सम्बद्ध सदस्यों की संख्या सबसे अधिक थी। वर्तमान लोक सभा में राजनैतिक और सामाजिक कार्यकर्ताओं और कृषकों के बाद इनकी संख्या तीसरे नम्बर पर पहुंच गई है। वस्तुत: यह अपने प्रतिनिधियों का चुनाव करने में मतदाताओं के बदलते हुए दृष्टिकोण और रुख का पर्याप्त प्रमाण है। संभवत: इनकी यह प्राथमिकता इस तथ्य का परिचायक है कि वे संसद में ऐसे प्रतिनिधि भेज सकते हैं जो सामान्य जनता से जुड़े हुए कार्यकर्ता हों, और जिन्हें उनकी समस्याओं के बारे में पूरी जानकारी हो तथा जो उनकी समस्याओं के शीघ्र और द्रुत समाधान के लिए राष्ट्रीय सरकार के समक्ष रख सकें।

एक अन्य दृष्टि से यदि सभी व्यवसायों को अलग-अलग देखा जाये तो विभिन्न व्यवसायों की दृष्टि से ग्यारहवीं लोक सभा सबसे अलग है।

जहां तक सदस्यों की आयु का संबंध है 41 से 45 वर्ष तक के आयु वर्ग से संबंधित सदस्य वर्तमान लोक सभा में भी सबसे अधिक हैं। सबसे कम आयु वर्ग (25 से 30 वर्ष) तक की श्रेणी में ग्यारहवीं लोक सभा में पिछली लोक सभा में ऐसे सदस्यों की संख्या की तुलना में अपेक्षाकृत अधिक सदस्य हैं।

एक महत्वपूर्ण बात यह है कि लोक सभा में महिलाओं का प्रतिनिधित्व कभी भी दस प्रतिशत तक भी नहीं पहुंच सका है। ग्यारहवीं लोक सभा में उनका प्रतिनिधित्व सभा की कुल सदस्य संख्या का 7.2 प्रतिशत है। महिलाओं द्वारा बड़ी संख्या में जीवन के सभी क्षेत्रों में प्रवेश करने और राजनीति में उनकी भागीदारी में वृद्धि को देखते हुए वास्तव में यह एक विरोधाभास है कि उच्चतम निर्णय लेने वाले निकाय में उनका प्रतिनिधित्व तुलनात्मक दृष्टि से अभी भी काफी कम है। 73वां और 74वां संशोधन, जिनके अंतर्गत निर्वाचित पंचायतों और नगर पालिकाओं में महिलाओं के लिए 33 प्रतिशत आरक्षण का उपबंध है, निचले स्तर पर निर्णय लेने वाली संस्थाओं में महिलाओं की सक्रिय भागीदार की दिशा में एक बड़ा कदम है। पंचायती राज निकायों में लगभग 10 लाख महिलाओं ने निर्णय लेने वाले पद ग्रहण किये हैं। यह संतोष की बात है कि वर्तमान संसद इस मुद्दे से अवगत है और वह गंभीरतापूर्वक ऐसे उपायों का पता लगा रही है जिनसे राजनीति में महिलाओं की अधिकाधिक भागीदारी सुनिश्चित हो सके और राजनीतिक जीवन में पुरुषों और महिलाओं की भागीदारी में वृद्धि हो।

कुल मिलाकर, संसद का रूप मतदाताओं के बदलते हुए सामाजिक-आर्थिक परिदृश्य के साथ बदलता रहा है—आखिरकार, संसद, विशेषकर लोक सभा स्वयं में देश का एक लघु रूप है।

संसद—न्यायसंगति की व्यवस्थापक

जैसी कि पहले चर्चा की जा चुकी है, हमारा संविधान सामाजिक परिवर्तन का एक साधन रहा है।

वे इस बात से आश्वस्त थे कि सामाजिक और आर्थिक लोकतंत्र को राजनैतिक लोकतंत्र के साथ-साथ चलना चाहिए। संविधान निर्माताओं ने यह सुनिश्चित किया कि संविधान में इस संबंध में पर्याप्त मार्गनिर्देश और निदेश दिये गये हैं कि सामाजिक व्यवस्था का कार्य कैसे करना है जो कि वास्तव में हमारे जैसे भिन्न और स्तरीय समाज में एक दुष्कर कार्य है। प्रस्तावना, मौलिक अधिकारों और राज्यों के नीति निदेशक सिद्धांतों में संविधान निर्माताओं की इच्छा और उद्देश्य को स्पष्ट रूप से दर्शाया गया है। उन्होंने अपनी योजनाओं में यह कार्य संसद पर छोड़ दिया कि वह सामाजिक परिवर्तन करने के लिए गति और तंत्र प्रदान करे।

उपनिवेशी शासन से निकलने के बाद भारत को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ा था। यद्यपि सामाजिक और आर्थिक असमानताओं से राजनैतिक व्यवस्था के प्रति उत्पन्न चुनौतियों का राष्ट्रीय नेतृत्व द्वारा कारगर ढंग से समाधान किया गया था फिर भी ये हमारे राष्ट्र के कल्याण के लिए अधिक लाभप्रद सिद्ध नहीं हुईं। कल्याणकारी राज्य की अवधारणा में कई वंचित और कमजोर वर्गों की स्थिति सुधारने के लिए सरकार की प्रमुख भूमिका की परिकल्पना की गई है। यह केवल सामाजिक-आर्थिक आजादी का प्रश्न ही नहीं है बल्कि मौलिक रूप से वंचित लोगों को अधिकार देने का प्रश्न है जिनकी जनसंख्या अत्यधिक है।

इसकी महत्वपूर्ण भूमिका को महसूस करते हुए संसद ने अत्यधिक चिन्ता और असाधारण उत्साह से अपना कार्य किया। पहले ही संविधान में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए लोक सभा और राज्य विधान सभाओं में सीटों के आरक्षण की व्यवस्था है। अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, अल्पसंख्यकों, पिछड़ी जातियों (बी.सी.) और अन्य पिछड़ी जातियों (ओ.बी.सी.) की दशा पर ध्यान देने तथा सर्वश्रेष्ठ ढंग से उनका सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक उद्धार करने हेतु उपाय सुझाने के लिए विगत में संसद ने विभिन्न आयोगों तथा समितियों का गठन किया है। इनमें से कुछ आयोग तथा समितियां स्थायी निकाय हैं जिनमें निगरानी तंत्र भी है ताकि सभी कल्याणकारी उपायों का पूर्ण क्रियान्वयन सुनिश्चित किया जा सके।

एक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा में समाविष्ट एक अन्य सिद्धांत गरीबी हटाना, सम्पदा अर्जन तथा इसका उन सभी के बीच समान वितरण करना है जिनका इस अर्जन में योगदान है। इस बात को ध्यान में रखते हुए अनेक भू-सुधार उपाय लागू किए गए थे और उन्हें संविधान की नौवीं अनुसूची में रखा गया था ताकि उन्हें न्यायालयों में चुनौती नहीं दी जा सके। संसद तथा

इसके नेतृत्व में राज्य विधान मण्डलों ने सभी नागरिकों—पुरुष तथा महिलाओं के लिए समान रूप से जीविका के पर्याप्त साधन जुटाने, समान कार्य के लिए समान वेतन देने, कुरीतियों तथा श्रमिकों की आर्थिक आवश्यकता के शोषण के विरुद्ध संरक्षण प्रदान करने तथा उनके एवं अल्प आयु के बच्चों तथा युवाओं के स्वास्थ्य और शक्ति की भी रक्षा करने और शोषण तथा नैतिक और भौतिक परित्याग के विरुद्ध संरक्षण प्रदान करने के लिए विधान पारित किए हैं। कार्य की न्यायोचित और मानवीय स्थितियों तथा प्रसव राहत के लिए भी उपाय किए गए हैं। महिलाओं, बच्चों, श्रमिकों तथा औद्योगिक श्रमिकों के कल्याण के लिए विधान बनाए गए हैं और जहां कहीं भी आवश्यकता है, बदलती हुई स्थिति के अनुसार आवश्यक उचित संशोधन किए गए हैं अथवा नए उपाय किए गए हैं। सम्पत्ति के उत्तराधिकार के मामलों में संसद द्वारा क्रान्तिकारी अधिनियम बनाये गये थे। कानून संबंधी पुस्तकों में विकलांगों और अपंगों के कल्याण के लिए भी विधान बनाये गए हैं।

दूसरी ओर संसद ने राष्ट्र के सम्पूर्ण कल्याण के लिए अनेक उपाय किये हैं। जबकि राज्य ने विकास की प्रक्रिया में स्वयं के लिए एक भूमिका तैयार की, फिर भी, गैर-सरकारी क्षेत्र ने भी इस प्रयास में शामिल होने के लिए अधिकाधिक प्रोत्साहित होना आरंभ कर दिया। योजना की प्रक्रिया से यह सुनिश्चित हो गया कि जहां तक संभव हो सका स्पष्ट लक्ष्य निर्धारित किये गये और उनकी प्राप्ति हुई। अनेक महत्वपूर्ण उद्योगों और सेवा क्षेत्रों का राष्ट्रीयकरण किया गया। संसद ने हमेशा बदलती वास्तविकताओं के प्रति स्वयं को सजग रखा। जब उदारीकरण की प्रक्रिया आरंभ हुई थी, तो इसने इस प्रयास को प्रोत्साहित किया, हालांकि इससे स्पष्ट रूप से यह संकेत मिलता है कि राज्य नागरिकों के प्रति अपने उत्तरदायित्व से पूर्णत: बच नहीं सकता जैसी कि संविधान में व्यवस्था की गई है।

यहां तक की उभरती स्थितियों के अनुरूप संसद राष्ट्र की स्थिति और नब्ज के साथ चली है। यह बात उस समय पर्याप्त रूप से सिद्ध हो गई थी जब मतदान की आयु 21 वर्ष से घटाकर 18 वर्ष कर दी गई थी जिसके परिणामस्वरूप लाखों नवयुवकों और युवतियों को अपने मताधिकार का उचित हक प्राप्त हुआ। निर्वाचित पंचायती राज संस्थाओं और नगर पालिकाओं की व्यवस्था करने के लिए किए गए संशोधन निचले स्तर पर लोकतंत्र को सुदृढ़ बनाने में दूरदर्शितापूर्ण विधान सिद्ध हुए हैं।

संसद का सरोकार हमारी सांस्कृतिक परम्परा के संरक्षण और अनुरक्षण, हमारे पर्यावरण और हमारे स्वतंत्रता संघर्ष की समृद्ध विरासत से भी है।

यह कहना बिल्कुल सही है कि संविधान चाहे कितने भी उदात्त रूप से सृजित किया गया हो, वह राजनीति के व्यावहारिक ढांचे में ही अपना रूप व आकार प्राप्त करता है। अधिक अर्थपूर्ण और सौदृश्यपूर्ण लोकतंत्र के लिए हमारा संघर्ष सतत् रूप से जारी रहेगा। इस राष्ट्रीय अभियान में संसद की भूमिका वास्तव में अद्वितीय है।

भविष्य

संविधान की मूल विशिष्टताओं की जानकारी

उच्चतम न्यायालय द्वारा समय-समय पर दिए गए निर्णयों से संविधान की मूल संरचना का विषय बार-बार परिभाषित होता रहा है। इसकी मूल विशिष्टताएं भी परिमित नहीं हैं। वस्तुत:, उच्चतम न्यायालय ने यह कहा है: ''प्रत्येक मामले में किसी भी विशिष्टता-विशेष का संविधान की मूल विशिष्टता के रूप में निर्धारण उच्चतम न्यायालय द्वारा उस समय किया जाएगा, उक्त मामला उसके समक्ष प्रस्तुत होगा।'' न्यायालय द्वारा दिए गए विभिन्न निर्णयों के अनुसार संविधान की मूल विशिष्टताएं निम्नलिखित हैं:-

बाक्स 1.2 : संविधान की मूल विशिष्टताएं

- संविधान की सर्वोच्चता
- लोकतंत्र
- कानून का शासन
- संपूर्ण प्रभुता-संपन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य स्वरूप
- धर्म निरपेक्षता
- शक्तियों के पृथकीकरण का सिद्धान्त
- संविधान की उद्देशिका में वर्णित उद्देश्य संघवाद
- न्यायिक समीक्षा और अनुच्छेद 32
- राष्ट्र की एकता और अखंडता
- न्यायपालिका की स्वतंत्रता
- स्वतंत्र और न्यायोचित चुनाव
- आपातकालीन प्रावधान
- अनुच्छेद 359(1) (आपात के दौरान मौलिक अधिकारों के प्रवर्तन के लिए किसी न्यायालय को समावेदन करने के अधिकार का निलंबन)
- समान न्याय
- भाग तीन में अन्य मौलिक अधिकारों का सार
- मौलिक अधिकारों तथा नीति निदेशक तत्वों के बीच सामन्जस्य तथा संतुलन
- कल्याणकारी राज्य के निर्माण हेतु सामाजिक तथा आर्थिक न्याय की संकल्पना
- राज्य के नीति निदेशक तत्व
- समान दर्जा तथा अवसर
- संसदीय लोकतंत्र
- व्यक्ति की स्वतंत्रता तथा उसका सम्मान
- संसद की संशोधन करने की सीमित शक्तियां
- प्रभावी न्याय की व्यवस्था
- प्रेस की स्वतंत्रता
- न्याय की संकल्पना

सरकार के स्वरूप में परिवर्तन

पांच दशकों की लोकतांत्रिक प्रक्रिया के अनुभव से प्राप्त शिक्षा के आधार पर यह विचार सुदृढ़ किया जा रहा है कि हम अमरीकी या फिर अमरीका, फ्रांस और जर्मन की शासन पद्धति के गुणों का समावेश कर राष्ट्रपति प्रणाली के ढांचे की तर्ज पर अपनी संसदीय प्रणाली को बदल दें। पिछले कुछ वर्षों में हुए राजनैतिक विकास ने भी संविधान की पुनरीक्षा हेतु विचार-विमर्श करने के लिए प्रेरित किया है और इसे समयानुरूप अधिक संगत बनाने की मांग की है। क्या हमें नए संविधान और नई शासन व्यवस्था के बारे में विचार करना चाहिए? यदि हां, तो हम किस प्रकार विचार करेंगे? अथवा ऐसा है कि हमारा विद्यमान संविधान और शासन व्यवस्था काफी सही है, लोगों की इच्छानुसार व्यवस्था को कार्यरत रखे जाने की अत्यंत आवश्यकता है, चाहे जो भी व्यवस्था हो, बशर्ते वह लोकतांत्रिक व्यवस्था हो?

राष्ट्रपति शासन लागू करने संबंधी विवाद

हमारा राज्यतंत्र एक प्रभुसत्ता संपन्न लोकतंत्रात्मक तथा संघीय गणराज्य है जिसमें संप्रभुता जनता में निहित है और इस तथ्य से यह स्पष्ट है कि जहां तक संभव हो, शासन की बागडोर निर्वाचित सरकारों के अधीन रहे। इस बात के परिप्रेक्ष्य में संविधान के अनुच्छेद 356 का प्रयोग करके राज्यों में राष्ट्रपति शासन लगाए जाने का हमेशा विरोध हुआ है और यह विवादपूर्ण मुद्दा रहा है।

संविधान लागू होने के पश्चात् 24 राज्यों में राष्ट्रपति शासन 95 बार लगाया जा चुका है। संविधान लागू होने के दो वर्षों के भीतर सर्वप्रथम पंजाब में राष्ट्रपति शासन लागू किया गया था। पंजाब (जिसमें पूर्व "पेप्सू" राज्य शामिल था) तथा केरल (जिसमें पूर्व ट्रावनकोर-कोचीन राज्य शामिल था) में नौ बार राष्ट्रपति शासन लगाया जा चुका है। राज्यों में राष्ट्रपति शासन लगाये जाने के अनेक कारण रहे हैं-

- विधान मंडल के सदस्यों द्वारा दल-बदल।
- गठबन्धनों का टूटना।
- अविश्वास प्रस्ताव का पारित होना।
- मुख्य मंत्रियों द्वारा त्यागपत्र दिया जाना।
- नये गठित राज्यों में विधान मंडलों का नहीं होना।
- राज्यों में सार्वजनिक आंदोलन के कारण प्रशासन में अस्थिरता।
- किसी भी दल द्वारा बहुमत प्राप्त न करना तथा राजनीतिक दलों द्वारा गठबन्धन कायम करने में विफल रहना।

वर्ष 1977 में नौ राज्यों में राष्ट्रपति शासन इस आधार पर लगाया गया था कि उन राज्यों में तत्कालीन सत्तारूढ़ दलों ने संसदीय चुनावों में विजय प्राप्त नहीं की थी।

राष्ट्रपति शासन लगाये जाने के मामलों में न्यायालयों द्वारा दिए गए निर्णय निम्नवत हैं:-

- राष्ट्रपति की संतुष्टि (अर्थात् केन्द्रीय मंत्रिमंडल की संतुष्टि), जो हालांकि व्यक्ति परक है, अनुच्छेद 356 का सार है।
- तथापि राष्ट्रपति की शक्तियां आत्यंतिक नहीं हैं। राष्ट्रपति की संतुष्टि संगत मामले की जानकारी पर आधारित होनी चाहिए जिसे न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया जा सके। न्यायालय में इस प्रकार की जानकारी के बारे में विशेषाधिकार के दावे के संबंध में कोई भी निर्णय न्यायालय द्वारा ही प्रत्येक मामले के गुण-दोष पर विचार करके लिया जाएगा। अनुच्छेद 356(1) अपने आप में न्यायिक समीक्षा से परे नहीं है।
- यदि न्यायालय द्वारा राष्ट्रपति शासन को लागू किया जाना अनुचित ठहराया जाता है तो उसे बर्खास्त की गई सरकार को पुन: बहाल करने तथा भंग अथवा निलंबित विधान सभा को फिर से पुन:प्रवर्तित करने तथा कार्यशील बनाने का अधिकार है।
- यदि कोई राज्य सरकार गैर-धर्म निरपेक्षवादी नीतियों को अपनाता है या गैर-धर्मनिपेक्षवादी अधिनियमों को पारित करता है, जो धर्म निरपेक्षता की नीति तथा संविधान की मूल विशिष्टताओं के विरुद्ध हैं, तो उस राज्य के विरुद्ध अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत कार्यवाही की जा सकती है।
- संसद द्वारा राष्ट्रपति शासन संबंधी उद्घोषणा की स्वीकृति न कर दिए जाने तक किसी भी राज्य की विधान सभा को भंग नहीं किया जा सकता; उसे केवल निलंबित किया जा सकता है।
- राष्ट्रपति राज्य सरकार के बने रहने की स्थिति में भी उसके कतिपय कृत्यों एवं शक्तियों को अपने हाथ में नहीं ले सकता। एक ही जगह दो सरकारें कार्य नहीं कर सकती हैं।
- संसद के दोनों सदनों द्वारा राष्ट्रपतीय उद्घोषणा का निरनुमोदन कर दिए जाने की स्थिति में उक्त घोषणा स्वयं व्यपगत हो जाएगी तथा बर्खास्त सरकार पुन: बहाल हो जाएगी।

अभी हाल ही में संविधान के अनुच्छेद 356 के दुरूपयोग को रोकने हेतु उपायों पर विचार करने के लिए उक्त मुद्दे पर अन्तर्राज्यीय परिषद की बैठक में विचार किया गया था। राष्ट्रपति शासन लागू किये जाने के पहले पूर्व चेतावनी अथवा कारण बताओ नोटिस देना, संसद द्वारा दो-तिहाई बहुमत से राष्ट्रपतीय उद्घोषणा का अनुमोदन, आदि जैसे कुछ उपायों पर चर्चा की गई थी। इस संबंध में कोई सहमति नहीं हुई। तथापि, अनुच्छेद 356 को पूर्णत: समाप्त कर दिए जाने का सुझाव किसी के द्वारा भी नहीं दिया गया था।

हमारी बहुदलीय प्रणाली तथा राजनीति के बदलते मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में संविधान के अनुरूप प्रशासन से उत्पन्न होने वाले

सामाजिक-आर्थिक मुद्दों की संवेदनशीलता के तात्कालिक परिणामों के संबंध में अनुच्छेद 356 से जुड़े मामलों का नि:संदेह सतर्कता तथा सावधानी पूर्वक समाधान किए जाने की आवश्यकता है।

गठबन्धन सरकारें

देश में 1977 में अब तक 40 गठबन्धन सरकारें बनी हैं। इन सरकारों का औसत कार्यकाल मात्र 26 महीने रहा है। बहु-दलीय सरकारों के गठन के बढ़ते रुझान के कारणों का पता लगाना कोई मुश्किल नहीं है। यद्यपि इस राज्यव्यवस्था का ढांचा संघीय है, तथापि यह राज्यों का संघ है। पहले चुनावों से लेकर छठे दशक के अंत तक, कुल-मिलाकर, राष्ट्रीय स्तर के दल सरकारें बनाते रहे। तदोपरान्त, सातवें दशक के करीबन अंत में राज्यों में क्षेत्रीय दल शक्तिशाली बन कर उभरे। तत्पश्चात् क्षेत्रीय दलों ने केन्द्र में भी सरकार में भागीदारी करना शुरू कर दिया। ग्यारहवें आम चुनावों ने केंद्र में क्षेत्रीय दलों को सत्ता सौंप दी और राष्ट्रीय स्तर के दल सरकार से बाहर रहे। राजनैतिक दलों का वैचारिक मतभेद एक अन्य कारण है। यद्यपि वामपंथी और दक्षिणपंथी विचारधाराओं के बीच एक स्पष्ट अन्तर्निहित भेद है, तथापि वामपंथी आंदोलन में भी विभिन्न राजनैतिक दल शामिल हैं। क्षेत्रीय आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति भी कई दलों यथा— द्रमुक, अन्नाद्रमुक, एम.डी.एम.के., तेलुगु देशम पार्टी, असम गण परिषद, हरियाणा विकास पार्टी, केरल कांग्रेस, कर्नाटक कांग्रेस आदि के अभ्युदय का कारण रहा है। जन-समूहों की प्रभावशाली व्यक्तित्व के प्रति उन्मुखता को देखते हुए प्रभावशाली राजनैतिक नेतागण अपने राजनीतिक दल बनाने को प्रेरित हुए हैं। गुटबन्दी की राजनीति (ने भी बहुधा वर्तमान दलों के केन्द्रीय नेतृत्व के विरोध में विद्रोह को भड़काया है, जिसके परिणामस्वरूप भी नए दलों का उदय हुआ है। अपने-अपने विशेष मतदाता समूहों के साथ दलों का प्रगुणन, अन्ततोगत्वा किसी भी एक दल के लिए साधारण बहुमत प्राप्त कर लेने पर प्रतिकूल प्रभाव डाल रहा है। त्रिशंकु विधायी निकाय इसके परिणाम हैं। इन परिस्थितियों में मात्र गठबन्धन व्यवस्थाओं से ही सत्ता तक पहुंचना संभव है।

गठबंधन सरकारों का कार्यकाल सीमित रहने के कई कारण हैं। सर्वप्रथम, जब चुनाव के जरिए त्रिशंकु विधान मंडल की स्थिति बनती है, तो सम्बन्धित दल तत्काल नए चुनावों का सामना करने के लिए तैयार नहीं होते हैं। कम से कम कुछ समय के लिए चुनावों को टालने की विवशता रहती है। दूसरे, गठबन्धन सरकार में सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त का पालन करना कठिन हो जाता है। केबिनेट के सदस्य विभिन्न दलों से सम्बन्धित होते हैं और विषय हितों का प्रतिनिधित्व करते हैं, अत: सरकार के समक्ष प्रस्तुत मुद्दों पर उनमें मतभेद रहता है। तीसरे मंत्रिगण अपने मतदाताओं में अपनी स्वायत्तता दिखाने के लिए लोगों के बीच जो रुख दिखाते हैं वह गठबन्धन सरकार के स्थायित्व के अनुकूल नहीं होता है। चौथे, गठबन्धन में मुख्यमंत्रियों और प्रधान मंत्रियों को बहुधा काम करने की उतनी स्वायत्तता नहीं मिलती है, जितनी कि एक दल के शासन में मिलती है। ऐसा इसलिए है कि गठबन्धन के अपेक्षाकृत छोटे घटकों द्वारा भी दबाव डाला जाता है। पांचवें, भारत की संघीय व्यवस्था के अंतर्गत, बहुधा, केन्द्र में गठबंधन में शामिल दल का हित राज्य सरकार में इसके हितों से असंगत हो सकता है। इस कारण से दल के स्थानीय नेतागण केन्द्र में अपने नेताओं का विरोध करने लग जाते हैं। इन परिस्थितियों में दल के स्थानीय नेताओं के लिए केन्द्र में गठबन्धन सरकार को बनाए रखने के हित में दुश्मन के साथ रहने जैसी बात हो जाती है। अंतत:, केन्द्रीय स्तर पर गठबन्धन में सहयोग करने वाले दलों को राज्य स्तर पर अपने आर्थिक हितों से समझौता करने में कठिनाई हो सकती है। जनता दल और द्रमुक का केन्द्र में रवैया तथा कावेरी और कृष्णा जल बंटवारे के विषय में कर्नाटक और तमिलनाडु में उनकी स्थिति इसका एक विशिष्ट उदाहरण है।

गठबन्धन सरकारों की सफलता के लिए साझा न्यूनतम कार्यक्रम होना चाहिए, जो भागीदारी में शामिल दलों के बीच बुनियादी नीतिगत मसलों पर सहमति के सर्वोच्च साझा प्रस्ताव को परिलक्षित करेगा। आदर्श स्थिति तो यह कही जाएगी कि ऐसे कार्यक्रमों पर चुनावों से पहले ही सहमति हो जानी चाहिए। इन कार्यक्रमों को आधार बनाकर लड़े गए चुनावों से ऐसे दलों के गठबन्धन की, यदि वे सत्ता में आ जाते हैं, विश्वसनीयता अधिक होगी। ऐसे साझा न्यूनतम कार्यक्रम पर कम से कम चुनावों के समाप्त होने के बाद किंतु सत्ता ग्रहण करने से पहले सहमति हो जानी चाहिए। अन्यथा लोगों के द्वारा गठबन्धन को अवसरवादी गठबन्धन के रूप में देखा जा सकता है और इसलिए इसके विश्वसनीयता के समाप्त होने की संभावना है।

साझा न्यूनतम कार्यक्रम के कार्यान्वयन के दौरान नीति संबंधी व्यक्तिगत विषयों और जन महत्व के विषयों के संबंध में सरकारी स्तर पर निर्णय लेने से पहले समुचित परामर्श कर लिया जाना चाहिए।

गठबन्धन के साझीदारों में परामर्श के लिए संस्थागत व्यवस्थाएं होनी चाहिए। उदाहरण के लिए केरल में गठबन्धन शासन की अपेक्षाकृत अधिक सफलता का एक कारण यह है कि वहां समन्वय समितियां, संपर्क समितियां आदि संस्थाएं मौजूद हैं, जिनमें गठबन्धन के साझीदारों के उच्च स्तरीय अधिकारी शामिल हैं। परामर्श की प्रक्रिया में और साथ ही विद्यमान समन्वय तंत्र के संबंध में कतिपय संचालन कुशलता की आवश्यकता होगी। केरल में दलों के गठबंधन का इतिहास अपेक्षाकृत छोटे-छोटे दलों के उदाहरणों से भरा हुआ है, जो बड़े-बड़े गठबंधन वाले दलों को "बिग ब्रदर एटीट्यूड" की शिकायत करते हैं।

गठबंधन की सरकार में दलों की संख्या के अनुपात में विभिन्न दलों के मंत्रियों के बीच विभागों का वितरण और

विधायिका तथा कार्यपालिका में अन्य पदों का वितरण करना ही गठबन्धन सरकार की सफलता की निशानी है। संचालन करने का अर्थ है सत्ता में भागीदारी। एक दलीय सरकार की अपेक्षा गठबंधन की सरकार में शक्तियों का विभाजन अधिक कठिन है। विशेषत: पदों का विभाजन न्यायसंगत सिद्धान्तों पर आधारित होना चाहिए।

गठबंधन सरकार की सफलता किसी सीमा तक नेतृत्व करने वाले व्यक्ति पर निर्भर करती है। उसकी छवि, आचरण और दृष्टिकोण से गठजोड़ की सरकार के सभी सदस्यों को अपने पदों का दुरुपयोग करने के बजाय यह महसूस करना चाहिए कि वे सरकार चलाने में अहम् भूमिका निभा रहे हैं।

बहुदलीय प्रणाली संघ बनाने के स्वातंत्र्य के मौलिक अधिकार के प्रयोग का बुनियादी और सुदृढ़ आधार प्रस्तुत करती है। जीवन का सत्य यह है कि इस प्रकार की प्रणाली गठबंधन सरकारों को बढ़ावा देगी। आज के समय में प्रजातंत्र में मिली-जुली सरकारों की आवश्यकता है। जिस गठबंधन सरकार में अच्छा समन्वय रहा है, उसने सच्चे अर्थों में जनप्रतिनिधित्व और अच्छा शासन चलाया है। हमें भारत में गठबंधन सरकारों के द्वारा शासन का एक अच्छा-खासा अनुभव है। केरल और पश्चिम बंगाल की गठबंधन की सरकारें इसका एक सफल उदाहरण रही हैं। हमें अपनी ही तरह की गठबंधन सरकार बनाने में सिद्धहस्त होना चाहिए जिससे राजनैतिक स्थायित्व प्राप्त होगा और यह स्थायित्व लोगों के सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए मूल रूप से आवश्यक है।

सत्ता का विकेन्द्रीयकरण और निचले स्तर तक राजनैतिक और प्रशासनिक शक्तियों में भागीदारी

हमारे देश की सीमा 3 मिलियन वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैली हुई है, इस देश की जनसंख्या एक अरब होने जा रही है, इस देश में विभिन्न धर्मावलंबी जैसे हिन्दू, इस्लाम, ईसाई, सिक्ख, बौद्ध, जैन इत्यादि हैं। इस देश में सदियों से विकसित 1652 भाषाएं बोली जाती हैं जो नीग्रो, आस्ट्रिक, सिनो-तिब्बती, द्रविड़, भारतीय-आर्य भाषाओं और अन्य भाषाओं में विकसित हुई हैं। जिनकी भाषाई विविधता में से 18 भाषाओं को सरकारी तौर पर मान्यता दी गई है। इस देश के लोगों की सांस्कृतिक विविधता इतनी व्यापक है कि उसका सही आकलन नहीं किया जा सकता है। आर्थिक और क्षेत्रीय विभाजन के होते हुए भी यहां इतनी व्यापक विभिन्नताओं और जातियों तथा समुदायों में असीम विभिन्नता है। यह बहुआयामी विविधता हमारे देश में प्रजातंत्र के लिए एक मौलिक चुनौती है। यदि प्रजातंत्र का शासन मतभेद का सम्मान करने, सर्वसम्मति का सम्मान करने और बहुमत की इच्छा का सम्मान करने का शासन है तो कोई भी हमारी विभिन्नताओं के होते हुए इस चुनौती की गंभीरता और जटिलता को समझ सकता है।

महात्मा गांधी ने हमारी जटिलताओं को समझा और देश का शासन चलाने के लिए रामराज्य प्रणाली अपनाने को कहा। इस प्रणाली से उनका मतलब था सत्ता का विकेन्द्रीयकरण तथा गांवों और पंचायतों की निम्नस्तर पर सत्ता में भागीदारी।

पंचायती राज की स्थापना हेतु 73वें और 74वें संविधान संशोधनों को संविधान के मूल ढांचे का अंग बनाने में हमें 42 वर्ष का समय लगा। इस से पूर्व महाराष्ट्र, राजस्थान, गुजरात, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक इत्यादि कुछ राज्यों में पंचायती राज्य को कुछ हद तक कार्यान्वित किया जा चुका था। पंचायती राज की प्रथा को कार्यान्वित करने में कुछ हद तक बाधाएं आई हैं।

सच्चे लोकतंत्र की शक्ति को राजनैतिक शक्ति के विभाजन के प्रति सक्रिय रूप से तत्पर रहने में देखा जा सकता है। हमारे संविधान निर्माता दूरदर्शी थे और उन्होंने केन्द्र और राज्यों के बीच शक्तियों का विभाजन करने के संबंध में मानदंड निर्धारित किए। उन्होंने संविधान में निर्देशक सिद्धान्तों के रूप में स्थानीय स्वशासन की भी व्यवस्था की। संविधान में नवीनतम संशोधनों ने इन निर्देशक सिद्धान्तों को संविधान का अभिन्न अंग बना दिया है। तीन-स्तरीय पंचायती राज संस्थानों में कृषि, स्वास्थ्य, शिक्षा, ग्रामीण, उद्योग, शहरी विकास इत्यादि से संबंधित विषय सूचीबद्ध किए गए हैं। महत्वपूर्ण बात यह है कि यह सब उन लोगों की इच्छा-शक्ति पर निर्भर करता है, जिनके हाथों में सत्ता है, कि वे इस सत्ता को स्थानीय स्वशासन तक पहुंचाएं। हमने सत्ता में किसी को भागीदार न बनाने की हमारी औपनिवेशिक प्रवृत्ति अभी बदली नहीं है। अंग्रेजों का दृढ़ विचार था और उन्होंने उद्घोषणा की थी कि भारत स्वशासन चलाने में सक्षम नहीं है। हमारे देश के नीति निर्माता भी यह सोचते हैं कि स्वशासन हेतु स्थानीय निकाय अभी पूर्ण रूप से विकसित नहीं हैं। यह बात कुछ दिन पहले मुख्यमंत्रियों की बैठक में भी सिद्ध हुई जिसमें वे शक्तियों और जिम्मेदारियों के वस्तुत: हस्तांतरण संबंधी विषय पर किसी निर्णय पर नहीं पहुंच पाए। सबसे पहले हमें सच्चे अर्थों में प्रजातंत्र प्राप्त करने के लिए संविधान के 73वें और 74वें संशोधनों को व्यवहार में लाना चाहिए। यहां तक कि राजनैतिक नीति-निर्माता सच्चे अर्थों में स्थानीय निकायों और लोक संस्थानों को शक्तिशाली बनाना चाहते हैं तो इस समय जो मजबूत स्थिति वाले संस्थान हैं वे इस प्रक्रिया का सख्ती से विरोध कर रहे हैं, केरल राज्य जो उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश की तुलना में एक छोटा राज्य और साक्षर व प्रबुद्ध है वहां भी विद्यमान संस्थानों से स्थानीय संस्थानों में अधिकारियों के स्थानांतरण के सरकार के निर्णय का विरोध किया जा रहा है। सच्चे प्रजातंत्र के लिए लोगों को शक्ति प्रदान करने में हमारी सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि हममें संस्थानों को अनुशासित करने की कितनी क्षमता है।

हिंसा और आतंकवाद

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी, प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी और राजीव गांधी हिंसा के शिकार हुए हैं।

विश्व में सबसे बड़ा लोकतंत्र होने के हमारे दावे के बावजूद भी हमारे समाज में हिंसा विद्यमान है। जम्मू और कश्मीर में हिंसा के कारण 1992 से अब तक 10,000 से अधिक लोग मारे गए

हैं। पाकिस्तान द्वारा भड़काई गई हिंसा इसका प्रमुख कारण है। इस प्रकार की हिंसा जम्मू में भी हो रही है। और आधारभूत सेवाएं जैसे, रेलवे, विद्युत पारेषण लाइनें और राजमार्ग इन हमलों के लक्ष्य हैं।

पंजाब में सामान्य स्थिति की बहाली के बावजूद भी उग्रवादी, आतंकवादी गतिविधियों को पुन: आरम्भ करने के प्रयास कर रहे हैं। वर्ष 1996 में असम में अल्फा और बोडो आतंकवादी संगठनों ने उग्रवाद और हिंसा का नया दौर शुरू किया है।

एन.एस.सी.एन. (नेशनल स्टेट काउंसिल ऑफ नागालैंड) ने हिंसा और हत्याओं का सिलसिला फिर शुरू कर दिया है, यद्यपि ऐसी घटनाएं बड़े पैमाने पर नहीं हो रही हैं।

मणिपुर में कुकी और घाटी के उग्रवादियों के आंतक के कारण कानून और व्यवस्था की स्थिति चिन्ताजनक बनी हुई है।

त्रिपुरा में ए.टी.टी.एफ. और एन.एल.एफ.टी. जैसे जनजातीय उग्रवादी दलों द्वारा की जा रही लूटमार से कानून और व्यवस्था की स्थिति बिगड़ रही है।

मेघालय में जनजातीय और गैर-जनजातीय लोगों के मध्य जातीय भेद हिंसा का मुख्य कारण है। मध्य प्रदेश में पीपुल्स वार ग्रुप (पी.डब्ल्यू.जी.) ऐसी कई घटनाओं और हत्याओं के लिये उत्तरदायी था। पी.डब्ल्यू.जी. अब महाराष्ट्र के गढ़चिरोली और चन्द्रपुर जिलों में केन्द्रित है।

साम्प्रदायिक हिंसा, जातीय तनाव और वर्ग संघर्ष जैसे कारक देश की आन्तरिक सुरक्षा व्यवस्था पर गहन प्रतिकूल प्रभाव डाल रहे हैं।

उत्तराखण्ड आन्दोलन जैसे क्षेत्रीय आन्दोलन भी देश में शांति को भंग कर रहे हैं।

तमिलनाडु के कुछ भागों में भी लिट्टे की गतिविधियां चलती रही हैं।

सामाजिक हिंसा के पीछे राजनीतिक एवं आर्थिक कारण हैं। राजनीतिक और आर्थिक पिछड़ापन और बहिष्कार प्राय: इसके कारण हैं। इन अन्तर्निहित कारणों की ओर ध्यान देना होगा और इनका समाधान करना होगा।

संसद का निष्पादन

सभा द्वारा विभिन्न प्रकार की कार्यवाही पर लगाए गए समय की संवीक्षा करने से यह पता चलता है कि चर्चा (राष्ट्रपति के अभिभाषण, मंत्रियों के वक्तव्य आदि पर चर्चा के अतिरिक्त आधे घंटे की चर्चा—नियम 193 के अंतर्गत चर्चा) पर लगे समय में भारी वृद्धि हुई है और इसका अनुपात प्रथम लोक सभा में 4% से बढ़कर नौवीं लोक सभा में शीर्षस्थ 44% तक पहुंच गया है। इससे समसामयिक महत्व, प्रतिनिधित्व और शिकायत निवारण संबंधी मुद्दों पर बल दिए जाने का संकेत मिलता है। इस बात को ध्यान में रखते हुए कि लोक सभा जनता की सभा है, स्थिति बिल्कुल वैसी ही है जैसा इसे होना चाहिए। तथापि, निम्नलिखित अन्य प्रवृत्तियों पर ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है:

- बैठकों की संख्या प्रथम लोक सभा में 677 से घटकर दसवीं लोक सभा में 423 रह गई है। यह तुलना केवल प्रथम, द्वितीय, तृतीय और दसवीं लोक सभा की है क्योंकि इन्होंने अपना पांच वर्ष का कार्यकाल पूरा किया। अन्य लोक सभाओं ने ऐसा नहीं किया। पांचवीं लोक सभा छ: वर्ष तक चली और इसलिए इसकी तुलना नहीं की जा सकती।
- प्रतिदिन औसत कार्यवाही समय 6.27 से कम होकर 5.58 रह गया है। (उपर्युक्त तुलना के आधार पर)
- विधि निर्माण संबंधी मुख्य कार्य पर लगाए गए समय में भी भारी कमी हुई है—जो कि प्रथम लोक सभा में 49 प्रतिशत की तुलना में 22 प्रतिशत से 28 प्रतिशत के बीच रह गया है। यदि हम यह मानें कि प्रथम लोक सभा का समय संरचनात्मक काल था और इसलिए अधिक समय विधि निर्माण संबंधी कार्यों पर लगाया गया था इस संबंध में आई समग्र गिरावट स्पष्ट है।
- दसवीं लोक सभा के दौरान 14 प्रतिशत समय शून्य काल पर लगा। शून्य काल के दौरान उठाए गए मुद्दे सभा के सदस्यों के गहन अनुभव को ध्यान में रखते हुए महत्वपूर्ण हो सकते हैं, इसमें शोर-गुल और पूर्ण अव्यवस्था उस समय दिखाई देती है जब अनेक सदस्य एक ही समय बोलने की कोशिश करते हैं जिससे प्राय: समय व्यर्थ जाता है।
- जैसा कि दसवीं लोक सभा के अनुभव से देखा जा सकता है, नियम 377 के अधीन उठाए गए अनेक मामलों के बारे में मंत्रियों द्वारा संबंधित सत्र में उत्तर नहीं दिए जाते।
- बार-बार पूर्ण अव्यवस्था और बार-बार व्यवधान डालने की हाल में घटनाएं हुई हैं जो एक गंभीर विचारणीय मामला है।

दसवीं लोक सभा के दौरान, 10 प्रतिशत समय इन्हीं बातों पर बीत गया जिनके कारण प्राय: बाध्य होकर सभा की कार्यवाही स्थगित करनी पड़ी।

नौकरशाही का राजनीतिकरण

लोगों की यह धारणा है कि गत कुछ वर्षों में राजनीतिज्ञों और नौकरशाहों के बीच एक सांठ-गांठ चल रही है, जिससे सिविल सेवाओं की निष्पक्षता तथा सार्वजनिक जीवन की शुचिता पर विपरीत प्रभाव पड़ा है। विभिन्न हलकों में यह आम शिकायत है कि सिविल सेवक तथा पुलिस अधिकारी कानून के प्रति जवाबदेह होने के बजाए विधि निर्माताओं के प्रति जवाबदेह हो

गए हैं। हम नौकरशाही को इस राजनीतिकरण से किस प्रकार मुक्त कर सकते हैं?

मूल कर्त्तव्य

नैसर्गिक नियम अथवा सामान्य नियम से उत्पन्न मूल अधिकारों की संविधान में गारंटी प्रदान की गई है। इन अधिकारों और इनमें समरसता की भावना तथा नीति निदेशक सिद्धान्तों की संविधान की प्रमुख विशेषताओं के रूप में व्याख्या भी की गई है। मूल अधिकारों के बारे में मामला न्यायालय में उठाया जा सकता है। अधिकार और कर्तव्य साथ-साथ चलते हैं। इस प्रकार से 1976 का 42वां संविधान संशोधन अत्यधिक महत्वपूर्ण है जिसमें कई मूल कर्त्तव्यों की व्याख्या की गई है—

- संविधान, इसके उच्च आदर्शों और संविधान के अंतर्गत स्थापित संस्थाओं, राष्ट्र ध्वज और राष्ट्र गान का सम्मान करना;
- स्वतंत्रता सेनानियों के उच्च आदर्शों को संजोकर रखना;
- देश की प्रभुसत्ता, एकता की अखण्डता की रक्षा;
- देश की रक्षा करना और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करना;
- लोगों में समरसता की भावना पैदा करना जो धर्म, भाषा और प्रादेशिक भिन्नताओं से परे हो और स्त्रियों का सम्मान करना;
- गौरवशाली परम्परा और सामाजिक संस्कृति का परिरक्षण;
- पर्यावरण की रक्षा;
- वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास;
- सार्वजनिक सम्पत्ति को सुरक्षित रखना और हिंसा से दूर रहना;
- व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत् प्रयास।

इन मूल कर्त्तव्यों में नैसर्गिक मूल्य भी निहित हैं। शिक्षा का कार्य इन मूल्यों को समाविष्ट करना भी है। निस्संदेह, हमारी शिक्षा नीति में इन मूल्यों में से अधिकार को मुख्य पाठ्यचर्या को पूर्ण रूप से नवीनतम ढंग से कार्यान्वित किए जाने को उच्च प्राथमिकता दी जानी जाहिए। उपर्युक्त बातों से भावी राजनैतिक नेताओं को मदद मिलेगी और नीतियों और व्यवहारों को उचित दिशा प्रदान की जा सकेगी।

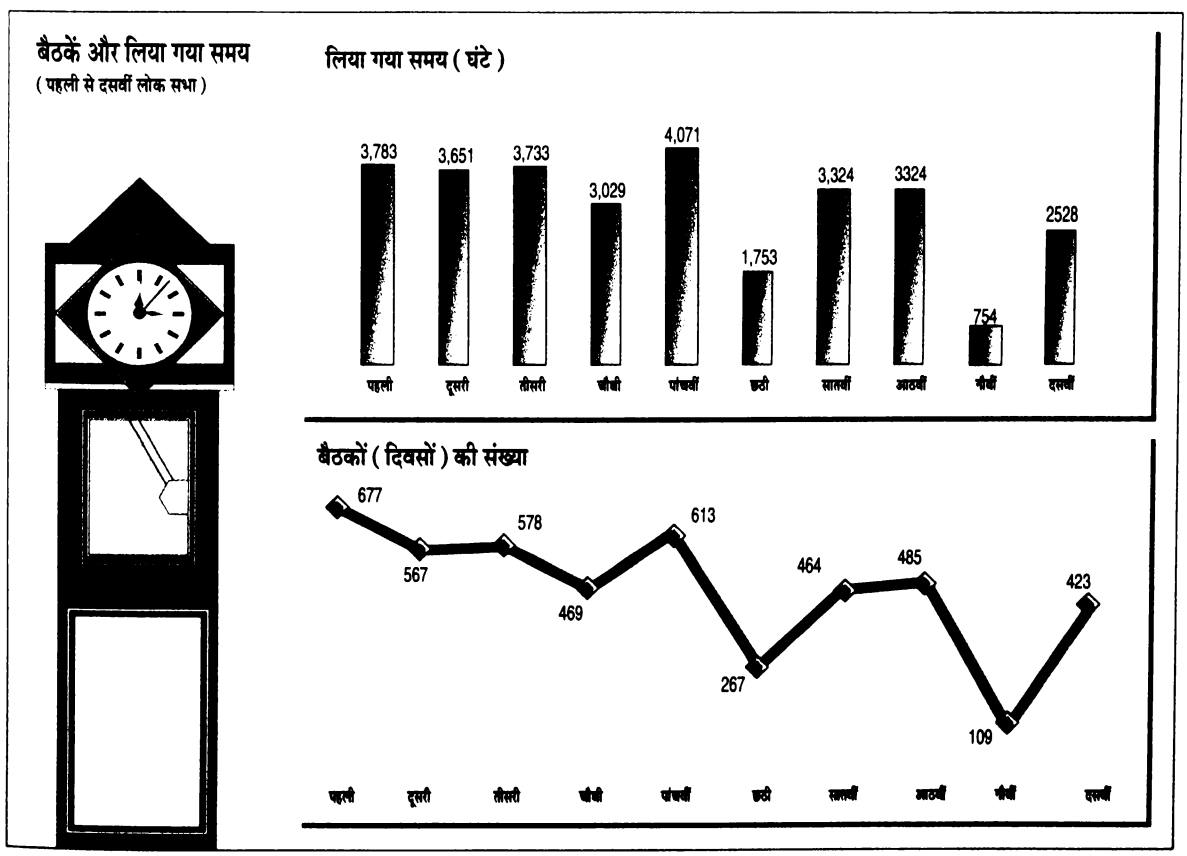

दसवीं लोक सभा के दौरान नियम 377 के अधीन उठाये गये मामले

(पहले सत्र से लेकर पन्द्रहवें सत्र तक)

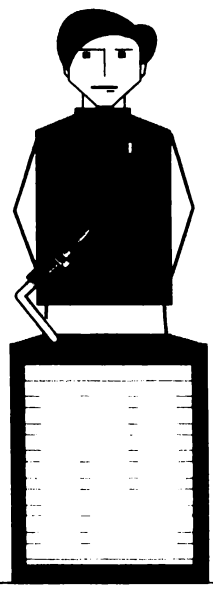

उठाए गए मामलों की संख्या

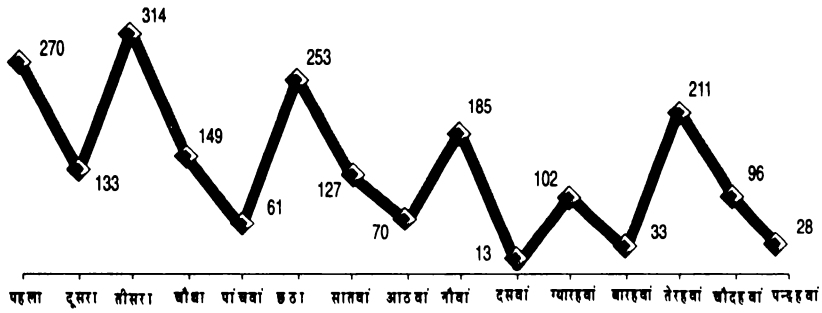

मंत्रियों द्वारा सदस्यों को भेजे गये उत्तरों की संख्या

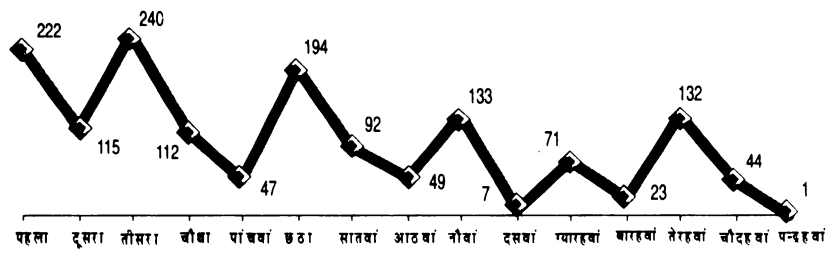

2

अर्थव्यवस्था

हमने योजनाबद्ध अर्थव्यवस्था का चयन किया और पंचवर्षीय योजनाओं को लागू किया। नौवीं योजना के लिए दृष्टिकोण (अप्रोच पेपर) पर चर्चा की जा रही है। पहली योजना के दौरान लगभग 3.5% की विकास दर से शुरू करके हमने अब तक लगभग 7.0% की विकास दर प्राप्त करने के लिए पर्याप्त शक्ति अर्जित की है। बचत करने की हमारी रुचि हमेशा अत्यधिक रही है। पहली योजना के दौरान निवेश दर लगभग 12% से शुरू होकर 25% से भी अधिक तक पहुंच गई है। वर्षोपरांत योजनाओं में प्राथमिकताओं और नीतियों में मानव विकास को छूते हुए लगभग प्रत्येक क्षेत्र का उल्लेख किया गया है, हालांकि समय-समय पर अलग-अलग बातों पर बल दिया गया है। वास्तव में हमने धीरे-धीरे सामन्ती और उपनिवेशी अर्थव्यवस्था को आधुनिक औद्योगिक अर्थव्यवस्था में बदलने में सफलता प्राप्त कर ली है। यह प्रक्रिया पूर्ण नहीं हुई है। आर्थिक रूप से सम्पन्न शक्तियों द्वारा हमारे देश के पूर्वाधिकारपूर्ण शोषण के प्रति और देश के अन्दर कुछेक हाथों में आर्थिक शक्ति के पूर्वाधिकारपूर्ण सकेन्द्रण द्वारा सहभागिता और सामाजिक न्याय सुनिश्चित करने के प्रति हमारी चिन्ता के कारण पूर्व के वर्षों में हमने आर्थिक संरक्षण और विनियमन की समग्र नीति अपनाई थी। वर्षोपरान्त योजनाबद्ध, सुरक्षित और विनियमित अर्थव्यवस्था के परिणामस्वरूप संसाधनों को नियोजित करने में कतिपय कमियां आई जिसका सम्पदा के सृजन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। राजस्व कम, व्यय अधिक, घाटा अत्यधिक होता रहा है और ऋण भार धारण क्षमता के अनुपात में नहीं है।

अंतर्राष्ट्रीयकरण और अन्तर्राष्ट्रीय बाजार की स्पर्धा की चुनौती का सामना करने के लिये हमें 1991 से आर्थिक सुधार और ढांचागत व्यवस्था करनी पड़ी थी। हमने काफी हद तक अविनियमन को प्रभावी बनाया है। राजकोषीय अनुशासन के प्रयास गम्भीर रूप से किये जा रहे हैं। घरेलू निवेश और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर प्रतिबन्ध हटाये जा रहे हैं। मुद्रा सुधार काफी महत्वपूर्ण चरण तक किये जा चुके हैं। निजी क्षेत्र की भागीदारी और विदेशी व्यापार के लिये अर्थव्यवस्था के अनेक क्षेत्र खोले जा रहे हैं। हमने कुछ उपलब्धियां हासिल की हैं। नई उत्पादन क्षमतायें सृजित की जा रही हैं। विदेशी पूंजी धीरे-धीरे आ रही है। सकल घरेलू उत्पाद की विकास दर को 6 से 7 प्रतिशत के स्तर तक बनाये रखा जा रहा है। अभी काफी क्षेत्रों को इसके दायरे में लाना बाकी है। सामाजिक आयामों को ध्यान में रखते हुए हमें सुधार की गति के बारे में सावधान रहना होगा। राष्ट्रीय मांग मानवीय पहलू के साथ सुधार करने की है।

पिछले पांच दशकों में हम खाद्य के क्षेत्र में आत्मनिर्भर हुए हैं। उत्पादन की गति मांग के अनुरूप रही है। उत्पादकता में भी महत्वपूर्ण वृद्धि हुई है। परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय मानकों के अनुसार उत्पादकता कम है। कृषि विकास दर स्थिर बनी रही है और यह कम भी होती रही है। हरित क्रान्ति को गंगा के पूर्व के भाग, ब्रह्मपुत्र घाटी और मध्य भारत में ले जाने के लिए हमें कृषि अवसंरचनात्मक क्षेत्रों में पर्याप्त निवेश करने होंगे और प्रतिबन्धात्मक व्यापार प्रथाओं को हटाना ऐसे हल हैं जिन पर विचार किया जाना चाहिए।

पंचवर्षीय योजनाओं के द्वारा औद्योगिक विकास घरेलू संरक्षण पर आधारित था और अन्तर्मुखी था। सरकारी क्षेत्र बुलन्दियों पर था। इस सभी के बावजूद अर्थव्यवस्था को चलाने के लिए एक ठोस बुनियादी ढांचा बनाया गया था। विश्व में बाजार प्रतिस्पर्धा की वास्तविकताओं का सामना करने के लिए उद्योग जगत का शीघ्र पुनर्गठन करना पड़ेगा ताकि इसे प्रतिस्पर्धी बनाया जा सके। सरकारी क्षेत्र को पुनर्जीवित करना पड़ेगा। घाटा उठा रहे उद्यमों को पुनर्जीवित करने की प्रक्रिया चल रही है। परन्तु इस प्रक्रिया में अधिक प्रगति नहीं हो रही है। कार्यचालन खर्च के लिए आन्तरिक संसाधनों की बाधा तथा बजटीय समर्थन के बिना श्रमिकों को किये जाने वाले भुगतान की काफी राशि बकाया है जो श्रम कानूनों का उल्लंघन है तथा जिससे इन उद्यमों के कामगारों का मनोबल गिर रहा है। सरकारी क्षेत्र के सुधार की प्रत्यक्ष अनिवार्यता में सार्वभौमिक राजनैतिक समर्थन का अभाव है। अन्य प्राथमिकता वाले क्षेत्रों के लिए बजटीय संसाधन जारी करने के लिए विनिवेश के माध्यम से पुनर्गठन हेतु कतिपय सरकारी क्षेत्र के उद्यमों का भी पता लगाया गया है परन्तु यह प्रक्रिया लड़खड़ा रही है। औद्योगिक रुग्णता बढ़ती जा रही है। लगभग

ढाई लाख औद्योगिक इकाइयां रुग्ण हैं जिनके अंतर्गत ऋण और अग्रिमों के रूप में बैंकों द्वारा दिया गया 13,000 करोड़ रुपये से अधिक की राशि फंसी हुई है। लघु क्षेत्र की औद्योगिक इकाइयां कुल रुग्ण एककों का 99% है तथा अवरूद्ध ऋण का 26% है तथा गैर-लघु क्षेत्र के 1% उद्यमों के अन्तर्गत शेष राशि अवरूद्ध है।

अनेक वर्षों में विकसित अन्तर्मुखी औद्योगिक ढांचे के कारण काफी लम्बे समय से माल का कम व्यापार हुआ है जिससे वर्ष 1950 में विश्व व्यापार में भारत का हिस्सा लगभग 2% से कम होकर 1980 में आधे प्रतिशत से भी कम रह गया। निर्यात आय मुख्यत: ज्यों की त्यों रही है।

निर्यात और आयात व्यवसाय से प्रतिबंध हटाने के कारण आर्थिक सुधारों के व्यापार-आयामों ने औद्योगिक क्षेत्र में उत्पादक शक्तियों को जन्म दिया है। वर्ष 1993-94 से 1995-96 तक निर्यात वृद्धि में डालर के सन्दर्भ में 18% से 19% की वृद्धि हुई है। निर्यात की दिशा और संघटन में विभिन्नता आनी शुरू हो गई है। इस गति को सतर्कता से बनाये रखना होगा।

गत पांच दशकों के दौरान विकास हेतु संघर्ष के माध्यम से चहुंमुखी वृद्धि के बावजूद भी आय में असमानताएं बनी हुई हैं। जिस सीमा तक भी आर्थिक विकास प्राप्त किया गया है, उसका न्योचित्त वितरण नहीं हुआ है। जनसंख्या का निम्नतम 20 प्रतिशत भाग राष्ट्रीय आय का केवल 8.7% प्राप्त करता है जबकि उच्चतम 20% जनसंख्या उस आय का 43% प्राप्त करती है। क्षेत्रीय असमानतायें बहुत अधिक तथा आघात पहुंचाने वाली हैं।

(एक)

स्वातंत्र्योत्तर आर्थिक प्रगति

आर्थिक विकास

भारतीय अर्थव्यवस्था का जो विकास इस शताब्दी के पूर्वार्द्ध में स्थिर था उसमें पंचवर्षीय योजनाएं लागू करने के पश्चात् विकास होने लगा। तथापि, पहले तीन दशकों में सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि दर 4 प्रतिशत वार्षिक से कम रही। सत्तर के दशक में सकल घरेलू उत्पाद की वार्षिक वृद्धि दर घटकर 3 प्रतिशत से कम रही। केवल अस्सी के दशक में ही वार्षिक वृद्धि दर 5.5 प्रतिशत से अधिक रही। इसके साथ-साथ कृषि आय में अत्यधिक वृद्धि, प्रति व्यक्ति खपत में वृद्धि, पूंजी-उत्पादन अनुपात में गिरावट आने से पूंजी को अधिक प्रभावी उपयोग में लाया गया है जैसाकि निम्नलिखित तालिका में दर्शाया गया है:-

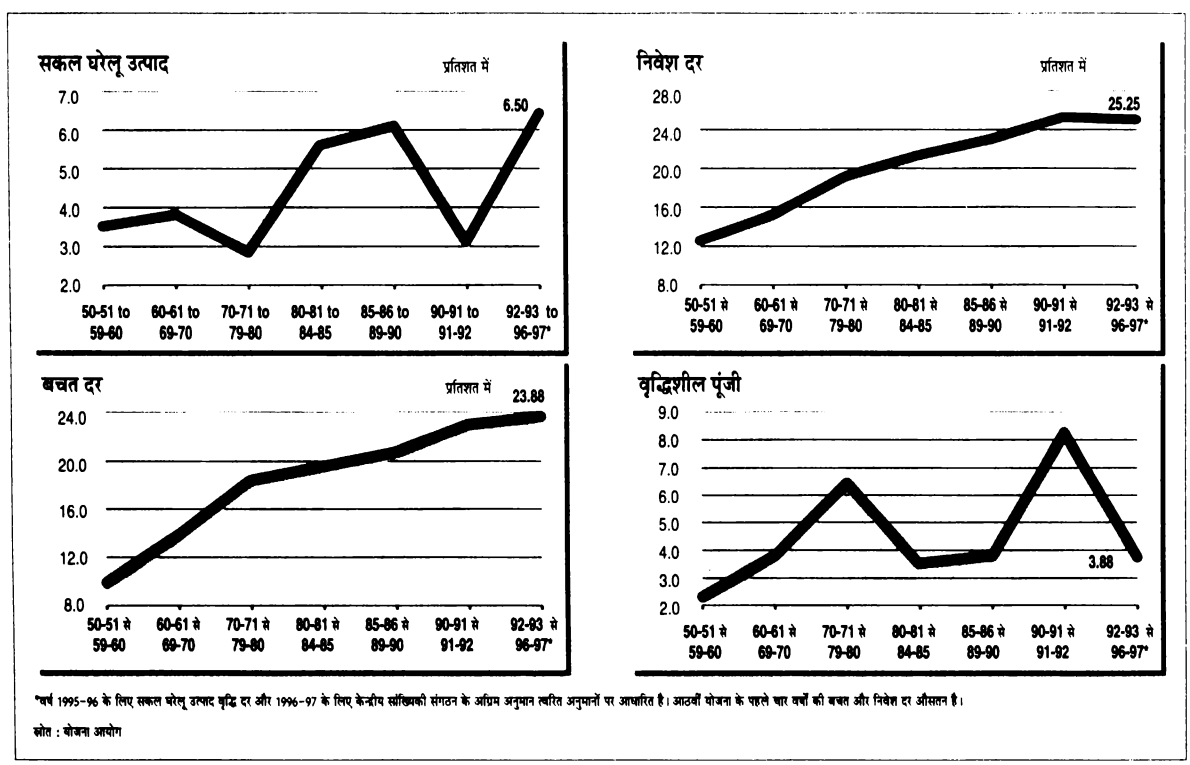

*वर्ष 1995-96 के लिए सकल घरेलू उत्पाद वृद्धि दर और 1996-97 के लिए केन्द्रीय सांख्यिकी संगठन के अग्रिम अनुमान त्वरित अनुमानों पर आधारित है। आठवीं योजना के पहले चार वर्षों की बचत और निवेश दर औसतन है।

स्रोत : योजना आयोग

तालिका 2.1

भारतीय अर्थव्यवस्था में 1950–1997 के दौरान सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि, बचत दर, निवेश दर और वृद्धिशील पूंजी उत्पाद अनुपात

अवधि	सकल घरेलू उत्पाद	बचत दर	निवेश दर	वृद्धिशील पूंजी
1950-51 से 59-60	3.59	10.77	12.04	2.00
1960-61 से 69-70	3.96	13.48	15.62	3.94
1970-71 से 79-80	2.94	18.91	19.06	6.48
1980-81 से 84-85	5.68	19.41	20.86	3.67
1985-86 से 89-90	6.04	20.61	23.08	3.82
1990-91 से 91-92	3.09	23.55	25.55	8.27
1992-93 से 96-97*	6.50	23.88	25.25	3.88

*वर्ष 1995-96 के लिए सकल घरेलू उत्पाद वृद्धि दर और 1996-97 के लिए केन्द्रीय सांख्यिकी संगठन के अग्रिम अनुमान त्वरित अनुमानों पर आधारित हैं। आठवीं योजना के पहले चार वर्षों की बचत और निवेश दर औसतन है।

स्रोत : योजना आयोग।

पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से अर्थव्यवस्था

योजना प्राथमिकताओं तथा नीतियों में सन्निहित सकल घरेलू उत्पाद वृद्धि दर और निवेश तथा बचत दरों और वृद्धिशील पूंजी-उत्पादन अनुपात का विवरण इस प्रकार है:-

बाक्स 2.1 : पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि, निवेश और बचतें

योजनावधि	कारक लागत पर सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि	निवेश दर%(1) तथा वृद्धिशील पूंजी उत्पाद दर(2)	बचत दर %	प्राथमिकताएं और नीति
1	2	3	4	5
पहली योजना 1951-52 से 1955-56	3.61	(1) 10.66 (2) 2.98	10.28	• खाद्यान्न उत्पादन के लिए कृषि को उच्च प्राथमिकता • सिंचाई और विद्युत क्षेत्र में निवेश • सकल घरेलू उत्पाद में निवेश को 5% से बढ़ाकर 7% करना
दूसरी योजना 1956-57 से 1960-61	4.27	(1) 14.52 (2) 3.40	11.73	समाज के समाजवादी ढांचे की स्थापना– • सकल घरेलू उत्पाद में 25% की वृद्धि • बुनियादी और भारी उद्योगों के विकास पर बल देते हुए तीव्र गति से उद्योगीकरण • रोजगार के अवसरों का व्यापक विस्तार • आय और सम्पत्ति संबंधी असमानता में कमी • आर्थिक शक्ति के वितरण में और अधिक समानता लाना • सकल घरेलू उत्पाद में 1960-61 तक निवेश को 7 प्रतिशत से बढ़ाकर 11 प्रतिशत करना
तीसरी योजना 1961-62 से 1965-66	2.84	(1) 15.45 (2) 5.44	13.21	स्वत: पोषित वृद्धि दर– • सकल घरेलू उत्पाद में 5% वार्षिक वृद्धि; ऐसा निवेश ढांचा हो जिसमें परवर्ती

1	2	3	4	5
				योजनावधियों के दौरान इस वृद्धि दर को बनाए रखा जा सके ● खाद्यान्नों में आत्मनिर्भरता; उद्योग और निर्यात संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए कृषि का उत्पादन ● इस्पात, रसायन, ईंधन और विद्युत जैसे बुनियादी उद्योगों का विस्तार देश में औद्योगिकीकरण की बढ़ती मांग को पूरा करने के लिए देश में उपलब्ध संसाधनों से ही 10 वर्ष के अन्दर मशीनों का निर्माण ● जनशक्ति को पूर्ण रूप से उपयोग में लाना; रोजगार के अवसरों में पर्याप्त रूप से वृद्धि करना ● आय और सम्पत्ति संबंधी असमानता में कमी; आर्थिक शक्ति के वितरण में और अधिक समानता लाना
1966-71 के वर्षों के दौरान कार्य-निष्पादन वार्षिक योजना (रोलिंग प्लान) 1966-67 1967-68 1968-69	4.66	(1) 15.99 (2) 3.43	14.35	1966-69 के मध्य चौथी योजना के प्रारूप ढांचे के अंतर्गत तीन वार्षिक योजनाएं बनायी गई थीं। 1965 में भारत-पाक युद्ध, उत्तरवर्ती दो वर्षों में सूखा पड़ना, मुद्रा का अवमूल्यन, कीमतों में सामान्य वृद्धि और योजना उद्देश्यों के लिए उपलब्ध संसाधनों में कमी के कारण चौथी पंचवर्षीय योजना को अंतिम रूप देने में विलम्ब होना
चौथी योजना 1969-74				● विकास की तीव्र गति: अर्थव्यवस्था को विदेशी सहायता के प्रभाव से मुक्त रखना ● रहन-सहन का स्तर ऊंचा उठाना और गरीबों पर विशेष ध्यान देना
1971-72 से 1975-76 के वर्षों के दौरान कार्य-निष्पादन पांचवीं योजना 1974-79	3.08	(1) 17.87 (2) 5.80	17.27	● रोजगार की व्यवस्था करना ● आर्थिक शक्ति का विस्तारण ● मुद्रास्फीति पर नियंत्रण ● सकल घरेलू उत्पाद में 5.5 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि दर का लक्ष्य निर्धारित किया गया। ● आत्म-निर्भरता प्राप्त करना
1976-77 से 1980-81 के वर्षों के दौरान कार्य-निष्पादन छठी योजना 1980-85	3.24	(1) 21.47 (2) 6.63	21.65	● जीवन स्तर और गरीबी की रेखा से नीचे रहने वाले लोगों के उपभोक्ता स्तर को ऊंचा उठाना। ● गरीबी दूर करना ● कृषि और उद्योग के बुनियादी ढांचे को सुदृढ़ करना। ● एक समान समस्याओं के समाधान के लिए व्यवस्थित दृष्टिकोण पर बल। ● सभी क्षेत्रों में प्रबन्ध कुशलता और गहन निगरानी।

1	2	3	4	5
1981-82 से 1985-86 के वर्षों के दौरान कार्य-निष्पादन	5.06	(1) 20.98 (2) 4.15	19.36	• योजनाएं तैयार करने में स्थानीय लोगों की भागीदारी। • खाद्यान्न उत्पादन में तीव्र वृद्धि पर जोर। • रोजगार के अवसरों में वृद्धि। • विकास, आधुनिकीकरण, आत्मनिर्भरता तथा सामाजिक न्याय।
सातवीं योजना 1985-90				
1985-86 से 1989-90 के दौरान कार्य-निष्पादन	5.81	(1) 22.70 (2) 3.91	20.37	• बेरोजगारी में कमी-विशेष कार्यक्रम-जवाहर रोजगार योजना • लघु और खाद्य प्रसंस्करण उद्योगों को मान्यता
1985-86 से 1991-92 के दौरान कार्य-निष्पादन	5.31	(1) 23.17 (2) 4.36		
1990-91 और 1991-92				आठवीं योजना 1990 में निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार शुरू नहीं हुई। 1990-91 और 1991-92 की दो वार्षिक योजनाएं कार्यान्वित की गई थीं। ये योजनाएं आठवीं पंचवर्षीय योजना (1990-95) के पूर्व दृष्टिकोण पत्र की रूपरेखा के दायरे में तैयार की गई थीं। इन वार्षिक योजनाओं में मूलत: अधिकाधिक रोजगार जुटाने तथा सामाजिक परिवर्तन पर जोर दिया गया था।
आठवीं पंचवर्षीय योजना 1992-97				विश्वव्यापी आर्थिक परिवर्तनों, बाजार में बल और प्रतिस्पर्धा से संबंधित एक सांकेतिक योजना की नीति • समाज के लिए महत्वपूर्ण अत्यावश्यक कार्यकलापों हेतु सरकार की और सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका की परिभाषा और सीमाएं • स्थानीय शासन स्तर पर पंचायती राज व्यवस्था शुरू करना • गरीबी उन्मूलन के उद्देश्य से ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार की ओर विशेष ध्यान देना • शिक्षित युवकों हेतु विशेष रोजगार कार्यक्रम और महिलाओं को शक्तियां प्रदान करने संबंधी कार्यक्रम • नई सार्वजनिक वितरण प्रणाली।

विकास के लिए आवश्यक वित्तीय सहायता, मुख्यत: घरेलू बचतों के माध्यम से जुटाई गई थी, जो विभिन्न अवधियों में निवेश का 90 और 95 प्रतिशत के बीच रही है। 1951-56 के दौरान बचत दर सकल घरेलू उत्पाद का औसतन 10.3 प्रतिशत थी जो बढ़कर 1976-81 के दौरान 21.7 प्रतिशत हो गयी। तथापि अस्सी के दशक में इसमें कमी आई और यह औसतन 20 प्रतिशत के आसपास रही। गत दो-तीन वर्षों में बचत पुन: बढ़कर सकल घरेलू उत्पाद के 21 और 22 प्रतिशत के बीच हो गई। घरेलू बचत में सबसे अधिक योगदान घरेलू क्षेत्र का था, इसका हिस्सा वर्ष-प्रतिवर्ष बढ़ता रहा, जैसाकि निम्न तालिका में दर्शाया गया है। कुल मिलाकर, बचत के क्षेत्र में भारतीय अर्थव्यवस्था का निष्पादन अन्य अनेक विकासशील देशों की तुलना में अच्छा रहा है। तथापि, हाल ही के वर्षों में इस क्षेत्र में कुछ गड़बड़ी पैदा करने वाली प्रवृत्तियां भी रही हैं। सार्वजनिक क्षेत्र की बचत में कमी आई है।

तालिका 2.2

भारतीय अर्थव्यवस्था हेतु क्षेत्रीय बचत दर

(प्रतिशत)

	1950-51से 59-60	1960-61 से 69-70	1970-71 से 79-80	1980-81 से 84-85	1985-86 से 89-90	1990-91 से 91-92	1992-93 से 95-96*
घरेलू क्षेत्र	8.01	9.22	13.57	14.10	16.21	19.10	18.83
निजी निगमित क्षेत्र	1.04	1.53	1.61	1.62	2.04	3.00	3.60
सार्वजनिक क्षेत्र	1.72	2.74	3.73	3.69	2.36	1.45	1.45
सार्वजनिक प्राधिकरण	1.47	2.17	2.50	1.54	–0.83	-	-
गैर-विभागीय उद्यम	0.26	0.56	1.23	2.15	3.19	-	-
सकल घरेलू बचतें	**10.77**	**13.48**	**18.91**	**19.41**	**20.61**	**23.55**	**23.88**

*1996-97 के आंकड़े अभी उपलब्ध नहीं है।

स्रोत : योजना आयोग

बढ़ती बचत दर के कारण निवेश की दर बढ़ती रही। 1951-56 की अवधि में निवेश दर सकल घरेलू उत्पाद के लगभग 10.7 प्रतिशत से बढ़कर 1985-92 में लगभग 23 प्रतिशत हो गई। निवेश दर में सर्वाधिक वृद्धि सार्वजनिक क्षेत्र में हुई। सार्वजनिक क्षेत्र का हिस्सा 1950-51 में कुल निवेश का 27 प्रतिशत था, जो सातवीं योजना में बढ़कर 46 प्रतिशत से थोड़ा ज्यादा हो गया। यद्यपि, आयोजना के प्रथम तीन दशकों में अर्थव्यवस्था की विकास दर निवेश के बढ़ते स्तर के अनुरूप नहीं हुई। पूंजी उत्पादन अनुपात बढ़ रहा था। वृद्धिशील पूंजी उत्पादन अनुपात में ह्रास के अनेक कारण हैं:-

- विकास की प्रक्रिया के परिणाम, जैसे कि निवेशों के संघटन में परिवर्तन (उदाहरणार्थ इंजीनियरी से रासायनिक उद्योगों में परिवर्तन)
- सिंचाई और खनिज विकास जैसे क्षेत्रों में जहां कि पहले सुगम अवसर समाप्त हो गये थे, बढ़ती वास्तविक लागत।
- संसाधन उपयोग में अकुशलता-परियोजनाओं को पूरा किए जाने हेतु निर्धारित समय और लागत में वृद्धि, परस्पर सम्बद्ध परियोजनाओं के कार्यान्वयन में समकालिकता का अभाव।

भारतीय अर्थव्यवस्था के ढांचे में राष्ट्रीय आय में वृद्धि का निर्धारण बड़े पैमाने पर कृषि उत्पादन के रूख पर आधारित रहा है। इसका कारण यह है कि कृषि सकल घरेलू उत्पाद का सबसे बड़ा संघटक है, और इसका आदान एवं रोजगार और आय के माध्यम से अन्य क्षेत्रों पर समग्र रूप से प्रभाव पड़ता है। कृषि क्षेत्र के औसत निष्पादन में पिछली अवधि की तुलना में अस्सी के दशक में कुछ सुधार दिखाई दिया है।

तीन क्षेत्र स्तरों पर वृद्धि दर इस प्रकार की गई है:

तालिका 2.3

भारतीय अर्थव्यवस्था में क्षेत्रीय वृद्धि दर 1950–1957

(प्रतिशत में)

सैक्टर	1950-51 से 59-60	1960-61 से 69-70	1970-71 से 79-80	1980-81 से 84-85	1985-86 से 89-90	1990-91 से 91-92	1992-93 से 96-97
कृषि	2.75	2.59	1.31	5.77	3.66	1.10	3.60
उद्योग	5.87	6.37	3.93	6.07	7.45	2.67	8.42
सेवाएं	3.97	4.72	4.41	5.43	7.44	5.08	7.31
कुल	**3.59**	**3.96**	**2.94**	**5.68**	**6.04**	**3.09**	**6.48**

*स्रोत : योजना आयोग

चूंकि अन्य क्षेत्र अस्तित्व में आ गये हैं, अत: सकल घरेलू उत्पाद में कृषि का अंशदान पचास के दशक के 51 प्रतिशत की तुलना में अब लगभग 33 प्रतिशत पर स्थिर हो गया है, जैसाकि निम्न तालिका में दर्शाया गया है:

तालिका 2.4

विकास में क्षेत्रवार कुल अंशदान 1950–1996

(सकल घरेलू उत्पाद में सहभागिता प्रतिशत)

सैक्टर	1950-51 to 59-60	1960-61 to 69-70	1970-71 to 79-80	1980-81 to 84-85	1985-86 to 89-90	1990-91 to 91-92	1992-93 to 95-96
कृषि	51.36	46.44	42.44	38.56	34.46	33.50	32.29
उद्योग	16.57	20.33	22.59	24.54	25.96	26.20	26.30
सेवाएं	32.07	33.23	34.97	36.90	39.58	40.30	41.41
कुल	**100.00**	**100.00**	**100.00**	**100.00**	**100.00**	**100.00**	**100.00**

स्रोत : योजना आयोग

विकास से अर्थव्यवस्था में ढांचागत परिवर्तन हुए हैं, जैसाकि उपर्युक्त तालिका से पता चलता है। यह उत्पादन की क्षेत्रीय संरचना में परिवर्तन, क्रियाकलापों के विविधीकरण, प्रौद्योगिकी में प्रगति, और सामन्ती और औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था के धीरे-धीरे आधुनिक औद्योगिक राष्ट्र में परिवर्तन के रूप में सामने आया है। योजना युग के चलते राष्ट्रीय आय की संरचना में परिवर्तन हुआ है। जहां सकल घरेलू उत्पादन में कृषि और मिश्रित क्रियाकलापों के अंशदान में कमी हुई है, वहां मुख्य क्षेत्र के अंशदान में वृद्धि हुई है। सेवाओं का विस्तार न केवल रोजगार सृजन के अनुकूल है, बल्कि प्रणाली की बेहतर कार्यकुशलता और बेहतर जीवन-यापन के लिए भी है। शिक्षा, स्वास्थ्य, देखभाल, विस्तार कार्य, अनुसंधान और इसका प्रयोग सभी सेवा क्षेत्र का एक हिस्सा है। इन सभी से बेहतर जीवन-यापन व इसके साथ-साथ बेहतर उत्पादकता में सहायता मिलती है। जहां तक गौण क्षेत्र का सबंध है, सकल घरेलू उत्पाद में इसके अंशदान में जो वृद्धि हुई है, वह मुख्यत: बिजली, गैस और जल आपूर्ति जैसी बुनियादी सुविधाओं के बेहतर निष्पादन और पंजीकृत उत्पादन क्षेत्रों के विकास के कारण हुई है। यद्यपि कृषि क्षेत्र का अंशदान सकल घरेलू उत्पाद की विकास दर में अभी भी बहुत अधिक है, परन्तु सातवीं योजना में प्रथम बार यह अंशदान मुख्य क्षेत्र के अंशदान की तुलना में कम था। विकास की गति में महत्वपूर्ण वृद्धि का एक परिणाम यह भी निकला है।

आर्थिक निष्पादन के महत्वपूर्ण सूचकों की जांच से यह पता चलता है कि अब तक हुए भारतीय विकास को तीन चरणों में विभाजित किया जा सकता है।

सतत् विकास

सतत् विकास की अवधि प्रथम तीन पंचवर्षीय योजनाओं (1950-51 से 1964-65) तक की अवधि है। इस अवधि के दौरान वास्तविक रूप में सामान्यत: निवेश की वृद्धि दर के मामले में और विशेषत: सार्वजनिक निवेश के मामले में तेजी से वृद्धि हुई। औद्योगिक उत्पादन में प्रति वर्ष 8 से 10 प्रतिशत तक निरंतर मिश्रित वृद्धि दर रिकार्ड की गई। खाद्यान्नों के उत्पादन में प्रतिवर्ष 3 से 3.5 प्रतिशत की दर से मिश्रित वृद्धि हुई। वास्तविक अर्थों में कुल मिलाकर प्रति व्यक्ति आय में प्रति वर्ष 1.84 प्रतिशत की दर से मिश्रित वृद्धि हुई।

विकास में कमी

इस विकास प्रक्रिया में साठ के दशक के मध्य में बहुत बड़ा व्यवधान पैदा हो गया था। 1965-66 से 1979-80 तक की इस अवधि, जिसमें अगली तीन पंचवर्षीय योजनाएं शामिल हैं (योजना अवकाश और वार्षिक योजनाओं को समायोजित करते हुए), को विकास दर में उल्लेखनीय गिरावट के रूप में जाना गया है।

सरकारी क्षेत्र में वास्तविक निवेश में तथा इसके साथ-साथ औद्योगिक उत्पादन में, सही अर्थों में या तो विकास की दर में स्थिरता आयी है अथवा उसमें उल्लेखनीय गिरावट आयी है। जहां खाद्यान्नों के उत्पादन में वृद्धि दर को बरकरार रखा गया है, प्रतिव्यक्ति आय वास्तविक अर्थों में स्थिरता और आन्तरायिक विकास के बीच प्रत्यावर्तित होती रही है। 1965-66 से 1979-80 के दौरान प्रति व्यक्ति आय दर प्रति वर्ष लगभग 1 प्रतिशत कम रही है।

त्वरित विकास

अस्सी के दशक के प्रारम्भ से लेकर अब तक विभिन्न आन्तरिक और बाह्य आघातों के बावजूद भी भारतीय अर्थव्यवस्था त्वरित विकास की ओर वापस लौट रही है। यह बात 1980-81 से 1994-96 तक की अवधि के दौरान खाद्यान्नों में लगभग 3 प्रतिशत वार्षिक मिश्रित वृद्धि दर, औद्योगिक उत्पादन में लगभग 7 से 8 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि और प्रति व्यक्ति आय में लगभग 3 प्रतिशत वार्षिक मिश्रित वृद्धि दर से परिलक्षित होती है।

राष्ट्रीय आय और प्रतिव्यक्ति आय में वृद्धि

1950-51 से 1994-95 की अवधि के दौरान राष्ट्रीय आय— निवल राष्ट्रीय उत्पाद (एन एन पी) में 5.4 गुणा वृद्धि हुई है जो कि 40,454 करोड़ रुपये (1980-81 के मूल्यों पर आधारित) से बढ़कर 2,21,406 करोड़ रुपये हो गया है जिसमें लगभग 4 प्रतिशत वार्षिक मिश्रित वृद्धि दर देखी गयी है। प्रति व्यक्ति आय में 2.1 गुणा वृद्धि हुई है जोकि 1127 रुपये से बढ़कर 2450 रुपये हो गयी है जिसमें 1.8 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि हुई है जिसे नीचे दी गयी तालिका 2.5 में दर्शाया गया है:

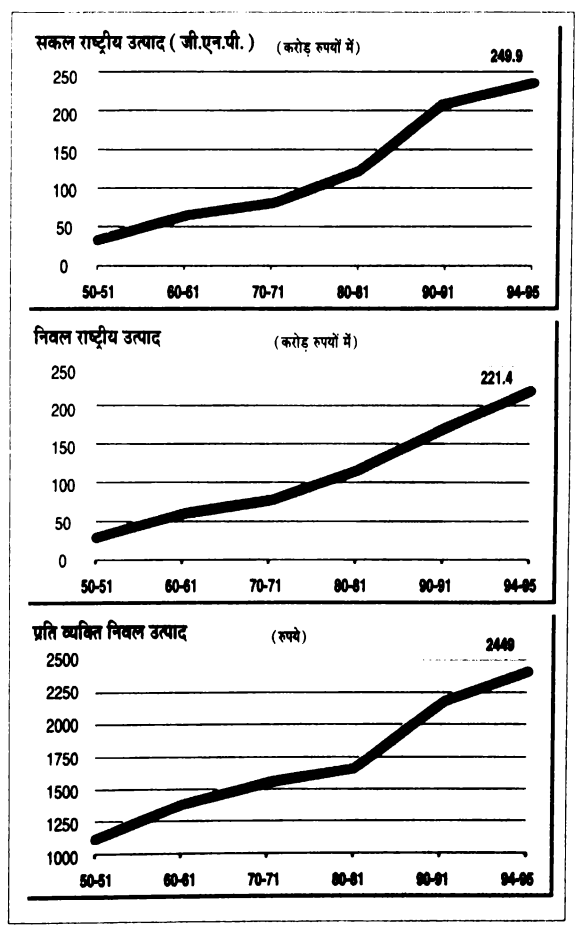

तालिका 2.5

राष्ट्रीय आय और प्रतिव्यक्ति आय में वृद्धि

(1980-81 मूल्यों पर आधारित)

वर्ष	सकल राष्ट्रीय उत्पाद (जी.एन.पी.) (करोड़ रुपयों मे)	निवल राष्ट्रीय उत्पाद (करोड़ रुपयों में)	प्रति व्यक्ति निवल उत्पाद (रुपये)
1950-51	42,644	40,454	1,127
1960-61	62,532	58,602	1,350
1970-71	89,465	82,211	1,520
1980-81	122,772	110,685	1,630
1990-91	208,481	186,446	2,222
1994-95	249,903	221,406	2,449

मोटे अनुमानों के अनुसार, 1995-96 में सकल राष्ट्रीय उत्पाद 267330 करोड़ रुपए निवल राष्ट्रीय उत्पाद 23678 करोड़ रुपए, प्रतिव्यक्ति उत्पाद 2573 रुपये होने का अनुमान है।

संसाधन जुटाना

सरकार कई तरीकों से संसाधन जुटाती है—

- कराधान से
- गैर-कर संसाधनों से
- सार्वजनिक उधार लेकर
  (बाजार ऋण और अल्प बचतों से)
- विदेशों से ऋण और सहायता लेकर घाटे की वित्त व्यवस्था से इसे "सृजित धन" के नाम से भी जाना जाता है जिसका आकार अर्थव्यवस्था की क्रय शक्ति में निवल वृद्धि के बराबर होता है। जब सरकार का व्यय आय की तुलना में अधिक हो जाता है तब यह रास्ता अपनाया जाता है और सरकार के खजानों में सरकार के नकद अधिशेष की सीमा को कम करके अथवा भारतीय रिजर्व बैंक से उधार लेकर ऐसा किया जाता है
- सरकारी क्षेत्र को प्राप्त लाभ से।

गैर-कर संसाधनों में बाजार ऋण, अल्प बचतें, भविष्य निधि, घाटे की वित्त व्यवस्था और सरकारी उपक्रमों की फालतू राशियां जैसे घरेलू ऋण शामिल हैं। पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से गैर-कर संसाधन कुल मिलाकर सरकारी क्षेत्र के कुल परिव्यय का काफी अधिक प्रतिशत बनाते हैं। यह आंकड़ा पांचवीं योजना को छोड़कर शेष समय में 63 प्रतिशत और इससे भी अधिक था। पांचवीं योजना अवधि में यह आंकड़ा 50.1 प्रतिशत था।

हमने सदैव लोगों की आशाओं के अनुरूप आकांक्षी पंचवर्षीय योजनाएं बनायी हैं। प्रत्येक आगामी योजना में योजना परिव्यय दो गुणा होता गया। प्रथम योजना के 1900 करोड़ रुपए के परिव्यय की तुलना में दूसरी योजना का परिव्यय 4,672 करोड़ रुपए था। तीसरी से आठवीं योजना का परिव्यय क्रमश: 8,577 करोड़ रुपए 15,779 करोड़ रुपए 39,426 करोड़ रुपए 1,02,646 करोड़ रुपए 1,80,000 करोड़ रुपए और 8,50,000 करोड़ रुपए था। इन महत्वाकांक्षी योजनाओं के वित्तपोषण और गैर-योजना व्यय की पूर्ति हेतु संसाधन जुटाने की सभी उपर्युक्त कार्यविधियों को अपनाया गया।

वर्तमान राजस्व अधिशेष और पंचवर्षीय योजनाएं

योजना पूर्व वर्ष में प्रचालित दरों पर करों से वसूल किये गये अधिकांश राजस्व को ब्याज की अदायगी, गैर-विकास व्यय, गैर-योजना विकास व्यय और पिछली योजना की स्कीमों आदि के रखरखाव व्यय जैसे गैर-योजना व्यय को वहन करने के लिए उपयोग में लाया जाता है। यदि अधिशेष राशि उपलब्ध हो, तो उसका योजना के वित्तपोषण हेतु उपयोग किया जाता है। विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के वित्तपोषण में वर्तमान राजस्व से पर्याप्त अधिशेष राशि उपलब्ध नहीं हो पायी। ऐसा अंशत: कर ढांचे की अन्तर्वर्ती कम राजस्व लोचशीलता के कारण (दरों में वृद्धि अथवा कर क्षेत्र का विस्तार किए बिना ही कर राजस्व में स्वत: वृद्धि) और अंशत: गैर-योजना में व्यय में भारी वृद्धि के कारण हुआ है। मूल अनुमानों और योजनाओं के पूर्ण होने पर हुए वास्तविक व्यय में काफी अन्तर रहा है।

तालिका 2.6

कराधान की योजना पूर्व दरों के आधार पर वर्तमान राजस्व से शेष राशि

(करोड़ रुपये में)

योजना	सरकारी क्षेत्र में कुल परिव्यय (वास्तविक)	वर्तमान कराधान की योजना पूर्व दरों के आधार पर वर्तमान राजस्व से शेष राशि		कुल परिव्यय के प्रतिशत के रूप में वास्तविक
		मूल अनुमान	वास्तविक	
प्रथम योजना	1,960	570	382	19.5
दूसरी योजना	4,672	350	11	0.2
तीसरी योजना	8,577	–550	–419	–4.9
तीन वार्षिक योजनाएं (1966-69)	6,756	866	303	4.5
चौथी योजना	16,160	1,673	–236	–1.5
पांचवीं योजना	39,303	7,348	4,901	12.5
वार्षिक योजना (1979-80)	12,601	2,823	2,217	17.6
छठी योजना	110,821क	14,478	1,893ख	1.7
सातवीं योजना	180,000	–5,249	–	–

टिप्पणी (क) अनुमान अनुमान (ख) मूल अनुमान

स्रोत : भारतीय रिजर्व बैंक, मुद्रा और वित्त संबंधी रिपोर्ट, 1969-70, खंड दो, पृष्ठ 588-89, 1981-82, खंड तीन, पृष्ठ 102-103, 1985-86 खंड दो, पृष्ठ 106-07

जैसा कि उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि दूसरी, तीसरी और चौथी पंचवर्षीय योजनाओं के वित्तपोषण में चालू राजस्व के बकाये का योगदान बहुत कम रहा है और वास्तविक आंकड़े हमेशा ही चालू राजस्व बचत के मूल अनुभवों से बहुत कम पाए गए हैं।

योजनाओं के दौरान अतिरिक्त कराधान

चूंकि कर ढांचे में पर्याप्त अंतर्निहित राजस्व लचीलापन नहीं है, इसलिए योजना आयोग द्वारा अतिरिक्त कराधान उपायों के रूप में विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में करों की दरों में वृद्धि करके कराधान का क्षेत्र बढ़ाकर, रियायतों को वापस लेकर और नए कर लगाकर भारी राशियां जुटाई गई थीं।

तालिका 2.7

योजनाओं के दौरान अतिरिक्त कराधान

(करोड़ रुपये में)

योजना	जुटाए गए संसाधनों की कुल राशि (केन्द्र+राज्य)	अतिरिक्त कराधान उपायों से प्राप्त राजस्व	कुल संसाधनों की प्रतिशतता के रूप में अतिरिक्त कर	कुल केन्द्रीय कर	कुल राज्य कर	स्तम्भ 3 के प्रतिशत के रूप में स्तंभ 5	स्तम्भ 3 के प्रतिशत के रूप में स्तम्भ 6
1	2	3	4	5	6	7	8
पहली योजना	1,960	255	13.0	175	80	68.6	31.4
दूसरी योजना	4,672	1,052	22.5	800	252	76.0	24.0
तीसरी योजना	8,577	2,892	33.7	2,042	850	70.6	29.4
वार्षिक योजनायें (1966-69)	6,756	910	13.5	611	299	67.1	32.9
चौथी योजना	16,160	4,280	26.5	3,481	799	81.3	18.7
पांचवीं योजना	39,303	14,693	37.4	8,494	6,199	57.8	42.2
वार्षिक योजना	12,601	2,115	16.8	1,510	605	71.4	28.6
छठी योजना	110,821	20,146	18.2	13,133	7,013	65.2	34.8
सातवीं योजना	180,000	21,250	11.8	8,250	13,000	38.8	61.2

स्रोत: 1. भारत सरकार, योजना आयोग, पहली पंचवर्षीय योजना की समीक्षा (1957) पृष्ठ 28
2. भारत सरकार, योजना आयोग, योजना गत संसाधन और परिव्यय एक समीक्षा, जुलाई 1959, पृष्ठ 36-37
3. भारत सरकार, योजना आयोग, प्रारूप पांचवीं पंचवर्षीय योजना (1974-79) खंड 1, पृष्ठ 55
4. भारतीय रिजर्व बैंक मुद्रा और वित्त संबंधी प्रतिवेदन 1985-86 खंड 11 पृष्ठ 106-07

करों की ऊंची और बढ़ी दरों के बावजूद यह अनुभव किया गया था कि चालू राजस्व से पर्याप्त बचत नहीं हो पाई जिसका कारण कराधान का स्तर न्यून स्तर का होने के अलावा कम कर वसूली होना और सरकारी खर्च का बढ़ जाना था। कर संसाधन जुटाने में राज्यों का कार्यनिष्पादन भी ढीला रहा। इसका एक कारण यह रहा है कि केन्द्र सरकार की तुलना में राज्यों के कर संसाधन कम लचीले थे। इसके अलावा राज्यों के अधिकांश कराधान के प्रयास गैर-कृषि क्षेत्र—बिक्री कर, राज्य उत्पाद शुल्क, मोटर वाहन कर आदि के इर्द-गिर्द केन्द्रित रहे। जाहिर है कि औद्योगिक वस्तुओं पर अधिक कर लगाने से उनकी मांग कम हो जाती है और परिणामस्वरूप रोजगार के अवसर कम होने के अलावा औद्योगिक कराधान पर प्रतिकूल असर पड़ता है।

सरकारी व्यय

इस समय केन्द्रीय सरकार का कुल व्यय 2,23,176 करोड़ रुपए है। गैर-योजनागत व्यय में वार्षिक वृद्धि काफी अधिक है। केन्द्रीय सरकार के कुल व्यय के अनुपात में गैर-योजनागत व्यय भी काफी अधिक है।

तालिका 2.8

केन्द्रीय सरकार व्यय : मुख्य-मुख्य बातें

(करोड़ रुपये में)

कुल व्यय (1997-98)	2,32,176
कुल गैर-योजनागत व्यय (1997-98)	1,69,324
कुल व्यय की तुलना में गैर-योजनागत व्यय का प्रतिशत	73%
कुल व्यय में वार्षिक वृद्धि की व्याप्ति	10 से 15% (1991-92 के व्यय को छोड़कर)
गैर-योजनागत व्यय में वार्षिक वृद्धि की व्याप्ति	12 से 18% (1991-92 और 1992-93 के व्यय को छोड़कर)

स्रोत : केन्द्रीय बजट 1997-98 : एक समीक्षा, लोक सभा सचिवालय

राजसहायता

भारत में बहुत बड़ी मात्रा में राजसहायता दी जाती है। इनमें से कुछ प्रत्यक्ष होती हैं और कुछ अप्रत्यक्ष। केन्द्रीय बजट में गैर-योजनागत व्यय के अंतर्गत स्पष्ट और सुनिश्चित राजसहायता का प्रावधान किया गया है। इस प्रकार की राजसहायता 1972-73 में 140 करोड़ रुपए थी जो बढ़कर 1980-81 में 2028 करोड़ रुपए और 1990-91 में 12158 करोड़ रुपए हो गई। वर्ष 1996-97 के संशोधित अनुमान में यह राशि 16694 करोड़ रुपए थी और वर्ष 1997-98 के लिए 18251 करोड़ रुपए की राजसहायता का प्रावधान किया गया है।

गैर-योजनागत परिव्यय की राजसहायता पर व्यय का अनुपात 1980 के 16 प्रतिशत के स्तर से घटकर 11 प्रतिशत हो गया है। ऐसा नहीं है कि इन वर्षों में राजसहायता पर परिव्यय घट गया है अपितु गैर-योजनागत परिव्यय में भारी वृद्धि हुई है। राज-सहायता पर व्यय में भी काफी वृद्धि हुई है। तथापि, राजसहायता की वृद्धि की सापेक्ष दर गैर योजनागत परिव्यय में वृद्धि की तुलना में कम है इसलिए अनुपात में कमी आई है। जहां गैर-योजनागत परिव्यय 1996-97 के 1,47,404 करोड़ रुपए से बढ़कर 1997-98 में 1,69,324 करोड़ रुपए हो गया जो 21920 करोड़ रुपए की वृद्धि दर्शाता है, वहीं राजसहायता पर परिव्यय 1996-97 (संशोधित अनुमान) और 1997-98 (बजट अनुमान) के बीच 16694 करोड़ रुपए से बढ़कर 18,251 करोड़ रुपए हो गया जो 1567 करोड़ रुपए की वृद्धि दर्शाता है।

तालिका 2.9

केन्द्र सरकार द्वारा राजसहायता

(करोड़ रुपये में)

	1995-96	1996-97 (ब. अ.)	1996-97 (सं. अ.)	1997-98 (ब. अ.)
क. मुख्य राज सहायता	**12,128**	**14,716**	**14,233**	**17,130**
खाद्य	5,377	5,884	6,066	7,500
स्वदेशी उर्वरक	4,300	4,500	4,743	5,240
आयातित उर्वरक	1,935	1,648	1,350	1,950
निर्यात संवर्द्धन व विपणन विकास	16	460	400	440
किसानों को छूट पर नियंत्रण मुक्त उर्वरक की बिक्री	500	2,224	1,674	2,000
ख. अन्य	**1,177**	**1,604**	**2,461**	**1,121**
रेल	418	469	466	537
मिलों में तैयार कपड़ा	1	1	–	–
हैंडलूम कपड़ा	143	139	98	84
खाद्य तेलों का आयात/निर्यात	100	-	50	50
ब्याज पर राजसहायता	34	434	1,257	34
अन्य राजसहायता	481	561	590	416
कुल (क+ख)	**13,305**	**16,320**	**16,694**	**18,251**

स्रोत : केन्द्रीय बजट 1997-98—एक मूल्यांकन, लोक सभा सचिवालय

दो वर्षों में खाद्य राजसहायता 5377 करोड़ रुपए से बढ़कर 7500 करोड़ रुपए हो गई है तथा इसके और बढ़ने की संभावना है। यह सामाजिक सुरक्षा नेट का एक अनिवार्य क्षेत्र है। यदि लक्षित गरीब लोगों को राजसहायता प्राप्त दरों पर खाद्यान्न के वितरण से लाभ मिलता है तो राजसहायता में और वृद्धि की जाएगी।

उपलब्ध कराई गई राजसहायता का ब्यौरा इस प्रकार है-

स्वदेशी उर्वरक पर 5240 करोड़ रुपए, आयातित उर्वरक पर 1950 करोड़ रुपए, किसानों को छूट के साथ नियंत्रण मुक्त उर्वरक की बिक्री पर 2000 करोड़ रुपए, निर्यात संवर्धन तथा विपणन विकास पर 440 करोड़ रुपए जो कुल मिलाकर 9630 करोड़ रुपए बैठती है तथा जो कुल राजसहायता का 53 प्रतिशत है। अन्य राजसहायता में रेलवे, हथकरघा वस्त्र, खाद्य तेल, ब्याज पर दी जाने वाली राजसहायता शामिल है। कुल मिलाकर यह राजसहायता 18251 करोड़ बैठती है। सार्वजनिक क्षेत्र के रुग्ण उपक्रमों को ब्याज पर दी जाने वाली राजसहायता में उल्लेखनीय कमी आई है। वर्ष 1996-97 में यह राशि 1257 करोड़ रुपए से घटकर मात्र 34 करोड़ रुपए रह गई है। यह नए आर्थिक सुधार कार्यक्रमों के अन्तर्गत सार्वजनिक क्षेत्र के रुग्ण उद्योगों को बजटीय सहायता न देने की सरकार की नीति के कारण हुआ है। राजसहायता और ब्याज संबंधी गैर-योजनागत व्यय, जो बजट दस्तावेज में स्पष्ट रूप से दिया गया है, वर्ष 1997-98 के, कुल गैर-योजनागत व्यय का 51 प्रतिशत है।

राजसहायता की अनिवार्यता वहां निर्विवाद है जहां वह पुनर्अनुपालिक न्याय के विशेष लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए दी जाती है अथवा लोगों के किसी विशेष वर्ग को दी जाती है या अन्य सुविधाओं के लिए दी जाती है (अर्थात् जहां खर्च की गई धनराशि की तुलना में कुल फायदा कहीं अधिक होता है, जैसा कि प्रतिरक्षण के मामले में है)। राजसहायता की कारगरता इसके स्वरूप पर निर्भर करती है। राजसहायता के रूप में दी गई राशि की तुलना में अर्थव्यवस्था को कहीं अधिक लाभ पहुंच सकता है। भारत में आज इस बात पर बहस हो रही है कि आर्थिक और सामाजिक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए इन राजसहायताओं का किस प्रकार, प्रभावी ढंग से इस्तेमाल किया जाता है और क्या इन राजसहायताओं से समाज के बेहतर स्थिति वाले वर्गों को लाभ पहुंच रहा है? अथवा प्राथमिक क्षेत्रों तथा वर्गों की कीमत पर निम्न प्राथमिकता वाली मदों के लिए संसाधनों को पुनः आवंटित किया जा रहा है।

भारत में बजट दस्तावेज में स्पष्ट रूप से दर्शाई गई राज-सहायताएं अधिक नहीं हैं। कुछ अनेक अप्रत्यक्ष राजसहायताएं भी

हैं जैसे मूल्य छूट, मूल्य धारण, ब्याज राजसहायता, क्षति प्रतिपूर्ति, निशुल्क सेवाएं। जब इन प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष राजसहायताओं से कोई लाभ नहीं मिलता तो ये समाज के लिए बोझ बन जाती हैं। अब हमें राजसहायता के रूप में अक्षमता और फिजूलखर्ची का पता लगाना है। मामला पहले से ही संसद के समक्ष विचाराधीन है।

प्रमुख वस्तुओं/सेवाओं के साथ विचारित महत्वपूर्ण बाह्य कारणों के आधार पर "प्रमुख" और "गैर प्रमुख" राजसहायता में अंतर किया गया है। यह भी एक सर्वमान्य तथ्य है कि खाद्य जैसे कुछ मामलों में राजसहायता को उचित ठहराया जा सकता है। कुछ बाहरी कारणों को छोड़कर जैसे कि आय का वितरण या न्यूनतम आवश्यकताओं को पूरा करने का आधार।

वर्ष 1994-95 के लिए सरकार द्वारा आर्थिक और सामाजिक सेवाओं के लिए राजसहायता देने के बारे में राष्ट्रीय लोक वित्त संस्थान ने अध्ययन किया है और वित्त मंत्रालय के आर्थिक कार्य विभाग द्वारा किए गए एक अध्ययन के आधार पर चर्चा के लिए पत्र तैयार किया गया है। केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकारों द्वारा सभी सेवाओं के लिए 1,37,338 करोड़ रुपये की कुल राजसहायता उपलब्ध कराई गई और यह सकल घरेलू उत्पाद की 14.4% थी। केन्द्रीय राजसहायता 43,048 करोड़ रुपये और राज्यों द्वारा दी गई राजसहायता 94,290 करोड़ रुपये थी। केन्द्रीय स्तर पर गैर-प्रमुख वस्तुओं पर दी जाने वाली राजसहायता प्रमुख वस्तुओं पर दी जाने वाली राजसहायता से पांच गुनी है। प्रमुख वस्तुओं का मूल्य सकल घरेलू उत्पाद का 3.8% है जबकि गैर-प्रमुख वस्तुओं का मूल्य 1% ही है।

केन्द्र और राज्य सरकारों के लिए गैर-प्रमुख वस्तुओं पर राज सहायता सकल घरेलू उत्पाद की 10.7% है। किए गए अध्ययन के अनुसार इन गैर-प्रमुख वस्तुओं/सेवाओं के लिए अखिल भारतीय औसत वसूली दर मात्र 10.3 प्रतिशत है, जिसका अर्थ यह हुआ कि राजसहायता की दर लगभग 90 प्रतिशत है।

चर्चा के लिए तैयार किये गये पत्र में यह उल्लेख किया गया है कि अनुपयुक्त राजसहायता की स्थूल आर्थिक लागत निरंतर भारी राजकोषीय घाटे के रूप में प्रकट हुई है और परिणामस्वरूप ब्याज दरें ऊंची रही हैं। राजसहायता अर्थव्यवस्था में विकृति उत्पन्न करती है, क्योंकि इसके लाभ समाज के उन वर्गों को नहीं मिल पाते हैं जो इनके पात्र हैं।

चर्चा के लिए तैयार किए गए पत्र के अंत में बताया गया है कि राजसहायता में निम्नलिखित सुधार किये जाने चाहिएं:

- राजसहायता की मात्रा में कमी
- एक निश्चित अवधि के लिए राजसहायता देना
- मितव्ययिता के उद्देश्यों के लिए उनका इस्तेमाल
- उनको पारदर्शी बनाना, और
- अंतिम रूप से तैयार सामान और राजसहायता इस बात को ध्यान में रखकर दी जाये कि वह सामान निम्नतम लागत पर लक्षित जनसंख्या के पास अधिक से अधिक पहुंचे।

प्रश्न यह है कि राजकोषीय घाटे पर दबाव कम करने के लिए वसूली दर जो बहुत कम है, को कैसे बढ़ाया जाये। क्या उच्च शिक्षा, कृषि, सिंचाई, उद्योग, विद्युत और परिवहन के क्षेत्र में प्रयोक्ता प्रभार को बढ़ाया जा सकता है? क्या इस मामले में कोई राजनैतिक और उद्देश्यात्मक चर्चा हो सकती है?

देय ऋण राशि

केन्द्रीय सरकार की देय ऋण राशि में वर्षों से वृद्धि हो रही है। केन्द्रीय सरकार की कुल बकाया ऋण देयता जो 1980-81 में सकल घरेलू उत्पाद की 43.9 प्रतिशत थी बढ़कर 1996-97 में सकल घरेलू उत्पाद की 53.4 प्रतिशत हो गयी। इसमें घरेलू ऋण की राशि 6,13,208 करोड़ रुपये और बाहरी ऋण 54,902 करोड़ रुपये और कुल मिलाकर 6,68,110 करोड़ रुपये है। 1993-94 में देयता का अनुपात सकल घरेलू अनुपात के चरम स्तर पर अर्थात 59 प्रतिशत तक पहुंच गया था। तब से यह अनुपात धीरे-धीरे कम होता रहा है। यह चिंता की बात है कि उदारीकरण के पश्चात् नये ऋणों पर ब्याज दरों में वृद्धि से ब्याज देयता में वृद्धि हुई है। ब्याज के भुगतान पर अधिक धनराशि के खर्च को कम करने के लिए महंगे ऋणों का शीघ्र भुगतान करने की रणनीति बनाना आवश्यक है।

वर्ष 1996 में देश का कुल बाह्य ऋण 3,15,435 करोड़ रुपये (92.2 बिलियन अमरीकी डालर) था। यह सकल घरेलू उत्पाद के अनुपात में 29 प्रतिशत और ऋण भुगतान का अनुपात 26 प्रतिशत है। भारत के अधिकांश बाह्य ऋण बहुपक्षीय और द्विपक्षीय लेखाओं में ली गई उधारी के अंतर्गत आते हैं। यह ऋण दीर्घकालीन हैं। अल्पकालीन ऋण केवल 5.5 प्रतिशत है। अन्तरराष्ट्रीय मानकों के अनुसार भारत का बाह्य ऋण बहुत अधिक था।

तालिका 2.10

ऋण सेवा भुगतान और ऋण अनुपात

(अमरीकी मिलियन डालर)

वर्ष	मूलधन	ब्याज	कुल ऋण सेवा	ऋण सेवा अनुपात (प्रतिशत)	ऋण सकल घरेलू उत्पाद अनुपात (प्रतिशत)
1990-91	5,028	3,954	8,982	35.3	30.4
1991-92	4,705	3,545	8,250	30.2	41.0
1992-93	4,181	3,477	7,658	28.6	39.8
1993-94	4,783	3,818	8,601	26.9	35.9
1994-95	6,825	4,099	10,924	27.5	32.7
1995-96	8,063	4,315	12,378	25.7	28.7

स्रोत : वित्त मंत्रालय, भारत सरकार।

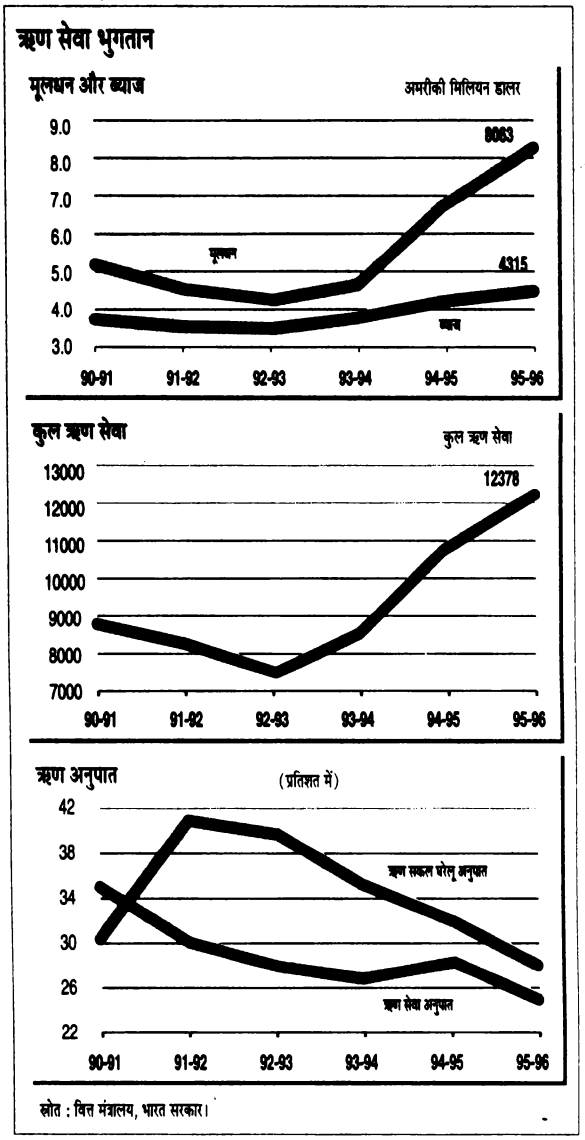

स्रोत : वित्त मंत्रालय, भारत सरकार।

वर्ष 1996-97 में केन्द्रीय सरकार की कुल आस्तियां 4,27,393 करोड़ रुपये थी। यह सकल घरेलू उत्पाद का 34.1 प्रतिशत था। आस्तियों का यह ऐतिहासिक मूल्य है न कि इससे उनका वर्तमान मूल्य प्रदर्शित होता है। परिणामत: आस्तियों और दायित्वों की इस तुलना में सही तस्वीर नहीं उभरती।

जहां भारत सरकार अत्यधिक ऋण-भार से ग्रस्त है, वहीं राज्य सरकारें भी भारत सरकार को योजना ऋणों और अल्प बचतों के पुनर्भुगतान की अपनी देयता के कारण अत्यधिक ऋण-भार से ग्रस्त है। इस संबंध में दिनांक 31 मार्च, 1997 को 25 राज्य सरकारों की बकाया ऋण देयता की राशि 1,42,227 करोड़ रुपये थी।

तालिका 2.11

राज्य सरकारों की भारत सरकार को देय बकाया ऋण देयता
(योजना ऋण और अल्प बचतें)

(करोड़ रुपये में)

राज्य	31.3.1997 को बकाया ऋण
आन्ध्र प्रदेश	10,340.77
अरुणाचल प्रदेश	229.94
असम	3,644.50
बिहार	9,487.22
गोआ	799.96
गुजरात	9,839.37
हरियाणा	3,517.96
हिमाचल प्रदेश	1,660.25
जम्मू-कश्मीर	2,849.50
कर्नाटक	6,712.51
केरल	4,550.07
मध्य प्रदेश	6,390.73
महाराष्ट्र	15,854.42
मणिपुर	204.76
मेघालय	234.23
मिजोरम	149.69
नागालैंड	249.83
उड़ीसा	4,666.23
पंजाब	10,642.41
राजस्थान	6,994.12
सिक्किम	136.50
तमिलनाडु	8,403.85
त्रिपुरा	354.02
उत्तर प्रदेश	21,096.97
पश्चिम बंगाल	13,217.32
कुल	**1,42,227.13**

स्रोत : वित्त मंत्रालय

ब्याज भार

हमारे योजनागत और गैर-योजनागत व्यय के वित्त पोषण का पद्धति प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष स्रोतों से राजस्व की प्राप्ति और सार्वजनिक क्षेत्र में पहले किए गए निवेशों से संचयित प्रतिलाभ की सीमा के आधार पर निर्धारित की जाती है। यह हमारा दुर्भाग्य है कि ये दोनों स्रोत संसाधन की आवश्यकताओं को पूरा करने में समर्थ नहीं हैं। परिणामत:, घरेलू ऋणों और एक सीमा तक विदेशी ऋणों पर काफी निर्भरता रही है। यद्यपि ऋणों के माध्यम से संसाधनों को जुटाना वित्तपोषण का एक स्वीकृत माध्यम है, तथापि यदि भार असहनीय है तो यह दु:स्वप्न बन जाता है। यदि एक वर्ष में लिए गए ऋण उस वर्ष के दौरान देय ब्याज प्रभारों को भी पूरा नहीं कर पाते हैं तो अर्थव्यवस्था ऋण-जाल में फंस जायेगी।

हम ब्याज प्रतिबद्धता के जिन स्तरों पर पहुंच चुके हैं वह खतरनाक है। वर्ष 1997-98 के बजट में ब्याज के भुगतान के लिए 68,000 करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई है। यह 1,69,324 करोड़ रुपये के गैर-योजनागत व्यय का 40 प्रतिशत बैठता है। आठवीं योजना अवधि में ऋण-भार में तीव्र वृद्धि हुई, और ब्याज दायित्व 1980-81 में 20 प्रतिशत से बढ़कर 1990-91 में 28 प्रतिशत और 1997-98 में 40 प्रतिशत हो गया है।

वर्ष 1990-91 और 1997-98 के बीच कुल ब्याज भुगतान राजस्व प्राप्तियों के 39 प्रतिशत से बढ़कर 44 प्रतिशत हो गया है। चूंकि राजस्व प्राप्तियों में भारी वृद्धि की आशा की जा रही है। जो 1995-96 के 1,10,130 करोड़ रु. से बढ़कर 1997-98 में 1,53,143 करोड़ रु. हो जाएगी, इसलिए 1995-96 में दर्ज राजस्व प्राप्तियों के 45 प्रतिशत से ब्याज अनुपात 1 प्रतिशत कम होकर 1996-97 में 44 प्रतिशत हो गया है। समग्र रूप से, चालू वर्ष में पिछले वर्ष के संशोधित अनुमान की तुलना में ब्याज भार में 9,500 करोड़ रुपये की वृद्धि हुई है। वर्ष 1997-98 के दौरान 68,000 करोड़ रुपये का ब्याज भुगतान इस वर्ष के सकल राजकोषीय घाटे या 65,454 करोड़ रुपये के ऋणों में शुद्ध वृद्धि से अधिक हो जाएगा। यह राजकोषीय घाटे का 103.9% बैठता है।

वास्तविक चिन्ता इस बात की है कि बढ़ते हुए ब्याज भार में सरकारी खर्च का अनुपात ज्यादा है और यह बढ़ता जा रहा है। यह अभी कुल सरकारी व्यय का 29.3 प्रतिशत है। सकल घरेलू उत्पाद के 4.7 प्रतिशत को अन्य विकासात्मक कार्यों को छोड़कर सिर्फ ऋणों पर ब्याज के भुगतान के लिए रोकना सुखद स्थिति नहीं है। ऋणों या राजकोषीय घाटे को कम करने के लिए एक चरणबद्ध कार्यक्रम बनाना होगा और इसके साथ-साथ राजस्व प्राप्तियों को बढ़ाना होगा और लोक उपक्रमों के द्वारा आंतरिक संसाधनों का सृजन करना होगा।

घाटे की वित्त-व्यवस्था

सरकार राजकोषीय घाटे को सकल घरेलू उत्पाद के 4 प्रतिशत (या और कम) के स्तर पर लाने के लिए प्रतिबद्ध है। घाटे की वित्त-व्यवस्था एक ऐसी प्रवृत्ति है जिससे मुद्रास्फीति बढ़ती है और कीमत का स्थायित्व नहीं रहता है। आर्थिक सुधारों का मुख्य सम्बल घाटे को कम रखना और मुद्रास्फीति पर नियंत्रण रखना है। इसके लिए दो प्रमुख शर्तें अपेक्षित हैं: एक राजस्व में वृद्धि करना और दूसरी खर्च में कमी करना है। आर्थिक विकास को बनाए रखने के वास्ते सभी लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए अर्थव्यवस्था के अच्छे वित्तीय प्रबन्धन और आर्थिक वृद्धि दर को बढ़ाने हेतु बहुधा उपरोक्त दोनों उपायों को एक साथ ही करना होगा।

''बजट घाटे'' की प्रणाली-घाटे को पूरा करने के लिए तदर्थ राजकोष-बिल के उपयोग की पद्धति को 1 अप्रैल, 1997 से समाप्त कर दिया गया है। सरकारी प्राप्तियों और भुगतानों के अस्थायी अंतरों को उपयोजित करने के लिए भारतीय रिजर्व बैंक के द्वारा केंद्र सरकार के लिए अर्थोपाय अग्रिम संबंधी योजना शुरू की गई है।

भविष्य में, सकल राजकोषीय घाटा (जी एफ डी) घाटे का मुख्य सूचक होगा। सकल राजकोषीय घाटे को राजस्व प्राप्तियों और लिए गए ऋणों के पुनर्भुगतान सहित कुल व्यय के बीच के अन्तर के रूप में परिभाषित किया गया है। वर्ष 1997-98 के लिए 64,454 करोड़ रुपये के सकल राजकोषीय बजट घाटे का प्रावधान है जो इस वर्ष के सकल घरेलू उत्पाद का 4.5 प्रतिशत बैठता है।

आर्थिक सुधारों के समय में, पिछले छः नियमित बजटों में राजकोषीय घाटा में सकल घरेलू उत्पाद के अनुपात में 1990-91 के 8.3 प्रतिशत से कम होकर 1996-97 में 5 प्रतिशत रह गया है। (संशोधित अनुमान) पहले वर्ष में महत्वपूर्ण गिरावट आई और तत्पश्चात् यह 6 प्रतिशत के आसपास रही है यद्यपि 1993-94 में यह बढ़कर 7.5 प्रतिशत हो गई थी। राजस्व प्राप्तियां बढ़ रही हैं और समानुपाती रूप से कुल मिलाकर व्यय में कमी आ रही है।

तालिका 2.12

सकल राजकोषीय घाटा

वर्ष	करोड़ रुपये में	सकल घरेलू उत्पाद के प्रतिशत के रूप में
1990-91	44,632	8.4
1992-93	40,173	5.7
1993-94	60,257	7.7
1994-95	57,703	6.1
1995-96	60,243	5.5
1996-97 (बजट प्राक्कलन)	62,266	4.9
1996-97 (संशोधित प्राक्कलन)	63,131	5.0
1997-98 (बजट प्राक्कलन)	65,454	4.5

स्रोत : केन्द्रीय बजट 1997-98 : एक मूल्यांकन

जब राजस्व प्राप्तियां कम होती हैं तथा राजस्व व्यय अधिक होता है तो उनका यह अंतर राजस्व घाटा कहलाता है। यह चालू खाते में सरकार के घाटे को प्रदर्शित करता है। वर्ष 1997-98 (बजट प्राक्कलन) में राजस्व घाटा सकल घरेलू उत्पाद के 3.5 प्रतिशत से घटकर 2.1 प्रतिशत रह गई है हालांकि 1990-91 में 18,562 करोड़ रुपये के घाटे से बढ़कर यह घाटा 1997-98 में 30,266 करोड़ रुपये तक पहुंच गया है। यह 1996-97 (संशोधित प्राक्कलन) की तुलना में यह 2,000 करोड़ रुपये अधिक है।

1996-97 के दौरान राजस्व घाटा सकल राजकोषीय घाटे का 45 प्रतिशत बैठता है। इसका परिणाम यह है कि केंद्र सरकार के ऋणों का लगभग आधे भाग का प्रयोग राजस्व खाते के अंतर को पाटने के लिए किया गया था जिसके परिणामस्वरूप किसी ऐसी परिसंपत्ति का सृजन नहीं होगा जिससे कोई आय हो सके।

पूंजीगत लेखे के अन्तर्गत प्राप्तियों एवं संवितरण में अन्तर पूंजीगत अधिशेष अथवा कमी को दर्शाता है। पूंजीगत अधिशेष का उपयोग विकास हेतु किया जाता है। पिछले दस वर्षों से पूंजीगत अधिशेष की स्थिति विद्यमान रही है। वर्ष 1986 और 1996 के बीच की अवधि में राजस्व घाटे की तुलना में अधिशेष काफी कम रहा है।

वर्ष 1997-98 में पूंजीगत अधिशेष के राजस्व घाटे के बराबर रहने की संभावना है जिससे बजट घाटे का अन्तर तो समाप्त हो सकेगा परन्तु विकासात्मक गतिविधियों के लिए पूंजीगत बजट को अन्तरित किए जाने वाले संसाधन उपलब्ध नहीं होंगे। यह स्थिति राजकोषीय नीति के लिए अच्छी नहीं कही जा सकती।

अतएव यह आवश्यक है कि सभी प्रकार के व्यय के लिए पर्याप्त मात्रा में राजस्व प्राप्तियां बढ़ाई जाएं तथा व्यय में विशेष रूप से ऐसी श्रेणी के लिए, जिससे नए संसाधनों का सृजन नहीं होता है, कटौती की जाए।

सार्वजनिक उपक्रमों में किए गए भारी निवेश से विकास के लिए संसाधनों का सृजन नहीं हो पाया है क्योंकि उनमें से अधिकांश उपक्रम घाटे में चल रहे हैं अथवा बहुत कम लाभ अर्जित कर रहे हैं। हमारी राजस्व प्राप्तियों की अपर्याप्तता का एक कारण सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों से, जिनमें हमारी पूर्ववर्ती पंचवर्षीय योजनाओं की एक बड़ी राशि लगी हुई है, होने वाले लाभ की मात्रा का कम होना है, जिससे घाटे की स्थिति पैदा होती है। आर्थिक सुधारों की प्रक्रिया में बजटीय स्रोतों से सार्वजनिक उपक्रमों को दी जाने वाली अग्रेतर सहायता बन्द कर दी गई है और इस सीमा तक घाटे में कमी होती जा रही है।

सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों से प्राप्त राजस्व

इस समय केन्द्र के सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों की संख्या 241 है। वर्ष 1994-95 में इन उपक्रमों में 1,613.1 बिलियन रुपये (1,61,300 करोड़ रुपये) की पूंजी लगी हुई थी। सामूहिक कार्य निष्पादन से इस पूंजी पर मात्र 6 प्रतिशत कर-पूर्व लाभ प्राप्त हुआ था तथा कुल कारबार पर कुल 5.8 प्रतिशत कर-पश्चात् लाभ हुआ था।

तालिका 2.13

केन्द्र के सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों की लाभप्रदत्ता

(बिलियन रुपयों में)

	1960-61	1970-71	1980-81	1990-91	1992-93	1993-94	1994-95
एककों की संख्या	26	87	168	236	237	240	241
प्रदत्त पूंजी	1.7	18.2	87.3	432.4	518.7	559.7	582.9
निवल संपत्ति	1.9	22.0	115.5	757.3	956.5	1088.1	1230.0
लगाई गई पूँजी	2.4	36.5	182.3	1020.8	1399.3	1598.4	1613.1
सकल लाभ	0.1	1.5	14.2	111.0	159.8	185.6	225.1
कर-पूर्व लाभ	0.1	0.2	0.4	35.0	52.0	66.6	98.0
कर-पश्चात् लाभ	0.1	0.0	-1.8	22.7	34.0	45.5	72.2
लगाई गई पूंजी पर % सकल मार्जिन	10.3	9.5	13.2	17.9	18.0	17.3	20.6
लगाई गई पूँजी पर % सकल लाभ	5.5	4.0	7.8	10.9	11.4	11.6	13.9
लगाई गई पूँजी पर % कर-पूर्व लाभ	4.5	0.6	0.2	3.4	3.7	4.1	6.0
निवल सम्पत्ति पर % कर-पश्चात् लाभ	4.2	-0.1	-1.6	3.0	3.5	4.2	5.8

स्रोत: आर्थिक समीक्षा, 1996-97

उपरोक्त तालिका से यह देखा जा सकता है कि 70 और 80 के दशक के दौरान लाभ की दृष्टि से उनका कार्य-निष्पादन ऋणात्मक था। 90 के दशक में, इस स्थिति में थोड़ा सा सुधार हुआ। 31 मार्च, 1996 को 56 केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यम औद्योगिक और वित्तीय पुनर्निर्माण बोर्ड में पंजीकृत थे। उद्योग मंत्रालय, सार्वजनिक उद्यम विभाग द्वारा 1995-96 में किए गए सार्वजनिक उद्यम सर्वेक्षण (1995-96) के अनुसार 101 केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों को कुल 4,826 करोड़ रुपये की हानि हुई।

आर्थिक सुधार और संरचनात्मक समंजन

स्वतंत्रता के आरंभिक दिनों से ही हम अति सुरक्षित अर्थव्यवस्था के अभ्यस्त थे। हमने अपने आर्थिक उद्यमों, अपने निवेशों, अपनी मुद्रा, अपनी वस्तुओं और पूंजी बाजारों तथा अपने व्यापार को संरक्षण प्रदान किया। सार्वजनिक क्षेत्र में बड़े पैमाने पर निवेश और उसकी तुलना में, निजी क्षेत्र की बहुत कम भूमिका; विदेशी प्रत्यक्ष निवेश का हकशफा/पाबंदी, औद्योगिक उद्यमों की क्षमताओं का विनियमन; निम्न कर आधारों पर उच्चस्तरीय निगमित कराधान; निम्न कर और गैर-कर राजस्व, बड़े पैमाने पर आंतरिक और बाह्य ऋण का बोझ; हमेशा बढ़ने वाला सरकारी व्यय; कृत्रिम रूप से निर्धारित अपरिवर्तनीय विनिमय दरें और आयात-निर्यात प्रतिबंधों पर आधारित व्यापार नीति प्रणाली अर्थव्यवस्था की विशेषता रही।

परिणामत: निम्न प्रतिस्पर्धा तथा गैर-व्यापारिक माल से व्यापारिक माल पर संसाधनों के उपयोग पर गंभीर पाबंदी तथा 1980 के उत्तरार्द्ध में विश्व व्यापार में भारत का हिस्सा घट कर आधे प्रतिशत से भी कम हो गया, जबकि 1950 में यह 2 प्रतिशत

था, के अतिरिक्त बार-बार वित्तीय घाटे; बड़े पैमाने पर चालू व्यय और परिणामतः निवेश हेतु निम्न पूंजी निर्माण; अधिक उत्पादन संबंधी विवशता, सरकारी बजट पर भारी मांग; निरन्तर चलने वाली राजसहायताएं, प्रौद्योगिकी के न्यून उपयोग के परिणामस्वरूप उत्पादकता कम हुई। इसके अतिरिक्त, संगठित क्षेत्र में विनियमित श्रम बाजार था, जिसका तात्पर्य था कुछ लोगों के लिये बेहतर कार्य दशाएं और अन्य लोगों के लिए नौकरियों के कम अवसर।

संक्षेप में, सामान्य आर्थिक दृश्य कुछ ऐसा था जिसमें संसाधनों का उपयोग आर्थिक विकास और संपदा के सृजन में सहायक नहीं था। आर्थिक मंदी अथवा कमी स्पष्ट रूप से देखी जा सकती थी।

जून, 1991 में, गंभीर वित्तीय और विदेशी मुद्रा भण्डार असंतुलनों के कारण मुद्रास्फीति दहाई अंकों में पहुंच गई और इसके चलते देश विदेशी कर्ज की अपनी वचनबद्धताओं को पूरा करने में अपने आपको एक प्रकार से असमर्थ पा रहा था, उस समय सरकार ने अनेक उपचारात्मक उपाय किये जिनका उद्देश्य इस गंभीर स्थिति से निपटना और दीर्घकालिक ढांचागत सुधार करना था ताकि कार्यकुशलता और उत्पादकता में सुधार ला कर देश की अर्थव्यवस्था को समानता और सामाजिक न्याय के मार्ग पर चलते हुए फिर से निरन्तर विकास की ओर अग्रसर किया जा सके।

सुधार संबंधी उपाय

आर्थिक सुधार प्रक्रिया के रूप में शुरू किए गए विभिन्न नीतिगत और प्रशासनिक उपाय हैं:—

- बजट और राजस्व घाटे पर नियंत्रण और न्यून करों के साथ बेहतर अनुपालन;
- उत्कृष्ट रूप से बाजार द्वारा निर्धारित विनिमय दर नीति;
- रुपये की चालू खाता परिवर्तनीयता शुरू करना;
- आयात शुल्क में भारी कमी;
- सुरक्षा, पारिस्थितिकी और सामरिक दृष्टिकोणों से लाइसेंस प्रक्रिया की आवश्यकता केवल 18 उद्योगों के लिए सीमित करना;
- लम्बे समय से घाटे में चल रहे सार्वजनिक उद्यमों का पुनर्गठन (औद्योगिक और वित्तीय पुनर्निर्माण बोर्ड ने उनमें से 25 के पुनर्गठन की अनुमति दे दी है);
- विदेशी निवेश के संबंध में आमूल-चूल परिवर्तन;
- विद्युत, तेल शोधन कारखाने, दूरसंचार, एअरलाइंस, सड़क, कोयला, बैंकिंग और वित्तपोषण सेवाओं के क्षेत्र निजी उद्यमों के लिए खोलना।

सुधार परिणाम

सुधार प्रक्रिया के कुछ अच्छे परिणाम निकले हैं। सकल घरेलू उत्पाद जो 1991-92 में 0.9 प्रतिशत थी, 1994-95 में बढ़कर 6.2 प्रतिशत हो गयी, सरकारी खजाने में प्रत्यक्ष कर 1991-92 से चार वर्षों में दोगुना हो गया, 1991-92 में प्रत्यक्ष कर संग्रह 14,584 करोड़ रुपये था, जो 1994-95 में 26,000 करोड़ रुपये हो गया; सितम्बर, 1996 तक प्रत्यक्ष विदेशी निवेश 18,000 करोड़ रुपये से अधिक हो गया (विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के संबंध में 97,777 करोड़ रुपये तक की अनुमति थी); बैंकिंग और वित्तीय सेवाओं, वाणिज्यिक एअरलाइंस और साफ्टवेयर डवलपमेंट के क्षेत्र में नए निजी उद्यम स्थापित हुए हैं, रुपयों में विदेशी मुद्रा का भण्डार बढ़ कर 64,660 करोड़ रुपये हो गया है।

कुल मिलाकर आठवीं पंचवर्षीय योजना अवधि के दौरान (1992-97) अनेक क्षेत्रों में जैसे कृषि, विनिर्माण, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार इत्यादि में हमारा निष्पादन पूर्ववर्ती पंचवर्षीय योजना अवधि की तुलना में सामान्यतः बेहतर रहा। हमारा खाद्यान्न उत्पादन बढ़ कर 195 मिलियन टन हो गया। भुगतान संतुलन (बी.ओ.पी.) में काफी सुधार हुआ है। सकल घरेलू उत्पाद के अनुपात में राजकोषीय घाटा कम हुआ है। हमारी सकल घरेलू बचतें बढ़कर 24 प्रतिशत हो गई हैं। दूरसंचार को छोड़कर बुनियादी सुविधाओं के क्षेत्रों में भी शुद्ध उत्पादन में वृद्धि दर्ज की गई है, मुद्रास्फीति को इकाई के अंकों तक ही सीमित रखा गया।

1994-95 तक आर्थिक विकास की दर 7.2 प्रतिशत तक पहुंच गई। यद्यपि 1994-95 में सुधारों की गति कुछ धीमी रही, तथापि 1995-96 में भी विकास दर 7.1 प्रतिशत दर्ज की गई। वर्ष 1996-97 में भी विकास दर 7 प्रतिशत रहने का अनुमान है।

पिछले कुछ वर्षों से विकसित देशों सहित विश्व में जारी आर्थिक मंदी को देखते हुए हमारे विकास को उल्लेखनीय माना गया है। गत तीन वर्षों के दौरान हमारे कार्य निष्पादन के आधार पर, विश्व में हमारा स्थान दस शीर्ष निष्पादक देशों में आता है।

विदेशी मुद्रा प्रवाह

सुधारों के प्रारंभ से विदेशी प्रत्यक्ष निवेश अंतर्वाह 18,000 करोड़ रुपए को पार कर गया है, जबकि स्वीकृतियां लगभग 97,777 करोड़ रुपए की हैं। ईंधन और सेवा क्षेत्रों में सर्वाधिक विदेशी प्रत्यक्ष निवेश हुआ है। विदेशी प्रत्यक्ष निवेश स्वीकृतियों का लगभग 50% वित्तीय और बैंकिंग सेवाओं के लिए है। घरेलू क्षेत्र में 20 मिलियन से अधिक निवेशकर्ता हैं और इस क्षेत्र में भारत का विश्व में दूसरा स्थान है। तथापि, जैसा कि उक्त आंकड़े से प्रतीत होता है, वास्तविक अंतर्वाह और स्वीकृतियों में काफी अंतर है और अंतर्वाह स्वीकृतियों का केवल 18.5% है, जो स्वीकृतियों की प्राप्ति में व्यवस्थापरक कमियों की ओर इंगित करता है।

तालिका 2.14

विदेशी प्रत्यक्ष निवेश : वास्तविक अंतर्वाह एवं स्वीकृतियां

	1991	1992	1993	1994	1995	1996*	कुल (1991 से 96*)
स्वीकृतियां							
करोड़ रु.	739	5,256	11,189	13,591	37,489	29,513	**97,777**
अमरीकी मिलियन डालर	325	1,781	3,559	4,332	11,245	8,367	**29,608**
वास्तविक अंतर्वाह							
करोड़ रुपये	351	675	1,786	3,009	6,720	5,877	**18,418**
अमरीकी मिलियन डालर	155	233	574	959	2,100	1,670	**5,690**
स्वीकृतियों के % के रूप में वास्तविक अंतर्वाह	48	13	16	22	19	20	**19**

*सितम्बर, 1996 तक।

स्वीकृतियों और वास्तविक अंतर्वाह आंकड़ों में भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा अनुमोदित अनिवासी भारतीय प्रत्यक्ष निवेश भी शामिल है।
सभी आंकड़े कैलेंडर वर्ष से संबंधित हैं।

स्रोत : इकनॉमिक रिव्यू, 1996-97

नि:संदेह अभी बहुत कुछ किया जाना बाकी है। कुल वित्तीय घाटे को और कम किए जाने की आवश्यकता है। अवसंरचना में और सुधार किए जाने की आवश्यकता है। वित्तीय सुधारों को जारी रखे जाने की आवश्यकता है। सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों संबंधी विकृतियों में उल्लेखनीय सुधार किए जाने की आवश्यकता है। अंतर्राष्ट्रीय मानदंडों के आधार पर कर दरों को अभी भी अधिक माना जाता है और इस संबंध में आगे भी ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है।

विदेशों से अधिक पूंजी अंतर्वाह के कई प्रेरित कारक होते हैं। ये कारक इस प्रकार हैं:—

- औद्योगिक रूप से अल्प विकसित देशों की ब्याज दरें;
- औद्योगीकृत देशों—विशेष रूप से अमरीका, जापान और यूरोप—का आर्थिक रूप से सुदृढ़ होना;
- मेजबान देशों में उत्पादन की कम लागत को देखते हुए सार्वभौमिकरण की प्रक्रिया के भाग के रूप में उद्योगों की विदेशों में अवस्थिति;
- देश में जोखिम की कम संभाव्यता;
- मेजबान देशों में आर्थिक सुधारों द्वारा बाज़ार का उदारीकरण;
- औद्योगिक देशों के निवेशकों द्वारा अधिकतम लाभ प्राप्ति हेतु कार्य का विविधीकरण।

नि:संदेह, विदेशी पूंजी अंतर्वाह के प्रबंधन में मैक्सिको, चेक गणराज्य तथा थाईलैंड में उत्पन्न संकटपूर्ण स्थिति से सुधाराधीन देशों में आशंकाएं उत्पन्न हो गई हैं। बहरहाल, इस बात की आवश्यकता है कि पूंजी अंतर्वाहों के उचित प्रबंधन हेतु मेजबान देशों में प्रबंधन क्षमताओं का विकास हो और फलस्वरूप उस देश की नीतियों से निवेशकों के विश्वास में वृद्धि हो। बेशक, भारत में विदेशी संस्थागत निवेशकों के इक्विटी निवेशों पर 24 प्रतिशत की सीमा के रूप में हमने एहतियाती उपाय किए हैं। निवेशों की निकासी के संबंध में भी विनियम हैं। भारतीय रिजर्व बैंक की अनुमति के बिना निवेश राशि से अधिक लाभ नहीं लिया जा सकता है।

तथापि, एशियाई क्षेत्र में कुछ अन्य देशों की तुलना में भारत में विदेशी पूंजी अंतर्वाह बहुत कम है। यद्यपि हमारे यहां विदेशी पूंजी अंतर्वाह में धीरे-धीरे सुधार हो रहा है।

तालिका 2.15

विदेशी संस्थागत निवेशकों द्वारा कुल निवेश : 1992-93 से 1996-97

अवधि	राशि (अमरीकी मिलियन डालर)	प्रतिशत अंतर*
1992-93		
जनवरी-मार्च	4.3	–
कुल	**4.3**	
1993-94		
अप्रैल-जून	47.7	–
जुलाई-सितम्बर	176.2	–
अक्तूबर-दिसम्बर	599.1	–
जनवरी-मार्च	811.1	–
कुल	**1634.1**	
1994-95		
अप्रैल-जून	706.9	1382.0
जुलाई-सितम्बर	441.0	150.2
अक्तूबर-दिसम्बर	205.8	65.6
जनवरी-मार्च	174.6	78.5
कुल	**1528.3**	**6.5**
1995-96		
अप्रैल-जून	244.4	65.4
जुलाई-सितम्बर	510.0	15.6
अक्तूबर-दिसम्बर	262.4	27.5
जनवरी-मार्च	1018.9	483.6
कुल	**2035.6**	**33.2**
1996-97		
अप्रैल-जून	1078.7	341.4
जुलाई-सितम्बर	511.5	0.3
अक्तूबर-दिसम्बर	442.6	68.7
कुल	**2032.8**	**99.5**

*पिछले वर्ष की इसी अवधि में स्तर में अंतर

स्रोत : इकनॉमिक रिव्यू, 1996-97

विदेशी पूंजी अंतर्वाह निवेश हेतु उपलब्ध घरेलू बचत में वृद्धि; स्टॉक बाजार के विस्तार, बाजार में नकदी उपलब्ध कराने और उभरती हुई कंपनियों के वित्तपोषण में सहायक होता है। यह अवसंरचना, जिसके लिए भारी पूंजी की आवश्यकता होती है,

तालिका 2.16

मेजबान देशों द्वारा विदेशी प्रत्यक्ष निवेश अंतर्वाह

(अमरीकी मिलियन डालर)

देश	1990	1991	1992	1993	1994	1995(प्रा०)
चीन	3487	4366	11156	27515	33787	37500
हांगकांग	1728	538	2051	1667	2000	2100
भारत	162	141	151	273	620	1750
इंडोनेशिया	1093	1482	1777	2004	2109	4500
कोरिया गणराज्य	788	1180	727	588	809	1500
मलेशिया	2333	3998	5183	5006	4348	5800
सिंगापुर	5575	4879	2351	5016	5588	5302
ताइवान, प्रोविंस आफ चायना	1330	1271	879	917	1375	1470
सभी विकासशील देश (चीन सहित)	33735	41324	50376	73135	87024	99670
सभी विकासशील देशों में भारत का अंश (%)	0.48	0.34	0.30	0.37	0.71	1.76

भारत के संबंध में इस तालिका में दिए गए आंकड़े तालिका 6.12 से भिन्न हैं क्योंकि प्राप्त जानकारी के स्रोत और सूचना के स्रोत अलग-अलग हैं।
(प्रा.) : प्राक्कलन।
स्रोत : विश्व निवेश रिपोर्ट, 1996, संयुक्त राष्ट्र।

हेतु सिंडीकेट बैंक ऋण उपलब्ध कराने में सहायक होता है और ये प्रबंधन संबंधी जानकारी, प्रौद्योगिकी अंतरण और अंतर्राष्ट्रीय बाजारों तक पहुंच बनाने में सहायक होते हैं।

विदेशी पूंजी प्रवाह प्रबंधन में बरती जाने वाली विशेष सावधानियां इस प्रकार हैं:—

- निवेशों को उत्पादन क्षेत्रों में लगाया जाये;
- उचित प्रकार के निवेश, विशेष रूप से निर्यातोन्मुखी उद्यमों में, किए जाने चाहिएं;
- बड़े विदेशी मुद्रा संसाधनों को देखते हुए चालू खातों में भारी घाटों से बचना चाहिए;
- भारी पूंजी अंतर्वाहों को देखते हुए मुद्रा के अधिमूल्यन से भी बचना चाहिए, इसके लिए एक सतर्क मुद्रा नीति की आवश्यकता है;
- अल्पकालिक ऋण कम से कम होने चाहिएं।

(दो)

क्षेत्रीय परिदृश्य

कृषि

कृषि को पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से लोगों के लिये खाद्य सुरक्षा प्रदान करने हेतु उच्च प्राथमिकता प्रदान की गई थी। यह क्षेत्र कृषि से प्राप्त होने वाली राष्ट्रीय आय के महत्वपूर्ण अंग के रूप में आर्थिक विकास का सर्वाधिक महत्वपूर्ण क्षेत्र भी रहा है। सबसे बढ़कर यह देश में रोजगार का प्रमुख क्षेत्र था और अब भी है। औद्योगिक उत्पादन हेतु कच्चे माल तथा कृषि से प्राप्त होने वाली वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि सहित विदेशी व्यापार के विस्तार के लिये उद्योगों का विकास कृषि के विकास से गहराई से जुड़ा हुआ था।

विकास दर

साठ के दशक के मध्य तक भारत में कृषि विकास लगभग 3.2 प्रतिशत था। यह खेती के अधीन क्षेत्र का विस्तार करने से संबद्ध था; सत्तर के दशक में विकास दर में लगभग 2.2 प्रतिशत वृद्धि हुई जोकि मुख्यत: उत्पादन में वृद्धि के कारण हुई। 1980-81 से 1993-94 तक कृषि की विकास दर में लगभग 3.4 प्रतिशत तक की तीव्र वृद्धि अधिक पैदावार देने वाली किस्मों और उन्नत प्रौद्योगिकी के कारण हुई। तत्पश्चात् कृषि की विकास दर में गिरावट आयी है जोकि मुख्यत: खाद्यान्न उत्पादन की धीमी गति के कारण हुई है। 1990-91 से 1996-97 के विगत छ: वर्षों के दौरान खाद्यान्नों

के उत्पादन की 1.7 प्रतिशत की वार्षिक मिश्रित वृद्धि दर जनसंख्या की वार्षिक वृद्धि दर 1.9 प्रतिशत की तुलना में कम है जोकि चिन्ता का विषय है।

आर्थिक योजना के पहले 15 वर्षों के दौरान खाद्यान्न फसलों की वृद्धि दर गैर-खाद्यान्न फसलों की तुलना में पिछड़ गई। किन्तु गैर-खाद्यान्न फसलों के उत्पादन में बाद में काफी वृद्धि हुई है जो कि निम्नलिखित तालिका से देखा जा सकता है:—

तालिका 2.17

अखिल भारतीय स्तर पर कृषि उत्पादन की संयुक्त वृद्धि दरें

(प्रतिशत)

	1952-66	1967-95
खाद्यान्न	2.52	2.59
गैर-खाद्यान्न	3.87	2.49
सभी फसलें	**2.90**	**2.56**

स्रोत: आर्थिक सर्वेक्षण (वित्त मंत्रालय)

उत्पादन

खाद्यान्नों का उत्पादन 1950-51 में 50.8 मिलियन टन से बढ़कर 1994-95 में 19.15 मिलियन टन हो गया जिसमें अनाज का उत्पादन 1950-51 में 42.9 मिलियन टन से बढ़कर 1994-95 में 177.5 मिलियन टन हो गया। उत्पादन में इस उल्लेखनीय वृद्धि की तुलना में हाल ही में मिली कुछ सफलता के सिवाय दलहन का उत्पादन 11-12 मिलियन टन पर स्थिर रहा।

तालिका 2.18

कृषि उत्पादन का रुख

समूह/वस्तु	एकक	1950-51	1960-61	1970-71	1980-81	1990-91	1994-95
खाद्यान्न	(मिलियन टन)	50.8	82.0	108.4	129.6	176.4	191.5
अनाज	(मिलियन टन)	42.9	69.3	96.6	119.0	162.1	177.5
चावल	(मिलियन टन)	20.6	34.6	42.2	53.6	74.3	81.8
गेहूं	(मिलियन टन)	6.4	11.0	23.8	36.3	55.1	65.8
ज्वार	(मिलियन टन)	5.5	9.8	8.1	10.4	11.7	9.0
बाजरा	(मिलियन टन)	2.6	3.3	8.0	5.3	6.9	7.2
मक्का	(मिलियन टन)	1.7	4.1	7.5	7.0	9.0	8.9
दलहन	(मिलियन टन)	8.4	12.7	11.8	10.6	14.3	14.1
तिलहन	(मिलियन टन)	6.2	7.0	9.6	9.4	18.6	21.3
गन्ना	(मिलियन टन)	52.1	110.0	126.4	154.2	241.0	275.5
कपास	मिलियन गांठें	3.0	5.6	4.8	7.0	9.8	11.9
पटसन	मिलियन गांठें	3.3	4.1	4.9	6.5	7.9	8.0

स्रोत: आर्थिक सर्वेक्षण 1996-97

उत्पादकता

उत्पादन के रूख सहित कृषि क्षेत्र के कार्य निष्पादन को समझने के लिए उत्पादकता संबंधी पहलू को भी ध्यान में रखा जाता है। निम्नलिखित तालिका कृषि क्षेत्र में उत्पादकता अर्थात् भारत में प्रति हेक्टेयर औसत पैदावार दर्शाती है:

तालिका 2.19

मुख्य फसलों की प्रति हेक्टेयर पैदावार (कि.ग्रा./हेक्टेयर)

	1950-51	1960-61	1970-71	1980-81	1990-91	1995-96
खाद्यान्न	552	710	872	1023	1380	1499
अनाज	-	753	949	1142	1571	1727
चावल	668	1013	1123	1336	1740	1855
गेहूं	655	851	1307	1630	2281	2493
ज्वार	353	533	466	660	841	834
बाजरा	288	286	622	458	658	575
मक्का	547	926	1279	1159	1518	1570
दलहन	-	539	524	473	578	552
तिलहन	481	507	579	532	771	851
गन्ना (टन/हेक्टेयर)	-	46	48	58	65	68
कपास	88	125	106	152	225	246
पटसन	1044	1183	1186	1245	1833	1889

स्रोत : आर्थिक सर्वेक्षण 1996-97 (वित्त मंत्रालय)

एक ओर जहां उत्पादकता के स्तरों में सामान्यत: वृद्धि हुई है वहीं अन्य देशों में इसमें पर्याप्त गिरावट आई है।

तालिका : 2.20

चुने हुए देशों में प्रति हेक्टेयर औसत उपज (क्विंटल प्रति हेक्टेयर)

मद देश	1950-57	1961-65	1987-88
चावल			
भारत	8	10	17
चीन	17	18	35
अमरीका	19	29	41
जापान	26	33	40
गेहूँ			
भारत	7	8	20
चीन	9	9	30
फ्रांस	21	29	61
जर्मनी	28	33	68
कॉटन लिंट (कि.ग्रा. में)			
भारत	90	120	202
चीन	160	250	764
मैक्सिको	330	640	1100

स्रोत : एग्रीकल्चर इन ब्रीफ (23वां संस्करण) 1990 (कृषि मंत्रालय)

भारतीय कृषि के इतिहास में वर्ष 1967-68 को उल्लेखनीय वर्ष माना जा सकता है। इस वर्ष से (नयी कृषि नीति के रूप में) किए गए प्रयास सफल होना शुरू हो गए हैं। कृषि उत्पादकता में गिरावट की प्रवृत्ति रूक गई और एक प्रति एकड़ उपज में वृद्धि आरम्भ हो गयी। वर्ष 1969-70 में 1989-90 की अवधि के दौरान कृषि उत्पादकता में लगभग 50 प्रतिशत की वृद्धि हुई। यह वृद्धि लगभग सभी प्रमुख फसलों, विशेष रूप से गेहूं की फसल, में हुई है।

पूंजी निवेश

कृषि क्षेत्र में सरकारी और गैर-सरकारी दोनों क्षेत्रों में भारी मात्रा में पूंजी निवेश किया गया है। वर्तमान दशक में गैर-सरकारी क्षेत्र द्वारा कृषि क्षेत्र में पूंजी निवेश बढ़ाया गया है। यद्यपि सरकारी क्षेत्र की तुलना में पिछले दशक में इसमें कमी आई है।

तालिका 2.21

कृषि क्षेत्र में सरकारी और गैर-सरकारी क्षेत्र का अंश

(प्रतिशत) 1980-81 के मूल्यों पर

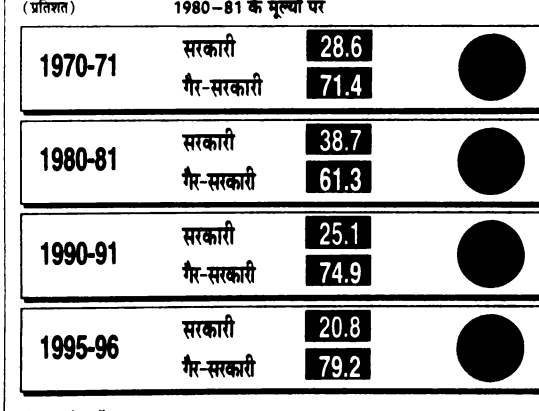

स्रोत: आर्थिक सर्वेक्षण, 1996-97

कृषि क्षेत्र में विकास के सम्बन्ध में समस्या यह है कि हमने देश में कृषि योग्य भूमि के केवल 30 प्रतिशत में ही सिंचाई की व्यवस्था की है। बाकी क्षेत्र वर्षा द्वारा सिंचाई पर निर्भर है। इससे कृषि मानसून पर निर्भर रहती है। यह सर्वविदित है कि हरित क्रान्ति मुख्य रूप से, पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर-प्रदेश और आन्ध्र प्रदेशों के कारण ही हुई। मुख्य रूप से, इन राज्यों से प्राप्त अतिरिक्त खाद्यान्न से ही पूरा देश खाद्यान्न के मामले में आत्मनिर्भर हो सका है।

कृषि क्षेत्र में, विकास के लिये नीति बनाते समय निम्नलिखित मुद्दों को ध्यान में रखा जाये-

- डा. स्वामीनाथन की अध्यक्षता में गठित विशेषज्ञों के दल द्वारा दिये गये सुझावों के अनुसार हरित क्रान्ति पूर्वी गांगेय क्षेत्र, ब्रह्मपुत्र घाटी और मध्य भारत में लायी जा रही है।
- कृषि के लिये आधारभूत सुविधाओं, विशेषकर सिंचाई और मृदा संरक्षण कार्यों और जल-प्रबन्धन पर बड़े पैमाने पर निवेश किया जा रहा है।
- यह सुनिश्चित किया जा रहा है कि उच्च उत्पादन वाली किस्मों संबंधी प्रौद्योगिकियों को लागू करने के लिये, चकबंदी और आर्थिक रूप से लाभप्रद है।
- केन्द्र और राज्य सरकारों द्वारा व्यापार, खाद्यान्न की ढुलाई और कृषि उत्पादों के भण्डारण के संबंध में अपनाई जा रही प्रतिबन्धात्मक नीतियों को समाप्त करना।

इस संदर्भ में, ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में दूरदर्शी दृष्टिकोण अपनाकर निवेश किए जाने की आवश्यकता है, जबकि कृषि विकास को बढ़ावा देने के लिए इस समय 8000 करोड़ रुपए प्रतिवर्ष निवेश किया जाता है। यह कार्यक्रम मूलत: दो प्रकार के हैं-मजदूरी के माध्यम से रोजगार और स्वरोजगार कार्यक्रम। मजदूरी के माध्यम से रोजगार कार्यक्रम द्वारा कृषि हेतु बुनियादी ढांचा तैयार करके, लघु सिंचाई कार्य तटबंध भूमि विकास कार्य आदि जैसे कार्यों में लेजी लाई जा सकती है। स्वरोजगार कार्यक्रमों में कृषि आधारित कार्यों का प्रशिक्षण कृषि इतर व्यवसायों जैसे कृषि उत्पादों की फसल कटाई पश्चात प्रसंस्करण, खाद्य प्रसंस्करण और कृषि से सम्बद्ध ग्रामीण उद्योगों के माध्यम से स्वरोजगार के अवसरों में वृद्धि की जा सकती है।

(तीन)

उद्योग

पूर्व और वर्तमान नीतियां

"मिश्रित अर्थव्यवस्था अपनाने के बाद जिसमें सरकारी और गैर सरकारी क्षेत्र दोनों साथ-साथ चले और अर्थव्यवस्था के मुख्य क्षेत्रों में सरकारी क्षेत्र का वर्चस्व हो। सरकार ने विभिन्न औद्योगिक नीति संबंधी संकल्पों के माध्यम से अपनी औद्योगिक नीति को स्पष्ट किया। इन सभी संकल्पों की मुख्य विशेषताएं सरकारी क्षेत्र (जिसमें अधिकांश शेयर सरकार का है) के लिए प्रमुख भूमिका, सहित सरकार द्वारा प्राथमिक और गैर प्राथमिक क्षेत्रों का सीमांकन, संयंत्र तथा मशीनरी पर विनिर्दिष्ट अधिकतम निवेश (वर्तमान में 60 लाख रुपये) के साथ लघु क्षेत्र के उद्योगों को प्रोत्साहन देना, आर्थिक शक्ति के केन्द्रीकरण पर रोक, भारत में विदेशी पर नियंत्रण, घरेलू उद्यमिता को प्रोत्साहन तथा संतुलित क्षेत्रीय विकास है।

स्वतंत्रता के समय भारतीय उद्योग प्रारंभिक चरण में था। यह सूती और पटसन वस्त्रों तक ही सीमित था जो उत्पादन क्षेत्र में मूल्यवर्धित का 56.8 प्रतिशत था। इसी प्रकार चीनी (6.6 प्रतिशत), इंजीनियरिंग (8.4 प्रतिशत), इस्पात (7.6 प्रतिशत), रसायन (4.1 प्रतिशत) तथा सीमेंट (2.1 प्रतिशत) था। 1950 में आधुनिक उद्योग की राष्ट्रीय आय में भागीदारी 6 से 8 प्रतिशत थी। जिसमें लघु क्षेत्र के उद्यमों तथा खनन का योगदान 12 से 14 प्रतिशत था। स्वतंत्रता प्राप्ति के तुरंत पश्चात भारतीय उद्योग की मुख्य विशेषता थी पूंजी अथवा उत्पादक वस्तु उद्योग का अभाव। भारतीय उद्योग लगभग पूरी तरह आयातित मशीनरी तथा मशीन टूल्स पर निर्भर था। 1950 में भारत ने अपनी मशीन टूल्स की आवश्यकता का 89.8 प्रतिशत अयात के माध्यम से पूरा किया तथा देश में केवल 30 लाख रुपए के ही मशीन टूल्स तथा पोर्टबल टूल्स का निर्माण हुआ।

औद्योगिक नीति संबंधी संकल्प

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात 1948 के औद्योगिक नीति संबंधी संकल्प के कारण औद्योगिक विकास सुगम हो गया जिसके पश्चात 1956 में अन्य औद्यगिक नीति संबंधी संकल्प लाया गया जिसका उद्देश्य साम्यवादी समाज की स्थापना के लिए आर्थिक विकास दर को बढ़ाना और औद्योगिकरण की गति को तेज करना था। 1956 में पूंजी की कमी थी तथा उद्यम के लिए आधार भी पर्याप्त मजबूत नहीं था। इसलिए 1956 के औद्योगिक नीति संबंधी संकल्प में राज्य की भूमिका को प्राथमिकता दी गई ताकि औद्योगिक विकास के लिए वह प्रभावी और प्रत्यक्ष उत्तरदायित्व संभाल सके। 1948 तथा 1956 के इन दो संकल्पों में इस्पात, भारी इंजीनियरी, मशीन टूल्स तथा बड़े रसायन उद्योग के विकास को विशेष महत्व दिया गया।

1948 के औद्योगिक नीति संबंधी संकल्प में कुछ उद्योगों में उत्पादन सरकारी क्षेत्र के लिए आरक्षित कर दिया गया। इनमें हथियार तथा गोलाबारूद का उत्पादन, परमाणु ऊर्जा का उत्पादन तथा नियंत्रण एवं रेलवे का स्वामित्व और प्रबंधन शामिल है। तथापि, कोयला, लोहा तथा इस्पात, विमान निर्माण, जहाज निर्माण, तार तथा बेतार संबंधी उपस्करों (रेडियो को छोड़कर) का निर्माण तथा खनिजों के उत्पादन केंद्र अथवा राज्य सरकार के उपक्रमों द्वारा किए जाने हेतु आरक्षित थे। वर्ष 1956 की औद्योगिक नीति संबंधी संकल्प में कुछ और उद्योगों को सूची में शामिल किया गया। जहां तक सरकारी क्षेत्र का प्रश्न है पूर्व में यह अभिकल्पना की गई थी कि इनका प्रवेश उन क्षेत्रों में होना चाहिए जहां निजी क्षेत्र द्वारा निवेश किए जाने में कठिनाई हो। वर्ष 1956 तक इसमें परिवर्तन हुआ और यह महसूस किया जाने लगा कि सरकारी क्षेत्र से अर्थव्यवस्था पर प्रभावशाली असर पड़ेगा।

वर्ष 1973 के औद्योगिक नीति संबंधी विवरण में अन्य बातों के अलावा उच्च प्राथमिकता वाले उन उद्योगों का पता लगाया गया है जिनमें बड़े औद्योगिक घरानों तथा विदेशी कंपनियों से निवेश की अनुमति मिल जायेगी। सरकार ने यह पाया कि जबकि पूर्व औद्योगिक नीति की कुछ बातें अभी भी सही हैं फिर भी इसके परिणाम अपेक्षाओं अथवा घोषित उद्देश्यों के अनुरूप नहीं रहे हैं। सरकार ने लोगों की वास्तविक आकांक्षाओं को समय सीमा में पूरा करने हेतु पूर्व में महसूस की गई कतिपय त्रुटियों को दूर करने के उद्देश्य से वर्ष 1977 में औद्योगिक नीति की घोषणा की थी। उद्योग तथा औद्योगिक नीति अर्थव्यवस्था की आवश्यकतानुरूप समग्र रूप से जुड़ी हुई थी। सामाजिक-आर्थिक परिप्रेक्ष्य में बड़े क्षेत्र की भूमिका को परिभाषित किया गया। कुटीर तथा लघु क्षेत्रों के महत्व पर बल दिया गया था। इसके पश्चात वर्ष 1980 में औद्योगिक नीति संबंधी विवरण आया जिसमें स्वदेशी बाजार में प्रतिस्पर्धा को प्रोत्साहित करने, प्रौद्योगिकी उन्नयन तथा आधुनिकीकरण किए जाने पर बल दिया गया था। नीति में बढ़ते हुए प्रतिस्पर्धात्मक निर्यात आधार तथा उच्च प्राथमिकता वाले प्रौद्योगिकी क्षेत्रों में विदेशी निवेश को प्रोत्साहन दिए जाने की शुरूआत की गई थी। इसे छठी पंचवर्षीय योजना में मूर्त रूप दिया गया जिसमें सभी आर्थिक तथा उत्पादकता गतिविधियों में उत्पादकता पर प्रमुख रूप से ध्यान देने पर बल दिया गया।

इसके बावजूद सरकारी क्षेत्र भारी उद्योगों के विकास में प्रमुख भूमिका निभाता रहा। विद्युत, रेलवे, कोयला, पेट्रोलियम, इस्पात तथा उर्वरक जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों में विकास की गति बनाये रखने में सरकारी क्षेत्र सघन रूप से सक्रिय रहा है।

बुनियादी ढांचे तथा मूल उद्योग में सार्वजनिक निवेश के अतिरिक्त योजना उद्देश्यों तथा प्राथमिकताओं के अनुरूप निजी क्षेत्र का विस्तार काफी हद तक वित्तीय संस्थाओं द्वारा संभव किया जा सका। निजी क्षेत्र में वित्तीय औद्योगिक निवेश हेतु विशिष्ट विकास बैंकिंग संस्थाओं ने भारतीय औद्योगिक विकास बैंक के साथ मिलकर एक व्यापक नेटवर्क तैयार किया। 50 से अधिक संख्या वाली ये संस्थाएं निगमित विकास क्षेत्र में दीर्घावधि वित्त पोषण का प्रमुख स्रोत हो गई।

छठी और सातवीं पंचवर्षीय योजनाओं में किया गया विकास

वर्ष 1991 की औद्योगिक नीति के संबंध में अगले विवरण से पता चलता है कि पूर्ववर्ती नीतियों के परिणामस्वरूप देश में तीव्र औद्योगिक विकास के लिए वातावरण तैयार हो गया था, एक व्यापक आधारभूत ढांचे का निर्माण किया गया, बुनियादी उद्योगों की स्थापना की गई, कच्चा माल, अर्ध-तैयार वस्तुएं तथा तैयार वस्तुएं जैसी अनेक वस्तुओं के संबंध में उल्लेखनीय आत्मनिर्भरता प्राप्त की गई, औद्योगिक गतिविधियों के नए विकास केन्द्रों की स्थापना की गई, उद्यमियों की नई पीढ़ी उभर कर सामने आई और बड़ी संख्या में अभियंताओं, तकनीशियनों तथा कुशल श्रमिकों को प्रशिक्षित किया गया।

छठी योजना में एल्यूमिनियम, जिंक, शीशा, थार्मोप्लास्टिक, धागा, पेट्रोरसायन अंतर्वती उत्पाद, विद्युत उपकरण, सीमेंट तथा उपभोक्ता वस्तु उद्योग सहित बड़ी संख्या में उद्योगों के संबंध में, कमोबेश निर्धारित लक्ष्यों के अनुरूप क्षमता में वृद्धि हुई। तथापि कुछ बुनियादी उद्योगों, जैसे इस्पात, सीमेंट, अलौह धातु, उर्वरक तथा कुछ अन्य उद्योगों, जिनमें वस्त्र, जूट निर्माण, चीनी, औषधि तथा भेषज, वाणिज्यिक वाहन और रेल वैगन शामिल हैं, के उत्पादन में गिरावट आई। परन्तु मशीन टूल्स, यात्री कार, मोटर साइकिल तथा स्कूटर, उपभोक्ता इलेक्ट्रानिक्स वस्तुओं और संचार उपकरण विनिर्माण जैसे कुछेक उद्योगों में निर्धारित लक्ष्य से अधिक उत्पादन हुआ। उत्पादन में गिरावट के परिणामस्वरूप उत्पन्न घरेलू असंतुलन को इस्पात, सीमेंट, उर्वरक और चीनी जैसी अत्यावश्यक वस्तुओं का आयात करके दूर करना पड़ा।

योजनावधि के दौरान इंजीनियरी क्षेत्र के कतिपय उद्योगों ने प्रौद्योगिकी पर जोर दिया गया। इस दौरान 500 मेगावाट की क्षमता वाली प्रथम ताप विद्युत उत्पादन इकाई शुरू की गई और 500 मेगावाट वाले टर्बो जेनरेटरों एवं बायलरों का निर्माण आरम्भ किया गया। विद्युत क्षेत्र के लिए आवश्यक अन्य उपकरणों के निर्माण हेतु उत्पादन प्रौद्योगिकी का क्रमबद्ध रूप से उन्नयन हुआ है। देश में प्रतिदिन 1350 टन उर्वरकों के उत्पादन हेतु उपकरण तथा इस्पात संयंत्रों के लिए 3200 घन मीटर क्षमता वाली धमन भट्ठियों का निर्माण शुरू किया गया। इलैक्ट्रानिक्स क्षेत्र के तीव्र विकास के लिए एक मजबूत आधार तैयार किया गया।

सातवीं पंचवर्षीय योजना में इन शक्तियों को सुदृढ़ करने तथा भारतीय उद्योगों को उभरती हुई चुनौतियों का प्रभावी रूप से सामना करने हेतु तैयार करने के लिए पहल करने की आवश्यकता पर बल दिया गया है। वर्ष 1985-86 में नीति और प्रक्रिया में किए गए अनेक परिवर्तनों का उद्देश्य उत्पादकता में वृद्धि करना, लागत में कमी करना तथा गुणवत्ता में सुधार करना था। उद्योगों

की उत्पादन क्षमता पर लगे प्रतिबंधों को धीरे-धीरे कम कर दिया गया तथा ब्राडबेंडिंग प्रणाली शुरू की गई जिससे विनिर्माता विद्यमान बाजार दशाओं के संदर्भ में उसके लिए अनुकूल किसी मिश्रित उत्पाद का चुनाव करने में समर्थ हो सके। वर्ष 1986 में वर्तमान क्षमता संबंधी नीति का पुन:समर्थन किए जाने के बजाए उत्पादन की न्यूनतम आर्थिक मापदंड संबंधी योजना शुरू की गई जिसके आशय पत्र में किसी एकल इकाई हेतु एक न्यूनतम आर्थिक आकार निर्धारित किया गया।

इस बात पर बल दिया गया था कि घरेलू बाजार में प्रतिस्पर्धा लाई जाए और उद्योग को आत्मनिर्भर बनाया जाये ताकि वह अपने बूते पर अंतर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा का मुकाबला करने के लिए तैयार हो सके। सार्वजनिक क्षेत्र की कई कठिनाइयां और अड़चनों को दूर किया गया और इसे व्यापक स्वायत्ता प्रदान की गई। उद्योगों की उत्पादकता बढ़ाने और अंतर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा में उन्हें सक्षम बनाने के लिए उद्योगों के प्रौद्योगिकीय और प्रबंधकीय आधुनिकीकरण को प्रमुख आधार बनाया गया।

स्वतंत्रता के बाद अपनाई गई नीतियों के परिणामस्वरूप हमारा देश औद्योगिक क्षेत्र में लम्बे समय तक 6 प्रतिशत से भी अधिक की दीर्घावधिक वार्षिक विकास दर हासिल करने में सफल रहा। इस विकास दर को तीन अलग-अलग अवधियों में बांटा जा सकता है : पहली तीन योजनावधि (1950-1965) के दौरान 7.7 प्रतिशत की वार्षिक विकास दर; वार्षिक योजनावधि (1966-69) और चौथी एवं पांचवीं योजनावधि (1969-79) के दौरान चार प्रतिशत वार्षिक विकास दर, और अंतत: छठी और सातवीं योजनावधि के दौरान लगभग 7.7 प्रतिशत की विकास दर।

निराशापूर्ण अवधि

वर्ष 1966-1980 की अवधि भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए निराशापूर्ण अवधि थी। इस अवधि में कई भीषण और नियंत्रणातीत संकट के दौर भी आए : इसमें 1965-68 में तीन वर्षीय भीषण सूखा की स्थिति, 1962 के पश्चात तीन तथा पाकिस्तान के साथ दो युद्धों के कारण रक्षा व्यय में वृद्धि, 1973 और 1979 में तेल मूल्य वृद्धि संकट तथा विदेशी संसाधनों की उपलब्धता में भारी गिरावट शामिल है। इस अवधि के दौरान भारतीय अर्थव्यस्था स्थिरता प्राप्त करने के लिए लगातार संघर्षरत रही।

विभिन्न नीतिगत परिवर्तनों के परिणामस्वरूप भारतीय उद्योगों की संरचना और स्वरूप का व्यापक कायाकल्प हुआ है। स्वतंत्रता के समय, उपभोक्ता वस्तुएं समग्र औद्योगिक उत्पादन का लगभग आधा हिस्सा हुआ करती थी। 1991 में ऐसे उद्योगों का योगदान लगभग 20 प्रतिशत मात्रा रह गया। पूंजीगत माल का उत्पादन 4 प्रतिशत से 24 प्रतिशत तक पहुंच गया। इसी प्रकार, बुनियादी वस्तुओं का उत्पादन 20 प्रतिशत से बढ़कर 40 प्रतिशत हो गया।

नई औद्योगिक नीति

उपलब्धियों के बावजूद वर्षों से यह बात स्पष्ट हो गई थी कि औद्योगिक लाइसेंस प्रणाली जिसे विशेष रूप से 1960 के दशक के मध्य के बाद अपना लिया गया था, के परिणामस्वरूप अकुशलता ने जड़ें पकड़ ली थीं और उत्पादन लागत काफी बढ़ गई थी। अत: 1 जुलाई 1991 में प्रमुख नीतिगत परिवर्तन किए गए ताकि त्वरित आर्थिक विकास के लिए प्रतिस्पर्धात्मक माहौल तैयार किया जा सके। नई नीति में प्रतिस्पर्धा के नए स्रोतों पर बल दिया गया था ताकि उद्योगों को लाइसेंस मुक्त करके तथा विदेशी प्रत्यक्ष निवेश संबंधी नीति को उदार बनाकर औद्योगिक दक्षता बढ़ाई जा सके। 24 जुलाई, 1991 को नई औद्योगिक नीति संबंधी विवरण संसद में प्रस्तुत किया गया।

नई नीति के अंतर्गत "सुरक्षा और सामरिक महत्व संबंधी, सामाजिक कारणों, खतरनाक रसायनों, पर्यावरण संबंधी कारणों की अनदेखी करने वाले तथा प्रमुख खपत वाली वस्तुओं से संबंधित 18 उद्योगों को छोड़कर अन्य के औद्योगिक लाइसेंस रद्द कर दिए गए हैं। सार्वजनिक क्षेत्र के लिए उन आरक्षित उद्योगों की संख्या घटाकर आठ कर दी गई है जिनमें सरकार के विचार से सुरक्षा और नीतिगत मुद्दों पर वर्चस्व था। नई नीति इस प्रकार तैयार की गई है कि उद्यमी वाणिज्यिक निर्णय के आधार पर निवेश संबंधी निर्णय ले सकें और सरकार की विनियम संबंधी भूमिका कम हो सके।

साथ ही, व्यापार संबंधी सुधार, जिनमें परिणाम विषयक प्रतिबंधों को हटाना और शुल्क में कटौती करना शामिल है, से अंतर्राष्ट्रीय स्पर्द्धा बढ़ी है। व्यापार के उदारीकरण से पूंजी आधारित कार्यकलापों के प्रभावी संरक्षण में कमी आई है और निर्यातोन्मुखी श्रम आधारित उत्पादन को प्रोत्साहन मिला है।

भारतीय उद्योग में सुधार प्रक्रिया तुलनात्मक रूप में तेजी से आई। समग्र औद्योगिक विकास सकारात्मक रहा है, जो 1991-92 में 0.6 प्रतिशत से बढ़कर 1992-93 में 2.3 प्रतिशत हो गया। इसके बाद 1993-94 में 6 प्रतिशत की महत्वपूर्ण वृद्धि हुई जो 1994-95 में बढ़कर 9.4 प्रतिशत और 1995-96 में 12.1 प्रतिशत हो गई। विनिर्माण क्षेत्र का कार्य निष्पादन 1991-92 में 0.8 था जो 1995-96 में उल्लेखनीय रूप से बढ़कर 13.7 प्रतिशत हो गया। पूंजीगत माल क्षेत्र, जिसमें पहले अनिश्चितता की स्थिति थी, औद्योगिक वृद्धि में प्रमुख रूप से योगदान देने वाला बनकर उभरा और इसमें यह 1994-95 में 24.8 प्रतिशत की वृद्धि हुई थी और 1995-96 में 19.4 प्रतिशत की वृद्धि हुई। टिकाऊ उपभोक्ता वस्तु क्षेत्र में 1994 के बाद महत्वपूर्ण रूप से वृद्धि हुई जबकि गैर टिकाऊ उपभोक्ता वस्तु क्षेत्र में 1994-95 और 1995-96 में बहुत तेजी से वृद्धि हुई है।

विनिर्माण के निम्नलिखित क्षेत्रों में अप्रैल-मार्च 1995-96 के दौरान सर्वाधिक वृद्धि पाई गई : परिवहन उपस्कर (20.9 प्रतिशत), विद्युत मशीनरी (20.8 प्रतिशत) पेय पदार्थ, तम्बाकू और इनके उत्पाद (20.0 प्रतिशत) धातु उत्पादन और कल-पुर्जे (17.7 प्रतिशत), मशीनरी और मशीनी औजार (17.6 प्रतिशत), खाद्य उत्पाद (14.7 प्रतिशत) और मूल धातु तथा मिश्र धातु (13.9 प्रतिशत)

सरकारी क्षेत्र

निवेश पर प्रतिलाभ के रूप में सरकारी क्षेत्र का समग्र रूप से कार्य निष्पादन गैर-कर राजस्व संबंधी इस अध्याय के भाग में पहले ही प्रस्तुत किया जा चुका है। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है 241 केन्द्रीय सरकारी क्षेत्र के उद्यमों के सामूहिक कार्य निष्पादन से केवल 6 प्रतिशत कर पूर्व लाभ मिला है और उनमें से 56 औद्योगिक तथा वित्तीय पुनर्निर्माण बोर्ड के उम्मीदवार हो गए हैं।

परन्तु यह कहा जाना चाहिए कि इस बात का श्रेय सरकारी क्षेत्र के उद्यमों को जाता है कि उन्होंने इस क्षेत्र में वित्तीय शून्यता की स्थिति में प्रवेश किया था। उनमें से अधिकांश ने कम लाभप्रद क्षेत्रों में कार्य किया। नि:संदेह अनेक उद्यमों ने गैर आधारभूत उपभोक्ता क्षेत्रों में कार्य आरम्भ किया। इसी तरह से सरकारी क्षेत्र ने अनेक रुग्ण उद्योगों को अपने हाथ में लिया। इन उद्यमों का आधुनिकीकरण करने के लिए वित्तीय आवंटन प्राय: इष्टतम नहीं रहा है। परन्तु सरकारी क्षेत्र ने अर्थव्यवस्था का संचालन करने के लिए अपेक्षित आधारभूत औद्योगिक ढांचे का निर्माण करने में मदद की है। सरकारी क्षेत्र की प्रमुख समस्याएं अत्यधिक जनशक्ति, निम्न स्तर की प्रौद्योगिकी, भारी वित्तीय कठिनाईयां, स्वायत्तता के बिना जिम्मेदारी और संविधान के अनुच्छेद 12 के अर्थ के अन्तर्गत "राज्य" के रूप में उनके माने जाने के कारण मूल अधिकार संबंधी मुकदमों में अंतर्ग्रस्त होने की रही है।

आर्थिक सुधार की कार्यसूची में एक मुख्य मद सरकारी क्षेत्र के उद्यमों का पुन:स्थापन और पुनर्निर्माण है। केन्द्रीय सरकारी क्षेत्र के उद्यमों के बारे में पुन:स्थापन और पुनरूद्धार योजनाएं तैयार की गई हैं।

इन उद्यमों का पुन:स्थापन करने में आने वाली कुछ बुनियादी समस्याएं इस प्रकार रही हैं:-

- प्रवर्तक के रूप में सरकार संसाधनों की कमी के कारण उद्यमों के पुन:स्थापन में अन्तर्ग्रस्त भारी पूंजी संसाधनों की व्यवस्था करने के बारे में निर्णय लेने में असमर्थ रही है।
- औद्योगिक वित्त पुनर्गठन बोर्ड के पुन:स्थापन के लिए अनुमति देने अथवा स्वीकार करने संबंधी नियमों में और आगे निवेश करने संबंधी वचनबद्धता को पूरा करने की सरकारी असमर्थता के कारण देरी होती है।
- सरकार में निर्णय लेने की प्रक्रिया जटिल और दुरूह होती है क्योंकि प्रस्तावों पर उद्यम स्तर पर निर्णय लिए जाते हैं जिनमें श्रमिकों और प्रबंधकों के बीच बातचीत; श्रम मंत्रालय में त्रिपक्षीय औद्योगिक संबंध समितियों में पुन:स्थापन योजनाओं पर विचार, मंत्रियों के दल द्वारा विचार, सचिवों की समिति द्वारा विचार आदि शामिल हैं।
- इनकी और बिगड़ती स्थिति और रुग्णता का कारण इन्हें वित्तीय संस्थाओं से वित्तीय सहायता न दिया जाना है, वह भी सिर्फ इसलिए कि ये उद्यम औद्योगिक वित्त पुनर्गठन बोर्ड के अंतर्गत "रुग्ण" के रूप में पंजीकृत हैं।

राष्ट्रीय नवीनीकरण निधि (एन.आर.एफ.)

सरकार ने 1992 में सरकारी उद्यमों की पुन:स्थापन के संदर्भ में राष्ट्रीय नवीनीकरण निधि (एन.आर.एफ.) की स्थापना की थी। स्पष्ट रूप से, इस निधि का पुन:स्थापन के लिए निवेश संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उपयोग नहीं किया जा सका, क्योंकि आवंटित धनराशि बहुत कम थी और इसका एकमात्र उद्देश्य स्वैच्छिक सेवा निवृत्ति लेने वाले कर्मचारियों को मुआवजे की अदायगी करना, कर्मचारियों का पुन: प्रशिक्षण और उनकी पुन: तैनाती तथा रोजगार सृजन करने वाली योजनाओं के लिए वित्तीय सहायता का प्रावधान करना था।

निधि परिचालन के लिए वर्ष 1992-93 से 1996-97 तक बजट में 3100 करोड़ रुपए धनराशि की व्यवस्था की गई थी। अब तक, 66 उद्यमों में 104756 कर्मचारी स्वैच्छिक सेवा निवृत्ति ले चुके हैं।

तालिका 2.22

राष्ट्रीय नवीकरण निधि योजना के अन्तर्गत स्वैच्छिक सेवा-निवृत्ति लाभ ले चुके कर्मचारियों की उद्योग-वार संख्या निम्न प्रकार है:

रसायन तथा पेट्रो-रसायन	4,073
खाद्य प्रसंस्करण	220
वस्त्र	50,185
इस्पात	9,946
खान	7,560
जल संसाधन	1,375
उर्वरक	2,219
नागरिक आपूर्ति	462
रक्षा	1,596
जल भूतल परिवहन	6,937
भारी उद्योग	16,171
पर्यटन	973
लघु उद्योग	141
दूर संचार	2,395
परमाणु ऊर्जा	416
कुल	**1,04,669**

स्रोत: उद्योग मंत्रालय

स्वैच्छिक सेवा निवृत्ति ले चुके कर्मचारियों की आयु वर्गीकरण संबंधी उपलब्ध आंकड़ों से यह पता चलता है कि उनमें से 50 प्रतिशत 50 वर्ष से अधिक, 45 प्रतिशत 35 से 50 वर्ष और 5 प्रतिशत 35 वर्ष से कम आयु वर्ग के कर्मचारी हैं।

उद्योग मंत्रालय के अनुसार 30 नवम्बर, 1996 को 16442 कामगारों को पुन: प्रशिक्षित किया गया, 2900 कामगारों को पुन: तैनात किया गया और 60075 कामगारों का मार्गदर्शन किया गया।

कई रुग्ण केन्द्रीय सरकारी क्षेत्र के उपक्रमों में कर्मचारियों को अद्यतन भुगतान नहीं किया जा रहा है और प्रबंधकों पर राशि बकाया है। परिचलनात्मक खर्च के लिए बजटीय सहायता के अभाव में ये प्रतिष्ठान श्रमिकों से जुड़े अपने उत्तरदायित्व को पूरा करने में असमर्थ हैं। अत: इससे औद्योगिक संबंधों पर बुरा असर पड़ता है। ट्रेड यूनियनों की शिकायत यह है कि सरकार के एक आदर्श नियोक्ता होने के बावजूद ये उद्यम श्रम कानूनों का उल्लंघन कर रहे हैं।

अब चूंकि राष्ट्रीय नवीकरण निधि पहले ही केन्द्रीय सरकारी क्षेत्र के उपक्रमों को आवंटित कर दी जाती है अत: राज्य सरकारों के अन्तर्गत आने वाले रूग्ण निगमों को इस निधि से कुछ भी हासिल नहीं हो पाता है।

यह एक ऐसी स्थिति है जिसमें इस बात से चिन्तित सभी लोग पुनर्गठन करने के बारे में तो कहते हैं परन्तु सुधार लाने के लिए जिस राजनैतिक वचनबद्धता की आवश्यकता होती है उसका अभाव है।

विनिवेश

कुछ सरकारी क्षेत्र के प्रतिष्ठानों का पुनर्गठन करने के उद्देश्य से एक विनिवेश आयोग नियुक्त किया गया है। इसका मुख्य उद्देश्य कुछ ऐसे प्रतिष्ठानों की इक्विटी और शेयरों का विनिवेश करना है जहां ऐसा करना व्यावहारिक हो ताकि परिणामत: जो भी संसाधन प्राप्त हों उन्हें प्राथमिकता वाले क्षेत्रों को आबंटित किया जा सके। कुल मिलाकर 50 निगमों का मामला जांच के लिए आयोग के पास भेजा गया। उन्होंने अब तक तीन प्रतिवेदन दिये हैं जिनमें विनिवेश हेतु 15 कम्पनियों की पहचान की गई है। तीन कम्पनियों के मामले में किसी प्रकार के विनिवेश की सिफारिश नहीं की गई। बारह कम्पनियों के संबंध में जिनका ब्यौरा नीचे दिया गया है, विनिवेश की सिफारिश की गयी है:-

तालिका 2.23

कम्पनियां जिनमें विनिवेश की सिफारिश की गई है

कम्पनी का नाम	विनिवेश की मात्रा जिसके लिए सिफारिश की गई
भारत एल्यूमीनियम कारपोरेशन लिमिटेड	40% इक्विटी
बोंगाई गांव रिफाइनरी	50% शेयर
कन्टेनर कारपोरेशन आफ इंडिया लिमिटेड	49%
गैस अथारिटी आफ इंडिया लिमिटेड	25% इक्विटी
हिन्दुस्तान टेलीप्रिंटर्स लिमिटेड	विशिष्ट बिक्री
इंडियन टेलीफोन इंडस्ट्रीज लिमिटेड	विशिष्ट बिक्री
इंडिया टूरिज्म डेवलपमेण्ट कारपोरेशन लिमिटेड	विशेष होटलों की विशिष्ट बिक्री
कुद्रेमुख आयरन ओर कम्पनी लिमिटेड	74% तक विशिष्ट बिक्री
मद्रास फर्टीलाइजर्स लिमिटेड	विशिष्ट बिक्री
महानगर टेलीफोन निगम लिमिटेड	49%
मैंग्नीज ओर इंडिया लिमिटेड	पुनर्वास के पश्चात् 49%
माडर्न फूड इंडिया लिमिटेड	विशिष्ट बिक्री के माध्यम से 100% इक्विटी

स्रोत : सार्वजनिक उद्यम विभाग

महानगर टेलीफोन निगम लिमिटेड, गैस अथारिटी आफ इंडिया लिमिटेड और कंटेनर कारपोरेशन आफ इंडिया में विनिवेश प्रक्रिया जारी है।

लघु क्षेत्र

रोजगार तथा निर्यात के लिये लघु क्षेत्र के उद्योगों का योगदान पर्याप्त मात्रा में है। लघु क्षेत्र, निर्माण क्षेत्र में कुल कारोबार के 40 प्रतिशत से अधिक, निर्मित वस्तुओं के निर्यात का 45 प्रतिशत तथा कुल निर्यात के 34 प्रतिशत का योगदान करता है। लघु उद्योग विकास आयुक्त के कार्यालय द्वारा यथा प्राक्कलित लघु उद्योग क्षेत्र में संख्या, रोजगार उत्पादन और निर्यातों को नीचे दिया गया है:

तालिका : 2.24

लघु उद्योग क्षेत्र का समग्र कार्य-निष्पादन

वर्ष	एककों की संख्या (लाख में) 31 दिसम्बर की स्थिति के अनुसार	उत्पादन चालू मूल्यों पर (करोड़ रु. में)	रोजगार (लाख संख्या)	निर्यात (करोड़ रु. में)
1991-92	20.82	1,78,699	129.80	13,883
	(6.9)	(15.0)	(3.6)	(43.7)
1992-93	22.46	2,09,300	134.06	17,785
	(7.9)	(17.1)	(3.3)	(28.1)
1993-94	23.81	2,41,648	139.38	25,307
	(6.1)	(15.5)	(4.0)	(42.3)
1994-95	25.71	2,93,990	146.56	29,068
	(7.8)	(21.7)	(5.2)	(14.9)
1995-96(अ)	27.24	3,56,213	152.61	36,470*
	(8.1)	(21.2)	(4.1)	(25.5)

*त्वरित प्राक्कलन

(अ) अनन्तिम

नोट : कोष्ठक में दिए गए आंकड़े पिछले वर्ष की तुलना में वृद्धि दर्शाते हैं।

स्रोत : आर्थिक सर्वेक्षण 1996-97 (वित्त मंत्रालय)

उत्पादन के मामले में लघु उद्योग क्षेत्र में 1994-95 की 10.1 प्रतिशत विकास दर की तुलना में 1995-96 में 11.4 प्रतिशत विकास दर दर्ज की गई। लघु उद्योग क्षेत्र में सामान्यत: वृद्धि समूचे औद्योगिक क्षेत्र द्वारा प्राप्त वृद्धि दर से अधिक रही है। तथापि, 1995-96 में लघु उद्योगों की 11.4 प्रतिशत की अनुमानित विकास दर मुश्किल से ही 11.7 प्रतिशत की समग्र औद्योगिक विकास दर के समतुल्य रह सकी।

औद्योगिक रुग्णता

भारतीय रिजर्व बैंक को उपलब्ध सूचना के अनुसार देश में 2,71,206 रुग्ण औद्योगिक एकक थे, जिन पर मार्च 1995 की स्थिति के अनुसार 13,739 करोड़ रुपये का बैंक ऋण बकाया था। यह कुल बैंक ऋण का 6.7 प्रतिशत और उद्योग क्षेत्र को कुल बैंक अग्रिमों का 13.3 प्रतिशत बैठता है। ये अनुपात पिछले दो वर्षों की तुलना में काफी कम थे। जबकि कुल रुग्ण औद्योगिक इकाइयों में लघु औद्योगिक इकाइयों की प्रतिशतता 99.1 थी, उनका रुग्ण औद्योगिक इकाइयों को कुल देय बैंक ऋण केवल 25.8 प्रतिशत था, जिसका ब्यौरा निम्नलिखित तालिका में दिया गया है:

तालिका : 2.25

रुग्ण औद्योगिक उपक्रमों की रूपरेखा

(करोड़ रु.)

श्रेणी	मार्च 1993		मार्च 1994		मार्च 1995	
	एककों की संख्या	बकाया राशि	एककों की संख्या	बकाया राशि	एककों की संख्या	बकाया राशि
रुग्ण लघु	2,38,176	3,443.0	2,56,452	3,680.4	2,68,815	3,547.2
उद्योग एकक		(2.3)		(2.3)		(1.7)
		(4.4)		(4.6)		(3.4)
गैर-लघु उद्योग	1,867	7,901.3	1,909	8,151.5	1,915	8,739.6
		(5.3)		(5.0)		(4.3)
		(10.0)		(10.1)		(8.5)
गैर-लघु उद्योग	657	1,790.1	591	1,863.8	476	1,452.2
कमजोर एकक		(1.2)		(1.2)		(0.7)
		(2.3)		(2.3)		(1.4)
कुल रुग्ण	2,40,700	13,134.4	2,58,952	13,695.7	2,71,206	13,739.0
औद्योगिक		(8.8)		(8.5)		(6.7)
एकक (1 से 3)		(16.7)		(17.0)		(13.3)

नोट : पहले कोष्ठक में दिए गए आंकड़े कुल बैंक ऋण का प्रतिशत अंश दर्शाते हैं और दूसरे कोष्ठक में दिए गए आंकड़े उद्योग को दिए गए कुल बैंक अग्रिमों के प्रतिशत अंश को दर्शाते हैं।

स्रोत : आर्थिक सर्वेक्षण 1996-97 (वित्त मंत्रालय)

औद्योगिक रुग्णता के कारणों में परियोजना मूल्यांकन में कमियां, परियोजना प्रबंधन कमियां जैसे आंतरिक कारक तथा कच्चे माल की कमी, विद्युत संकट, परिवहन तथा वित्तीय अड़चनें, सरकारी नीति में परिवर्तन, उपरि लागत में वृद्धि, इत्यादि जैसे बाहरी कारक सम्मिलित हैं। इस संबंध में बाजार संतृप्तता, उत्पादों का अप्रचलित हो जाना और मांग की कमी जैसी विपणन समस्यायें भी उत्तरदायी हैं।

मई 1987 में बी.आई.एफ.आर. की स्थापना के बाद से 31 दिसम्बर, 1996 तक इसके पास रुग्ण औद्योगिक कम्पनी (विशेष उपबंध) अधिनियम, 1985 के अंतर्गत निजी तथा सरकारी क्षेत्र के उपक्रमों के 1,853 मामले सौंपे गए हैं। इसके द्वारा प्राप्त किए गए 2,692 मामलों में से 406 मामलों को उक्त अधिनियम के प्रावधानों के अंतर्गत कार्यवाही किए जाने योग्य नहीं पाया गया और उन्हें निरस्त कर दिया गया। 404 मामलों में पुनर्वास योजनाएं अनुमोदित/स्वीकृत की गईं जबकि 496 मामलों में कम्पनियों को बंद करने की सिफारिश की गई। पुनर्वास योजनाओं के सफलता पूर्वक चलाए जाने के पश्चात 184 कम्पनियों को "रुग्ण नहीं" करार दिया गया। जहां तक सरकारी उपक्रमों का प्रश्न है, दिसम्बर 1996 तक पंजीकृत किए गए 188 मामलों में से 28 मामलों को कार्यवाही किए जाने योग्य नहीं माना गया, 36 मामलों में पुनर्वास योजनाएं शुरू करने की सिफारिश की गई तथा 24 मामलों के संबंध में कंपनियों को बंद करने की सिफारिश की गयी। पुनर्वास योजनाओं को सफलतापूर्वक चलाए जाने के पश्चात् सरकारी क्षेत्र की 4 कम्पनियों को "रुग्ण नहीं" घोषित किया जा चुका है। दिसंबर 1996 के अंत तक बी.आई.एफ.आर. के पास पंजीकृत मामलों में से प्रभावी ढंग से निपटाये जाने वाले मामलों का अनुपात बढ़कर 80.41 प्रतिशत हो गया है।

औद्योगिक सम्बन्ध

वर्ष में हड़तालों और तालाबन्दी के कारण लगभग 2 करोड़ श्रम दिनों की हानि हो रही है। वस्तुत: औद्योगिक सम्बन्ध कानून ही औद्योगिक विवाद अधिनियम कहलाता है। द्विपक्षीय रामानुजम समिति ने यह परामर्श दिया है कि अधिनियम का शीर्षक ही संघर्ष और विवाद का संकेत देता है, अत: इसका शीर्षक बदलकर "औद्योगिक सम्बन्ध अधिनियम" कर दिया जाना चाहिए। विवाद और मतभेद की बातों और दृष्टिकोण में ही परिवर्तन लाना होगा। वास्तव में यह कार्य और जिम्मेदारी श्रमिकों के साथ-साथ प्रबन्धन दोनों की है। ब्रिटिश शासन के मजदूर संघ कानून ने काफी संख्या में मजदूर संगठनों के अस्तित्व में आने का आधार तैयार कर दिया था। यह कानून मजदूर वर्ग की एकता में अलगाव पैदा करता है जो कि श्रमिकों के भी हित में नहीं है। इस तथ्य को सभी लोग-नियोक्ता और मजदूर वर्ग समान रूप से स्वीकार करते हैं। परन्तु अत्यधिक संख्या में श्रम संघों पर रोक लगाने के प्रयास कुछ वर्षों से विफल हुए हैं। औद्योगिक विवाद अधिनियम के अध्याय 5ख का प्रावधान आपातकाल के दौरान श्रमिकों का संरक्षण और रोजगार सुरक्षा प्रदान करने के उद्देश्य से किया गया था, परन्तु यह आपातकाल के बाद भी काफी लम्बी अवधि से जारी है। नियोक्ता इस अधिनियम के अध्याय 5ख के अंतर्गत निहित उपबंधों को बाधक मानते हैं और उनका कहना है कि बाजार की प्रतिस्पर्धा का सामना करने के लिए जनशक्ति प्रबंधन के मामले में उनमें अपेक्षित लचीलेपन का प्रावधान नहीं है। श्रमिकों का यह कहना है कि इन उपबन्धों को जारी रखे जाने की आवश्यकता है। व्यावसायिक उद्यमी बाजार-प्रतिस्पर्धा के नाम पर जनशक्ति में मनमानी कटौती करने का सहारा ले सकते हैं। साथ ही, अर्थशास्त्रियों के एक वर्ग की यह दृढ़ मान्यता है कि प्रतिबंधात्मक अध्याय 5ख के उपबन्ध दीर्घकाल में अतिरिक्त रोजगार सृजन के अवसर अवरुद्ध कर सकते हैं क्योंकि नियोक्तागण पूंजी प्रधान उद्योगों का विकल्प अपना सकते हैं। बदलते समय के साथ इन बुनियादी मजदूर कानूनों को बदलने के लिए किये गये प्रयास विफल हो गए हैं। क्या हम अपनी उदार अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं के अनुरूप अपने श्रम कानूनों का सामंजस्य स्थापित करने संबंधी मसले का निष्पक्ष रूप से वस्तुपरक विश्लेषण कर सकते हैं।

(चार)

विदेशी व्यापार

अतीत

नब्बे के दशक में विश्व और भारत में महत्वपूर्ण परिवर्तन दृष्टिगोचर हो रहे हैं। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था पुनर्गठित हो रही है और जैसे ही बीसवीं शताब्दी का अन्त होने को आ रहा है इसके बहुत से विशिष्ट दर्शन और विशेषताएं लुप्त हो गई हैं। इस तेजी से बदलते हुए विश्व में, भारत की नीतियों को भी बदलती हुई वास्तविकताओं के अनुरूप ढालना होगा। स्वतंत्रता मिलने के समय से ही भारतीय नीतियों का उद्देश्य आत्मनिर्भरता और आयात प्रतिस्थापना रहा है और इन नीतियों के अनुपालन से व्यापक प्रौद्योगिकीय और विनिर्माण क्षमता स्थापित करने में सहायता मिली है। हम लचीलेपन से नयी स्थिति का सामना करने की स्थिति में हैं ताकि सरकार लोगों को प्रतिष्ठापूर्ण जीवन बिताने के उद्देश्य की प्राप्ति में समर्थ बना सके। तुरंत भुगतान सन्तुलन के संकट को दूर करने के लिए भारत ने 1991 में दीर्घ आर्थिक स्थिरीकरण कार्यक्रम शुरू किया। औद्योगिक, व्यापारिक राजस्व, वित्तीय और अर्थव्यवस्था के आन्तरिक क्षेत्रों सम्बन्धी मुख्य संरचना सुधार कार्य भी इस स्थिरीकरण कार्यक्रम में जोड़ा गया जिसके बारे में सन्दर्भ इस अध्याय में और कहीं दिया गया है।

स्वतंत्रता के पश्चात् भारत ने अन्तर्मुखी आयात प्रतिस्थापना नीति अपनाई जिसमें अधिक पूंजी वाले भारी उद्योगों को लगाने पर अधिक जोर दिया गया। इसमें माल पूंजी क्षेत्र में निवेश को प्राथमिकता प्रदान की गई। अत: 1950 और 1960 में हुए विश्व व्यापार विस्तार का यह लाभ नहीं उठा सका। भारत ने उच्च टैरिफ और अन्य मात्राजन्य नियंत्रणों द्वारा अपने घरेलू उद्योगों को सुरक्षा प्रदान की। इससे आर्थिक प्रणाली में कुछ खामियां पैदा हो गई हैं। बहुत से भारतीय उत्पाद अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में प्रतिस्पर्धा नहीं कर पाये और विश्व व्यापार में भारत का हिस्सा सीमान्त होकर रह गया।

आरम्भिक योजना प्रारूपकारों में निर्यात के बारे में निराशावादी रवैया दृष्टिगोचर हुआ क्योंकि तब यह ठीक ही अनुमान लगाया गया कि जब तक भारतीय उत्पादक वस्तुओं का विविधीकरण नहीं करते तब तक निर्यात की सम्भावनाएं बहुत क्षीण हैं, विशेषरूप से प्राथमिक उत्पादों और पारम्परिक रूप से उत्पादित माल की मांग की विश्व बाजार में कम संभावनाएं थीं। पचास के दशक के उत्तरकाल में जब दूसरी पंचवर्षीय योजना लागू की जा रही थी, जिसमें बड़े पैमाने पर सार्वजनिक क्षेत्र में भारी उद्योगों पर ज्यादा जोर दिया गया था, उस समय यह महसूस किया जाने लगा कि कम से कम रख-रखाव और विकासात्मक आयात की वित्तीय आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए भारत को निर्यात करने की आवश्यकता थी।

चौथी पंचवर्षीय योजना (1969-74) में एक बार फिर निर्यात पर अधिक जोर दिया गया जिसके द्वारा धीरे-धीरे विदेशी सहायता पर निर्भरता को कम करने पर जोर दिया गया जबकि पांचवी योजना (1974-79) में कुछ क्षेत्रों की पहचान की गयी जैसे कि इंजीनियरिंग सामान, सिले-सिलाये कपड़े, चमड़ा उद्योग और मत्स्य उत्पाद पर निर्यात को बढ़ाने के लिए ज्यादा जोर दिया गया। इस प्रकार 1950 की वास्तविक स्थिरता की तुलना में 1960 में निर्यात निष्पादन में औसतन 3 से 4 प्रतिशत तक वृद्धि हुई और 1970 में यह वृद्धि और भी प्रभावी रही जबकि मात्रा के रूप में 6.3 प्रतिशत और मूल्य के रूप में 15.9 प्रतिशत की औसतन वृद्धि दर्ज की गई लेकिन इन तीन दशकों में विश्व के कुल निर्यात

में भारत का हिस्सा 1950 के 1.85 प्रतिशत से गिरकर 1970 में 0.64 प्रतिशत रह गया और 1980 में यह और गिरकर 0.42 प्रतिशत ही रह गया यह वह समय था जब विश्व व्यापार में जोरदार वृद्धि हुई और कई छोटे एशियाई विकासशील देशों ने प्राप्त अवसरों का लाभ उठाया साथ ही लातिन अमरीका की अर्थव्यवस्था के औद्योगिकरण को भी इससे लाभ मिला। विश्व व्यापार में भारत का हिस्सा निम्न प्रकार है:

तालिका 2.26

भारत : विश्व व्यापार में हिस्सा

वर्ष	निर्यात	आयात (प्रतिशत में)	व्यापार
1950	1.85	1.71	1.78
1960	1.03	1.69	1.36
1970	0.64	0.65	0.65
1980	0.42	0.72	0.57
1990	0.52	0.66	0.59
1991	0.50	0.56	0.53
1992	0.53	0.61	0.57
1993	0.58	0.60	0.59
1994	0.60	0.63	0.61

स्रोत : व्यापार और विकास पर संयुक्त राष्ट्र संघ की परिषद की अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और विकास के आंकड़ों की पुस्तिका, 1994, संयुक्त राष्ट्र 1995

1970 में समाप्त हुए तीन दशकों के दौरान सकल घरेलू उत्पादों में निर्यात का हिस्सा 4 से 6 प्रतिशत रहा। वर्ष 1995-96 तक यह 9.9 प्रतिशत तक के स्तर तक गया है।

तालिका 2.27

सकल घरेलू उत्पाद के प्रतिशत के रूप में भारत का निर्यात तथा आयात

वर्ष	निर्यात	आयात
1950 का दशक	6.0	कुछ नहीं
1960 का दशक	4.0	कुछ नहीं
1970 का दशक	6.0	कुछ नहीं
1980 का दशक	6.0	कुछ नहीं
1990-91	6.2	9.4
1991-92	7.3	8.3
1992-93	7.8	9.8
1993-94	8.8	9.7
1994-95*	8.8	10.5
1995-96*	9.9	12.6

*द्रुत आकलन (योजना आयोग)

स्रोत: वर्ष 1995-96 तथा 1996-97 का आर्थिक सर्वेक्षण तथा वार्षिक प्रतिवेदन, 1995-96

भारत की महाद्वीपीय आकार की अर्थव्यवस्था में विकास प्रक्रिया में बाहरी क्षेत्र की भूमिका इतनी कम आंकी गई थी कि इससे पहले कि देश आयात प्रतिस्थापन तथा निर्यात प्रोत्साहन को एक ही सिक्के के दो पहलू समझे, आयोजना के प्रथम अढ़ाई दशकों में निरन्तर सूखे, तेल कीमत संकट तथा भुगतान संतुलन की कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।

अस्सी के दशक के प्रारंभ में, जब भारत ने छठीं पंचवर्षीय योजना (1980-85) प्रारंभ की, जो दूसरे तेल मूल्य वृद्धि के साथ-साथ हुआ, पहले के दशकों के अन्तर्मुखी औद्योगिकीकरण जनित कमजोरियों की कहीं अधिक पहचान थी।

विदेश व्यापार नीति के मुद्दे अस्सी के दशक के आरम्भ में सामने आए और इस विचार ने जोर पकड़ा कि भारत को आयात प्रतिबंधों और पूंजी के आयात के उदारीकरण की अपेक्षा शुल्कों पर अधिक निर्भरता के द्वारा श्रम के अन्तर्राष्ट्रीय विभाजन के लाभों का फायदा उठाना चाहिए।

इस तरह, नियोजित विकास के चौथे दशक में भारत और अधिक खुले व्यापार के शासन की तरफ यह महसूस करते हुए सावधानी से बढ़ा कि आयात स्थानापन्न ने विनिर्माण के विस्तृत क्षेत्र में घरेलू क्षमताओं को सुदृढ़ किया है, लेकिन देश बहुत लम्बे समय तक प्रौद्योगिकी संबंधी बदलाव और उदारीकरण की हवाएं जो विश्व के कई विकासशील क्षेत्रों में चल रही हैं, उन्हें बहुत अधिक समय तक वहीं रोक सकता था।

निम्नलिखित तालिका 1950-91 की अवधि में और 1991-96 के पांच वर्षों की उदारीकरण की अवधि के दौरान आयात निर्यात और व्यापार संतुलन (डालर में) की विस्तृत तस्वीर प्रस्तुत करती है। डालर को आधार मानते हुए विकास दरें मूल्यानुसार हैं और 1990-91 तक पांच वर्ष की अवधि के औसत से संबंधित हैं।

तालिका 2.28

आयात, निर्यात और व्यापार संतुलन का विवरण

(अमरीकी डालर मिलियन में)

वर्ष	निर्यात (पुन: आयात छोड़कर)	आयात	व्यापार संतुलन	(प्रतिशत) "क" पांच वर्ष के दौरान औसत विकास	
				निर्यात	आयात
1950-51	1269	1273	–4	–	–
1955-56	1275	1620	–345	5.2	4.8
1960-61	1346	2353	–1007	1.9	9.3
1965-66	1693	2944	–1251	5.0	7.1
1970-71	2031	2162	–131	2.0	–5.7
1975-76	4665	6084	–1420	17.8	24.6*
1980-81	8486	15869	–7383	13.8	15.8
1985-86	8904	16067	–7162	4.5	6.1
1990-91	18143	24075	–5932	11.6	8.2
नई आर्थिक नीति की पश्च अवधि					
1991-92	17865	19411	–1546	–1.5	–19.4
1992-93	18537	21882	–3345	3.6	12.7
1993-94	22238	23306	–1068	20.0	6.5
1994-95	26331	28654	–2324	18.4	22.9
1995-96	31831	36370	–4539	20.9	26.9

नोट : "क"-पूर्व के पांच वर्षों का औसत *सत्तर के मध्य के दशक के तेल मूल्य वृद्धि को प्रदर्शित करने वाला प्रभाव (1973-74, 1974-75 और 1979-80, 1980-81)

स्रोत: 1995-96 के आर्थिक सर्वेक्षण से संकलित, वित्त मंत्रालय और भारतीय रिजर्व बैंक के वार्षिक प्रतिवेदन 1995-96

आर्थिक सुधार का व्यापारिक पक्ष

जून, 1991 में अर्थव्यवस्था के प्रबन्धन की तुलना में रणनीति में काफी बदलाव लाया गया। भारत की व्यापार नीति को राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं के समक्ष उपस्थित अवसरों और चुनौतियों के परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों के साथ-साथ उदार बनाया गया। भुगतान सन्तुलन की समस्या पर नियंत्रण पाने के लिए भारतीय अर्थव्यवस्था में अल्पावधि उपायों के साथ-साथ प्रमुख ढांचागत सुधार भी किये गये। नई आयात-निर्यात नीति 1992-97 और उसमें अब तक किए गए सुधारों का उद्देश्य:-

(एक) व्यापार के लिए मुक्त वातावरण तैयार करना;

(दो) निर्यात संवर्धन ढांचे को मजबूत बनाना;

(तीन) प्रक्रियाओं के सरलीकरण और उनमें सुधार के द्वारा सभी प्रक्रियात्मक बाधाओं को दूर करना;

(चार) निर्यात उत्पादन में वृद्धि, कार्यकुशलता में सुधार और भारत की प्रतिस्पर्धात्मक क्षमता को और तेज करना;

(पांच) आदान उपलब्धता को सुलभ बनाना; और

(छह) गुणवत्ता और प्रौद्योगिकी उन्नयन पर ध्यान देना।

निर्यात राजसहायता को समाप्त करने तथा आयात लाइसेंस संबंधी प्रतिबन्धों को कम करके रूपए का डालर की तुलना में 22 प्रतिशत अवमूल्यन किया गया था। आरम्भ में लेकिन मार्च, 1993 तक एक दोहरी विनिमय दर प्रणाली लागू की गई थी। इसे एकीकृत कर दिया गया और एक स्वत: पूर्ण विनिमय दर जिसमें विनिमय दर का विनिश्चय बाजार की मांग और आपूर्ति शक्तियों द्वारा किया जाता है, अस्तित्व में आई। विदेशी मुद्रा बाजार का विस्तार किया गया था और अगस्त, 1994 में व्यापार और गैर-व्यापार, चालू खाते, पर रुपए को पूर्णत: परिवर्तनीय बनाया गया था। देश की अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा की क्षमता में सुधार लाने और व्यापार और चालू खातों को ठीक करने के लिए रुपए का अवरोही, समायोजन किया गया था।

1991-92 के बजट के साथ शुरूआत करते हुए सरकार ने आयात शुल्क में चरणबद्ध ढंग से कमी लाने का कार्यक्रम शुरू किया और 1990 में अधिकतम 300 प्रतिशत को कम करके मार्च 1995 तक 50 प्रतिशत किया। इन बदलावों के परिणामस्वरूप आयात-भारित-औसत-शुल्क 1991 में 87 प्रतिशत से घटकर मार्च 1995 में 27 प्रतिशत तक हो गया। शुल्कों के प्रसार में काफी कमी आई और मात्रात्मक प्रतिबंधों में काफी कमी आई। 1991 से शुरू किए गए व्यापार सुधारों ने भारतीय उद्योग के निर्यातरोधी झुकाव को कम करने में सहायता की और इसे घरेलू और अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा दोनों के समक्ष खड़ा किया।

नीतिगत सुधारों से निर्यात में आशाजनक सुधार आया है और वृहत-स्थिरीकरण उपायों के प्रभाव में प्रथम दो वर्षों के दौरान गिरावट के पश्चात् आगामी तीन वर्षों (1993-94 से 1995-96 तक) डालरों में 18-19 प्रतिशत के औसत से वृद्धि हुई। निर्यात का वस्तुवार और देशवार विविधीकरण हुआ है और बढ़ते हुए निर्यात का हिस्सा एशिया के शेष देशों विशेषरूप से पूर्व और दक्षिण एशिया को गया और इन अर्थव्यवस्थाओं के तेज विकास और गतिशीलता को देखते हुए भारत इनके साथ व्यापार और निवेश सहयोग को बढ़ाने का प्रयास कर रहा है।

तालिका 2.29 भारत की विदेश व्यापार में उतार-चढ़ाव को दर्शाती है।

तालिका 2.29

1990 के दशक में भारत के व्यापार की दशा

भागीदारी प्रतिशत

गन्तव्य स्थान	1960-61	1970-71	1980-81	1985-86	1990-91	1994-95	1995-96
निर्यात भागीदारी प्रतिशत							
ओ.ई.सी.डी.	66.1	50.1	46.6	50.8	53.5	58.7	55.7
यूरोपीय संघ	36.2	18.4	21.6	17.7	27.5	26.7	26.5
जर्मनी	3.1	2.1	5.7	4.7	7.8	6.6	6.2
ब्रिटेन	26.9	11.1	5.9	4.8	6.5	6.4	6.3
अमरीका	16.0	13.5	11.1	18.1	14.7	19.1	17.4
जापान	5.5	13.3	8.9	10.7	9.3	7.7	7.0
ओ.पी.ई.सी.	4.1	6.4	11.1	7.7	5.6	9.2	9.7
पूर्व यूरोप	7.0	21.0	22.1	21.1	17.9	3.6	3.8
एशिया	6.9	10.8	13.4	10.6	14.3	20.1	21.3
अफ्रीका	6.3	8.4	5.2	2.7	2.1	2.5	3.4
लैटिन अमरीका	1.6	0.7	0.5	0.2	0.4	1.3	1.1
आयात (भागीदारी प्रतिशत)							
ओ.ई.सी.डी.	78.0	63.8	45.7	53.6	54.0	51.4	52.4
यूरोपीय संघ	37.1	19.6	21.0	26.6	29.4	24.8	26.6
जर्मनी	10.9	6.6	5.5	7.9	8.0	7.6	8.6
ब्रिटेन	19.4	7.8	5.8	6.4	6.7	5.4	5.2
अमरीका	29.2	27.7	12.9	10.5	12.1	10.1	10.5
जापान	5.4	5.1	6.0	9.0	7.5	7.1	6.7
ओ.पी.ई.सी.	4.6	7.7	27.8	17.4	16.3	21.1	20.9
पूर्व यूरोप	3.4	13.5	10.3	11.0	7.6	2.4	3.4
एशिया	5.7	3.3	11.4	11.9	14.0	14.2	14.4
अफ्रीका	5.6	10.4	1.6	3.0	2.2	2.9	2.3
लैटिन अमरीका	0.4	1.0	2.5	2.7	2.3	2.7	1.6

स्रोत : वित्त मंत्रालय-आर्थिक सर्वेक्षण 1996-97

निरंतर निर्यात वृद्धि की आधारभूत अपेक्षाएं उत्पाद की प्रतियोगी कीमत, गुणवत्ता, गन्तव्य पर सुनिश्चित डिलीवरी, मुद्रास्फीति पर दृढ़ पकड़ के साथ विनिमय दर में स्थिरता, कम ब्याज पर ऋण तथा निर्यात गतिविधियों के लिए जो विभिन्न रूप लेती है अन्य प्रोत्साहन है जिससे श्रम प्रधान मदों तथा ग्रामीण क्षेत्रों को लाभ मिलेगा तथा पर्याप्त अवसंरचनात्मक सुविधाएं जैसे कि पत्तन, विद्युत, संचार तथा परिवहन। इन सभी क्षेत्रों में निर्यात को प्रोत्साहन देने तथा उसे सुविधाजनक बनाने के केन्द्र तथा राज्य सरकारों दोनों को सक्रिय रूप से कार्य करना है।

व्यापार की रचना

जबकि भारत की निर्यात वृद्धि तथा विश्व व्यापार की वृद्धि में अन्तर्संबंध है और उस के समझौतों से विकासशील देशों के लिए अपने निर्यात को बढ़ाने के लिए अवसरों में वृद्धि हुई है-भारत के निर्यात वास्केट की रचना कई वर्षों से वही रही है।

तालिका 2.30

निर्यात तथा आयात की रचना–नब्बे का दशक

(प्रतिशत)

निर्यात	1991-92	1992-93	1993-94	1994-95	1995-96
वस्तु ग्रुप					
कृषि तथा संबद्ध उत्पाद (चाय, कपास आदि)	17.9	16.4	18.0	16.1	19.1
अयस्क तथा खनिज	5.2	4.0	4.0	3.8	3.7
निर्मित वस्तुएं	74.6	76.3	74.9	77.5	74.4
चमड़ा वस्तुएं	7.1	6.8	8.0	8.2	6.0
हीरे तथा जवाहरात	15.3	16.5	18.0	17.1	16.6
कपास यार्न, फैब्रिक से बनी वस्तुएं	—	—	6.9	8.5	8.1
सिले सिलाये वस्त्र	12.3	12.9	11.6	12.5	11.6
हस्त शिल्प	4.7	4.6	3.4	3.1	2.6
आयात					
थोक (अधिक मात्रा में आयात)	44.6	44.1	39.2	39.5	39.1
पी. ओ. एल.	27.4	27.0	24.7	20.7	20.8
उर्वरक धातु तथा अन्य भारी मदें	16.7	14.7	13.1	14.8	15.8
गैर थोक आयात	55.4	55.9	60.8	60.5	60.9
पूंजीगत वस्तुएं	21.8	20.7	26.8	26.7	28.0
कीमती पत्थर, रसायन वस्त्र, धागा आदि निर्यात से संबंधित मदें	18.4	19.0	18.8	15.1	14.4
अन्य	15.2	16.2	15.2	18.8	18.5

*डालर में हिसाब लगाया गया

स्रोत : भारतीय रिजर्व बैंक प्रतिवेदन 1993–94 और 1995–96

आठवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान विदेशी व्यापार क्षेत्र का कार्य निष्पादन योजना के निर्यात की मात्रा के 13.6 प्रतिशत प्रति वर्ष बढ़ने के अनुमान के अनुरूप रहा है। प्रथम चार वर्षों में, औसत वार्षिक दर 12.8 प्रतिशत रहा। विश्व निर्यात में भारत का अंश 1992 के 0.52 प्रतिशत से बढ़कर 1995-96 में 0.57 प्रतिशत हो गया। जैसे कि पहले उल्लेख किया जा चुका है, सकल घरेलू उत्पाद के निर्यात का अनुपात 1992-93 के 8.2 प्रतिशत से बेहतर होकर 1995-96 में लगभग 10 प्रतिशत हो गया। परन्तु आयात के मामले में, योजना में अनुमानित वार्षिक 8.4 प्रतिशत के मुकाबले प्रथम तीन वर्षों में इसमें औसतन 34.1 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। तथापि, व्यापार घाटा एवं चालू खाता घाटा योजना में परिकल्पित अनुसार लक्ष्यों के अन्तर्गत ही रहेगा और यह सकल घरेलू उत्पाद का क्रमश: 1.7 प्रतिशत एवं 1.5 प्रतिशत रहेगा।

भारत को व्यापार संबंधी बौद्धिक सम्पदा अधिकारों (टी आर आई पी एस) एवं निवेश उपायों के समनुरूप उरुग्वे दौर के समझौतों में निहित कई बाध्यताओं का निर्वाह करना होगा। यद्यपि भारतीय पेटेन्ट कानून में संशोधन हेतु दस वर्ष की समयावधि उपलब्ध है जिसके अन्तर्गत उत्पाद पेटेन्टों हेतु वर्तमान में कोई प्रावधान नहीं है और उरुग्वे दौर के समझौतों के अन्तर्गत 1 जनवरी, 1995 से उत्पाद पेटेन्ट के आवेदन के लिए एक तंत्र स्थापित करना होगा। अमरीका ने यह मामला विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यू टी ओ) के विवाद निपटारा निकाय को सौंप दिया। भारत पर भी आयात प्रतिबंधों को हटाने के लिए दबाव पड़ रहा है, जिन्हें इसके सुधरे हुए भुगतान सन्तुलन को देखते हुए भुगतान सन्तुलन कारणों से बनाये रखा जाता है।

भारत विस्तृत क्षेत्र में लाइसेंसिग नियंत्रण हटाने के बावजूद अपने आयात शासन को और उदारीकृत करने के लिए प्रतिबद्ध है। फिर भी यह चिन्ता है कि क्या विश्व के विकसित देश ऊरुग्वे दौर के समझौतों के तहत अपने हिस्से की बाध्यताओं को पूरी तरह क्रियान्वित करेंगे।

भारत को मजबूत अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्द्धी बनने में अभी काफी समय लगेगा जैसाकि इस समय भारत व्यावसायिक सामान के प्रमुख निर्यातकों में 32वें स्थान पर है जोकि पूर्व और दक्षिण पूर्व एशिया में कई देशों के बहुत नीचे है जैसाकि तालिका 2.31 में दिया गया है।

तालिका 2.31

भारत और चुनी हुई एशियाई अर्थव्यवस्थाएं–एक तुलना
1994

(अमरीकी डालर बिलियन और प्रतिशत)

देश	निर्यात बिलियन डालर	विश्व में हिस्सा %	आयात बिलियन डालर	विश्व में हिस्सा %	निर्यात में स्थान
चीन	121.0	2.9	116.0	2.7	11
सिंगापुर*	96.8	2.3	102.7	2.4	12
दक्षिण कोरिया	96.0	2.3	102.7	2.4	13
ताईवान	92.9	2.2	85.5	2.0	14
मलेशिया	58.8	1.4	59.6	1.4	19
थाईलैंड	45.3	1.1	54.5	1.3	22
इंडोनेशिया	40.1	1.0	32.0	0.7	26
भारत	25.1	0.6	26.8	0.6	32

*38.5 बिलियन डालर का पुन: निर्यात सम्मिलित है।

स्रोत : ट्रेड्स एंड स्टैटिस्टिक्स, इंटरनेशनल ट्रेड-1995 डब्ल्यू.टी.ओ.

एक मजबूत औद्योगिक आधार तैयार करने और उच्च तकनीकी जनशक्ति के विश्व में तीसरी सबसे बड़ी शक्ति-धारण करने के बावजूद भारत को अपने विकास का मार्ग खोजने में व्यपगत समय की प्रतिपूर्ति करनी पड़ी। जिसके कारण देश अन्तर्राष्ट्रीय स्पर्धा में काफी पीछे रह गया था।

भविष्य

विदेशी व्यापार क्षेत्र में उदारीकरण तथा गत दो-तीन वर्षों में निर्यात और आयात में डालर के रूप में 20 प्रतिशत से अधिक की निरंतर वृद्धि के फलस्वरूप, भारत के लिए एक ओर विश्व निर्यात में अपना हिस्सा बढ़ाने तथा दूसरी ओर अनेक औद्योगिक आदानों और अत्यधिक उपभोग की अत्यंत महत्वपूर्ण वस्तुओं के लिए विकसित बाजार प्रदान के अवसर अधिक हैं। आगामी कुछ वर्षों में सकल घरेलू उत्पाद में 6-7 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि तथा विदेशी व्यापार में 20 प्रतिशत से अधिक की वार्षिक वृद्धि से, विदेशी व्यापार का हिस्सा सकल घरेलू उत्पाद के अनुपात में लगातार बढ़ता जायेगा तथा यह भारतीय अर्थव्यवस्था में उदारीकरण का साक्ष्य है। निर्यातोन्मुखी नीतियों को अंगीकार करने के फलस्वरूप तथा साथ ही भारतीय व्यापारी समुदाय, जो पहले की अपेक्षा अब विश्व बाजार में अधिक रूचि ले रहा है, के दृष्टिकोण में परिवर्तन से इस शताब्दी के अंत तक वर्तमान मूल्यों के आधार पर निर्यात 75-80 बिलियन अमरीकी डालर तक पहुंचने की सम्भावना है। अनुकूल नीतियां, जिनमें अत्याधुनिक मशीनरी और अन्य उत्पादन आदानों के आयात की अनुमति, औद्योगिक प्रौद्योगिकियों तक पहुंच तथा उत्पादन के आधारभूत ढांचे को मजबूत करने हेतु प्रत्यक्ष विदेशी निवेशों का प्रावधान है, से आने वाले वर्षों में इन लक्ष्यों को प्राप्त करने में सहायता मिलेगी। उच्चतर प्रतिव्यक्ति उपभोग स्तरों के साथ भारत के प्रमुख बाजार के रूप में उभरने से दक्षिण और मध्य एशिया के पड़ोसी देशों तथा अफ्रीका में भी इसका अनुकूल प्रभाव पड़ेगा।

(पाँच)

विषमताएं

आय असमानता की समस्या

लक्षित गरीबी उन्मूलन योजनाओं तथा उपायों के बावजूद, भारत अभी तक आय वितरण की विषमताओं को कम करने में सफल नहीं हुआ है। जनसंख्या का 30 प्रतिशत सर्वाधिक धनाढय वर्ग ग्रामीण क्षेत्रों में निजी उपभोग व्यय का 52 प्रतिशत खर्च करता है तथा शहरी क्षेत्रों में 54 प्रतिशत खर्च करता है। जनसंख्या के 30 प्रतिशत सर्वाधिक निर्धन वर्ग के हिस्से में ग्रामीण क्षेत्रों में कुल उपभोग व्यय केवल 15 प्रतिशत और शहरी क्षेत्रों में 14 प्रतिशत बैठता है जो उनके अनुपात के हिसाब से अत्यधिक कम है।

बचतों और निवेशों की बढ़ी हुई राशि के परिणाम-स्वरूप भारत का सकल राष्ट्रीय उत्पाद जो 1950-51 में 8,938 करोड़ रु. था, बढ़कर 1990-91 में 470269 करोड़ रु. हो गया। जनसंख्या के निम्नतम 20 प्रतिशत को राष्ट्रीय आय का केवल 8.7 प्रतिशत मिला जबकि इसके उच्चतम 20 प्रतिशत को 42.6 प्रतिशत प्राप्त हुआ।

तालिका 2.32

ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों में वर्तमान दरों पर प्रतिव्यक्ति मासिक औसत व्यय

वर्ष/चक्र सर्वेक्षण का चक्र	ग्रामीण क्षेत्र		शहरी क्षेत्र	
	अधिकतम दशमक	न्यूनतम दशमक	अधिकतम दशमक	न्यूनतम दशमक
1983 (अड़तीसवां)	276.65	42.64	455.06	57.45
1986-87 (बयालीसवां)	347.96	54.38	481.24	74.68
1987-88 (तैंतालीसवां)	400.06	63.28	721.33	85.04
1988-89	426.82	71.58	734.15	91.90

स्रोत : लोक सभा का दिनांक 4.12.1991 का अतारांकित प्रश्न संख्या 2112

तालिका 2.33

आय का विवरण और उपभोग

देश	सर्वेक्षण वर्ष	आय और उपभोग की अंश प्रतिशतता			
		न्यूनतम 10%	न्यूनतम 20%	अधिकतम 20%	अधिकतम 10%
नेपाल	1995-96	3.2	7.6	44.8	29.3
बंगलादेश	1992	4.1	9.4	37.9	23.7
भारत	**1992**	**3.7**	**8.5**	**42.6**	**28.4**
पाकिस्तान	1991	3.4	8.4	39.7	25.2
चीन	1995	2.2	5.5	47.5	30.9
श्रीलंका	1990	3.8	8.9	39.3	25.2
इंडोनेशिया	1993	3.9	8.7	40.7	25.6
ब्राजील	1989	0.7	2.1	67.5	51.3
मलेशिया	1989	1.9	4.6	53.7	37.9
आस्ट्रेलिया	1985	–	4.4	42.2	25.8
जापान	1979	–	8.7	37.5	22.4
इंग्लैंड	1988	–	4.6	44.3	27.8
अमरीका	1985	–	4.7	41.9	25.0

स्रोत : विश्व विकास रिपोर्ट 1997 (विश्व बैंक)

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर आय की असमानता में बढ़ते अन्तर को दर्शाने वाले आंकड़ों से पता चलता है कि भारत में भी श्रीलंका, इंडोनेशिया और जापान के भांति ही असमानतायें विद्यमान हैं और इसमें चीन, ब्राजील और अन्य विकसित देशों की तुलना में कम वृद्धि हुई है। जहां निम्न आय वर्ग की आबादी कुल जनसंख्या की 20 प्रतिशत है।

विगत काल के अनुभवों से यह पता चलता है कि राष्ट्रीय आय में वृद्धि अपने आप ही जनसंख्या के सभी वर्गों तक नहीं पहुंच पाती है। इसका एक कारण तो यह है कि बाजार की सामान्य परिस्थितियों में पूर्वत: अपेक्षाकृत अधिक सम्पन्न लोगों को विकास में अपना बेहतर योगदान कर पाते हैं और उन्हें ही विकास से लाभान्वित होने के बेहतर अवसर मिलते हैं। तीव्र गति से होने वाले विकास के लाभ निम्न आय वर्गों को सीमित मात्रा में ही प्राप्त हो पाते न ही आय के समान वितरण के प्रयासों से ही तीव्र गति से विकास संभव हो पाता है। पुनर्वितरण संबंधी समस्त नियमों, नीतियों, कार्यक्रमों और आय की असमानता में कमी लाने के कार्यक्रमों की सफलता मुख्यतया लोगों की शिक्षा के स्तर, जागरूकता तथा उनके संगठन पर निर्भर करती है।

क्षेत्रीय असंतुलन*

1980 के दशक में राज्यों की विकास दर में बहुत अन्तर रहा। आन्ध्र प्रदेश, गुजरात, हरियाणा, महाराष्ट्र और पंजाब में प्रतिव्यक्ति आय में अपेक्षाकृत अधिक वृद्धि हुई जबकि अन्य अधिक जनसंख्या वाले राज्यों जैसे बिहार, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल में प्रति व्यक्ति आय राष्ट्रीय औसत प्रति व्यक्ति आय से भी कम रही। प्राथमिक आकड़े यह दर्शाते हैं 1991-92 से इस अन्तर को यदि बढ़ने से रोका नहीं जा सकता था, तो कम से कम यथावत तो रखा जा सकता था। यद्यपि विभिन्न राज्यों के संवृद्धि की दृष्टि से कार्यनिष्पादन संबंधी आंकड़े काफी समय बाद ही उपलब्ध हो पाते हैं, किंतु नये निवेशों के राज्य-वार ब्यौरे से यह पता चलता है कि वर्ष 1991 से नये निवेशों का 60 प्रतिशत निवेश केवल चार राज्यों अर्थात महाराष्ट्र, गुजरात, तमिलनाडु और उत्तर प्रदेश में ही किया गया है जिनकी आबादी देश की आबादी का 37 प्रतिशत ठहरती है। प्रकट तौर पर इसका कारण यही नजर आता है कि अन्य राज्यों की अपेक्षा इन राज्यों में विगत वर्षों के दौरान बेहतर बुनियादी सुविधायें जुटाई गई हैं, और इसके साथ ही इन राज्यों में निवेशकर्ताओं को अनुकूल और सौहार्दपूर्ण वातावरण उपलब्ध कराया जाता रहा है।

मानव विकास की स्थिति में एक राज्य से दूसरे राज्य में बहुत अंतर है। हाल ही में नेशनल काउंसिल फार एप्लाइड इक्नामिक रिसर्च (एन.सी.ए.ई.आर.), यू.एन.डी.पी. द्वारा वित्त पोषित मानव विकास सूचक सर्वेक्षण द्वारा इस बात का पता चला है और इसको इस्लामाबाद में मानव विकास केन्द्र के प्रतिवेदन "दक्षिण एशिया में मानव विकास-1977" में उद्धृत किया गया है। यह सर्वेक्षण भारत के विभिन्न राज्यों में व्याप्त मानव विकास से संबंधित विषमताओं को उजागर करता है। उदाहरण के तौर पर पंजाब में प्रति व्यक्ति आय पश्चिम बंगाल में प्रतिव्यक्ति आय से दो गुनी है। उड़ीसा में 55% आबादी अत्यंत गरीबी की रेखा से नीचे रहती है जबकि हरियाणा में यह केवल 27% प्रतिशत है। भारत में व्यस्क साक्षरता दर केरल में 90 प्रतिशत है तो राजस्थान में 41 प्रतिशत है।

एच.डी.सी. के द्वारा भारत के 15 राज्यों के लिए मानव विकास स्तर पर आधारित मानव विकास स्तर के अलग-अलग

*इस भाग में मानव संसाधन विकास में असमानता के कारकों और उसके संचयी प्रभाव स्वरूप उत्पन्न क्षेत्रीय असंतुलन का जो उल्लेख किया गया है, उस पर मानव संसाधन विकास और बुनियादी सुविधायें नामक अध्याय में अधिक विस्तृत रूप में विचार किया गया है।

विश्लेषण के अनुसार भारत में सर्वाधिक एच.डी.आई. (0-597) केरल में है जबकि मध्य प्रदेश में न्यूनतम (0.341) है। एच.डी.आई. के हरेक पहलू में (आयु शिक्षा या आय) में व्यापक विषमताएं हैं।

निम्नलिखित तालिका में भारत के विभिन्न राज्यों में मानव संसाधन विकास के सूचकांक दर्शाए गए हैं:-

तालिका 2.34

भारत के विभिन्न राज्यों के मानव संसाधन विकास सूचकांक

राज्य	संभावित आयु 1992	प्रौढ़ साक्षरता दर (प्रतिशत) 1991	प्रति व्यक्ति वास्तविक सकल घरेलू उत्पाद (1993 पीपीपीएस) 1992	मानव विकास सूचकांक मूल्य	मानव विकास सूचकांक स्तर
केरल	72	86	1,017	0.597	1
पंजाब	66	52	2,124	0.516	2
महाराष्ट्र	64	68	1,802	0.518	3
हरियाणा	68	49	1,915	0.476	4
गुजरात	60	57	1,416	0.458	5
पं. बंगाल	61	57	1,186	0.452	6
हिमाचल प्रदेश	64	51	1,180	0.447	7
कर्नाटक	62	52	1,224	0.442	8
तमिलनाडु	62	51	1,119	0.432	9
आन्ध्र प्रदेश	68	40	1,227	0.393	10
असम	54	49	932	0.374	11
उड़ीसा	55	46	896	0.368	12
बिहार	59	39	640	0.3504	13
राजस्थान	58	36	961	0.3503	14
उत्तर प्रदेश	56	38	884	0.343	15
मध्य प्रदेश	51	41	898	0.341	16

टिप्पणी : (क) चूंकि सम्मिश्रित नामांकन अनुपात पर अलग: अलग आंकड़े उपलब्ध नहीं है इसलिए मानव विकास सूचकांक का शिक्षा सूचकांक संघटक में सम्पूर्ण बल प्रौढ़ साक्षरता सूचकांक पर डाला गया है। केवल ग्रामीण भारत के साथ आकड़ों की तुलना में (एन.सी.ए.ई.आर. 1996)—जिसके संबंध में सम्मिश्रित नामांकन अनुपात उपलब्ध है—इस लोप के कारण होने वाले मानव विकास सूचकांक के मूल्य और स्तर में व्याप्त भिन्नता को दर्शाता है जो कि न्यूनतम है।

(ख) पी.पी.पी.एस, 1993 में वास्तविक प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद को गणना क्षेत्रीय प्रति व्यक्ति आय को राष्ट्रीय प्रति व्यक्ति आय से भारत के प्रति व्यक्ति वास्तविक सकल घरेलू उत्पाद, जो कि 1,240 (पी पी पी एस) में ए.एन.डी.पी. की 1996 की रिपोर्ट में अभिलिखित है, से गुणा करके संगणना की जाती है।

स्रोत : ह्यूमेन डिवलपमेन्ट ऑफ साउथ एशिया, 1997

भारत जैसे विकासशील देश में आर्थिक विकास में आधारभूत संरचना के महत्व को समझा नहीं जा सकता है। भारतीय अर्थव्यवस्था निगरानी केन्द्र (सी.एम.आई.ई.) ने भारत के विभिन्न राज्यों के बीच व्याप्त असमानता को दर्शाने हेतु राज्यों के लिए आधारभूत संरचना सूचकांक तैयार किये हैं। सी.एम.आई.ई. ने ऊर्जा, परिवहन, संचार, सिंचाई और वित्त जैसी कतिपय आधारभूत सुविधाओं पर विशेष रूप से ध्यान केन्द्रित किया है। अर्थात ऊर्जा, परिवहन, संचार, सिंचाई और वित्त। शिक्षा और स्वास्थ्य को भी शामिल किया गया है क्योंकि इन्हें सामाजिक आधारभूत सुविधाएं माना जाता है।

प्रत्येक मुख्य क्षेत्र में प्रयोग किए गए सूचक निम्नलिखित सूची में दिए गए हैं:—

- प्रति व्यक्ति बिजली और पेट्रोलियम खपत
- विद्युतीकृत गांव
- क्षेत्र का प्रति 000 वर्ग कि.मी. रेलवे रूट लम्बाई
- क्षेत्र की प्रति 000 वर्ग कि.मी. पक्की सड़कें
- क्षेत्र की प्रति 000 वर्ग कि.मी. कच्ची सड़कें
- प्रमुख पत्तनों की हैंडलिंग क्षमता
- कुल फसल वाले क्षेत्र के प्रतिशत के रूप में कुल सिंचित क्षेत्र
- प्रति लाख जनसंख्या के लिए बैंक शाखाएं
- प्रति लाख जनसंख्या के लिए डाक घर
- प्रति 100 लोगों के लिए टेलीफोन लाइन
- प्रति लाख जनसंख्या के लिए प्रारंभिक स्कूल
- प्रति लाख जनसंख्या के लिए अस्पताल में बिस्तर
- प्रति लाख जनसंख्या के लिए प्रारंभिक स्वास्थ्य केन्द्र

तालिका 2.35 में भारत के विभिन्न राज्यों में आधारभूत सुविधाओं के विकास का तुलनात्मक चित्र दिखाया गया है।

तालिका 2.35

संबंध आधारभूत विकास सूचकांक : 1980–81 से 1993–94

राज्य	1980-81	1981-82	1983-84	1984-85	1985-86	1986-87	1987-88	1988-89	1989-90	1990-91	1991-92	1992-93	1993-94
आन्ध्र प्रदेश	98.1	97.8	100.1	98.9	100.4	97.9	95.9	98.7	98.9	97.0	96.8	95.9	96.1
असम	77.7	77.3	77.0	79.2	80.3	78.8	79.3	79.6	79.6	84.0	81.7	80.4	78.9
बिहार	83.5	85.1	84.5	84.8	84.2	83.3	84.0	84.1	83.1	79.7	81.7	83.4	81.1
गुजरात	123.0	122.2	126.5	126.5	124.8	120.3	119.3	117.7	116.8	122.0	122.9	122.9	122.4
हरियाणा	145.5	148.0	147.0	143.1	143.1	144.0	152.0	136.0	141.9	139.7	143.0	140.1	141.3
हिमाचल प्रदेश	83.5	87.3	91.7	90.7	93.4	90.9	93.5	96.0	107.4	95.9	97.1	97.7	98.8
जम्मू और कश्मीर	88.7	89.9	89.5	88.4	88.8	87.2	88.9	87.7	86.6	83.7	79.2	83.2	84.0
कर्नाटक	94.8	95.3	97.2	97.9	97.5	96.3	94.5	98.4	95.2	96.4	96.5	96.1	96.9
केरल	158.1	156.2	150.3	150.2	149.2	148.9	150.8	154.6	153.2	157.4	158.0	153.2	157.1
मध्य प्रदेश	62.1	63.5	67.6	67.8	68.8	68.9	68.6	69.7	69.6	71.7	71.5	74.0	75.3
महाराष्ट्र	120.1	117.3	118.9	116.6	116.8	112.3	111.9	112.0	111.0	111.5	109.6	107.1	107.0
उड़ीसा	81.5	86.1	84.3	86.1	87.8	87.6	90.0	90.2	93.3	93.5	95.0	97.3	97.0
पंजाब	207.3	207.0	210.6	204.6	205.8	215.2	213.3	199.7	195.8	192.6	193.4	191.6	191.4
राजस्थान	74.4	73.6	75.8	77.2	77.4	77.6	79.1	78.9	81.1	79.2	82.6	81.2	83.0
तमिलनाडु	158.6	155.4	148.7	148.7	148.5	145.0	143.6	149.1	147.4	145.5	145.9	143.3	144.0
उत्तर प्रदेश	97.7	99.3	101.3	101.2	103.0	103.0	104.3	102.8	103.9	103.6	102.3	103.7	103.3
पश्चिम बंगाल	110.6	109.6	109.8	108.6	100.5	99.2	97.7	97.3	96.3	93.8	92.1	94.4	94.2
अखिल भारत	100.0	100.0	100.0	100.0	100.0	100.0	100.0	100.0	100.0	100.0	100.0	100.0	100.0

स्रोत : राज्यों की रूपरेखा, मार्च 1997 (सी.एम.आई.ई., मुम्बई)

विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं ने क्षेत्रीय असंतुलनों को दूर किए जाने की आवश्यकता पर जोर दिया है। इस संदर्भ में छठी पंचवर्षीय योजना दस्तावेज में यह कहा गया:

> इस योजना का महत्वपूर्ण लक्ष्य विकास की दौड़ में क्षेत्रीय असमानताओं में कमी लाना और प्रौद्योगिकीय लाभों के प्रसार को सभी क्षेत्रों में पहुंचना है। इस बात को सामान्य रूप से स्वीकार किया जाना चाहिए कि इस लक्ष्य को पूरा करने के लिए पिछड़े क्षेत्रों में विकास प्रक्रिया में सुधार लाना अपेक्षित है न कि उन क्षेत्रों की वृद्धि को कम करना जहां कुछ गतिशीलता आई है।

क्या आठ पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से हम क्षेत्रीय असमानताओं को दूर करने में सफल रहे हैं। इसकी अपेक्षा प्रमुख राज्य जैसे बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान और उत्तर प्रदेश सामाजिक आर्थिक विकास में पिछड़े हुए है।

निम्नलिखित तालिका क्षेत्रीय असमानताओं के साथ भारतीय राज्यों के विभिन्न सामाजिक-आर्थिक रूपरेखा को दर्शाती है।

तालिका 2.36 में आधारभूत अवसंरचनात्मक सुविधाओं की उपलब्धता के कुछ मौलिक आवश्यक संकेतकों का विस्तृत ब्यौरा उपलब्ध कराया गया है।

तालिका 2.36

आधारभूत अवसंरचनात्मक सुविधाओं की उपलब्धता के संकेतांक

राज्य का नाम	क्षेत्र (0.00 वर्ग कि.मी.)	जनसंख्या वृद्धिदर 1981–91 (%)	प्रतिव्यक्ति एनएसडीपी (1994–95) (रु.)	रेलमार्ग (प्रति 000 वर्ग कि.मी.)	सड़कें प्रति 1000 वर्ग कि.मी.
आन्ध्र प्रदेश	275.05	2.19	7155	18.40	602.5
असम	78.44	1.20	5999	29.80	860.0
बिहार	173.88	2.14	3816	30.41	504.7
गुजरात	196.02	1.94	10578	26.94	550.2
हरियाणा	44.21	2.45	12158	33.91	584.6
हिमाचल प्रदेश	55.67	1.91	7784	4.78	518.5
जम्मू कश्मीर	222.24	2.57	4244	0.40	56.4
कर्नाटक	191.79	1.93	8082	16.05	728.1
केरल	38.86	1.35	6983	27.07	3550.5
मध्य प्रदेश	443.45	2.41	5845	13.50	468.7
महाराष्ट्र	307.71	2.32	13112	17.74	731.3
उड़ीसा	155.71	1.85	5157	12.86	1371.0
पंजाब	50.36	1.91	14188	42.08	1130.7
राजस्थान	342.24	2.53	5200	16.97	372.4
तमिलनाडु	130.06	1.44	8941	30.91	1559.3
उत्तर प्रदेश	294.41	2.30	5331	30.38	716.6
पश्चिम बंगाल	88.75	2.23	6877	43.07	692.8
अखिल भारत	3287.3	2.13	9285	19.00	662.6

राज्य का नाम	संचार प्रति 100 व्यक्ति लाइनें	डाकघर प्रति 10 वर्ग कि.मी.	निवल सिंचित क्षेत्र निवल बुवाई क्षेत्र के लिए (1992–93)	प्रति व्यक्ति खपत (1994) विद्युत (कि.वा.)	प्रति व्यक्ति खपत (1994) पेट्रोलियम उत्पाद (मीटर)
आन्ध्र प्रदेश	0.73	0.59	38.5	309	56.4
असम	0.31	0.49	21.1	69	37.8
बिहार	0.22	0.68	46.7	100	31.5
गुजरात	1.53	0.45	27.6	520	139.2
हरियाणा	1.13	0.58	75.6	453	116.8
हिमाचल प्रदेश	1.09	0.49	17.3	217	44.6
जम्मू कश्मीर	0.51	0.07	42.6	195	49.3
कर्नाटक	1.08	0.50	20.3	301	61.2
केरल	1.44	1.30	14.9	207	72.6
मध्य प्रदेश	0.65	0.25	24.4	264	39.7
महाराष्ट्र	2.00	0.40	13.7	443	123.6
उड़ीसा	0.35	0.52	32.8	180	38.4
पंजाब	1.56	0.76	93.3	690	152.1
राजस्थान	0.65	0.30	26.4	241	59.8
तमिलनाडु	1.13	0.93	46.4	364	90.0
उत्तर प्रदेश	0.37	0.68	65.6	161	43.8
पश्चिम बंगाल	0.60	0.95	34.8	156	46.8
अखिल भारत	0.90	0.47	35.1	270	68.8

सी.ए.आर.जी. : विकास की संचयी औसत दर; एन.एस.डी.पी. : निवल राज्य घरेलू उत्पाद

स्रोत : राज्यों की समीक्षा से संकलित, मार्च, 1997 (सी.एम.आई.ई., मुम्बई)

यद्यपि आठवें दशक में कम विकसित राज्यों में सुधार के कुछ चिह्न दिखाई दिए परन्तु क्षेत्रीय असमानताएं जारी है। विकास और पुनर्वितरण न्याय की समस्याओं से प्रभावी ढंग से निपटाने के लिए देश के पिछड़े क्षेत्रों में संगठनात्मक क्षमताओं और विकास संस्थाओं और विकास कार्यक्रमों के लिए वितरण प्रणाली को सुदृढ़ करना होगा।

क्षेत्रीय विकास में बड़ी असमानताओं को दूर करने के लिए क्षेत्रों के बीच संसाधनों का प्रवाह अपेक्षित होता है। इस समय योजना विशेष क्षेत्र कार्यक्रमों जैसे पर्वतीय क्षेत्र योजना, जनजातीय क्षेत्र योजना और पिछड़े क्षेत्रों के लिए अन्य योजनाओं का प्रावधान करती है। यद्यपि इन कार्यक्रमों का लक्ष्य बुनियादी ढांचे का निर्माण करना है तथापि जहां विकास नहीं हो पाया, ऐसा क्षेत्र काफी है और देश की आर्थिक गतिविधि की मुख्य धारा में ऐसे क्षेत्रों को लाने के लिए अत्यधिक प्रयास किए जाने अपेक्षित है।

3

आधारभूत ढांचा

भारतीय अर्थव्यवस्था में अवसंरचना की स्थिति संतोषजनक नहीं रही है। अब तक अवसंरचना क्षेत्र-ऊर्जा, परिवहन और दूरसंचार में सरकारी क्षेत्र की प्रमुख भूमिका रही है।

इस अवसंरचना परिदृश्य में मांग-आपूर्ति में अत्यधिक असंतुलन है तथा मांग से अधिक सुविधाओं की आपूर्ति है। यह स्थिति हमारे आर्थिक विकास के जारी रहने पर ही प्रश्न चिह्न लगा देती है। विद्यमान क्षमताओं के उपयोग को अधिक से अधिक करना होगा। आर्थिक सुधारों की प्रक्रिया के तहत अवसंरचना क्षेत्र को निजी क्षेत्र के लिए खोलते समय गहन और विश्वसनीय अनुवर्ती कार्यवाही की आवश्यकता है ताकि गैर-सरकारी पूंजी का प्रवाह वास्तव में पर्याप्त हो और इसके साथ ही यह सरकारी बजट पर दबाव को कम करे। अवसंरचना सेवाओं के लिए वाणिज्यिक तौर पर व्यावहारिक मूल्य नीति हेतु दृढ़ राजनैतिक वचनबद्धता और राष्ट्रीय आम सहमति की आवश्यकता होगी। प्रथम पांच वर्षों की योजना के परिप्रेक्ष्य में, 1994 में कुल अवसंरचना पूंजी निवेश 450,000 करोड़ रुपये और अगले पांच वर्षों के लिए 750,000 करोड़ रुपए आंके गए थे।

कोयला : देश में वाणिज्यिक ऊर्जा के कुल प्राथमिक स्रोतों का लगभग 85 प्रतिशत और कुल ऊर्जा खपत का 67 प्रतिशत कोयले से प्राप्त होता है, लेकिन इसकी उत्पादकता और गुणवत्ता कम है। बढ़ती हुई उत्पादन लागत को नियंत्रित मूल्यों में वृद्धि करके पूरा किया जाता है। निजी क्षेत्र की भागीदारी विद्युत उत्पादन और लौह तथा इस्पात उद्योग के साथ रक्षित खानों तक ही सीमित है। यह क्षेत्र एकाधिकार के परिवेश के कारण अकुशलता का सामना कर रहा है।

विद्युत : यद्यपि 1996 में विद्युत उत्पादन की अधिष्ठापित क्षमता 85,000 मेगावाट थी, परन्तु संसाधनों की कमी, प्रक्रिया संबंधी विलंब और अन्तर्राज्यीय विवादों के कारण नई उत्पादन क्षमता के सृजन में कमी आई है। 78 प्रतिशत जल विद्युत क्षमता का अभी तक उपयोग नहीं हुआ है। राज्य विद्युत बोर्डों की ताप संयंत्र भार क्षमता केवल 58 प्रतिशत है तथा पारेषण और वितरण हानि 21 प्रतिशत है, विद्युत आपूर्ति प्रभार उत्पादन लागत से बहुत कम है और इसमें 1.23 रुपये प्रति किलोवाट का अन्तर है। 17 राज्य विद्युत बोर्डों को कुल 18,000 करोड़ रुपये (मार्च, 1996) का घाटा हुआ है। इस क्षेत्र में आमूलचूल संरचनात्मक परिवर्तनों के बिना सन् 2000 ई. तक विद्युत की वर्तमान मांग और आपूर्ति के बीच अन्तर अधिकतम मांग के समय 25 प्रतिशत हो जाने की संभावना है।

पेट्रोलियम : देश में कच्चे तेल का उत्पादन 30 से 35 मिलियन टन के बीच रहा है और इसमें कोई वृद्धि नहीं हो रही है। तेल के आयात पर निर्भर होने के कारण देश को अन्तर्राष्ट्रीय तेल मूल्य में होने वाले अनिश्चित उतार-चढ़ाव को झेलना पड़ता है। तेल पूल खाते का प्रचालन, जिसके अन्तर्गत विनियंत्रित मूल्यों और राजसहायता की व्यवस्था के माध्यम से समुचित स्थिर मूल्यों पर उपभोक्ताओं को पेट्रोलियम उत्पादों की आपूर्ति की जानी अपेक्षित होती है, के कारण तेल कम्पनियों की बकाया देनदारी 5,700 करोड़ (मार्च, 1996) हो गई है। यदि तेल की खोज के लिये नए प्रयासों को तेज नहीं किया जाता और तेल पूल व्यवस्था को तर्कसंगत नहीं बनाया गया, तो इस शताब्दी के अंत तक आयात पर निर्भरता बढ़कर 70% तक हो सकती है।

रेलवे : स्वतंत्रता के पश्चात् रेलवे ने उल्लेखनीय विकास किया है। डीजलीकरण और बिजली कर्षण की दिशा में महत्वपूर्ण प्रगति हुई है। सेवाओं के कम्प्यूटरीकरण की दिशा में भी उल्लेखनीय प्रगति हुई है। परन्तु माल भाड़े में हिस्सा कम होते जाने के कारण और अपने प्रचालनों में बड़े पैमाने पर दोहरी रियायतें प्रदान करने और माल भाड़े की प्रचलित दरों से कम दरों पर जन उपभोग की वस्तुओं का परिवहन करने और योजना आवंटनों में कटौती किए जाने के कारण रेलवे को आंतरिक संसाधनों की कमी का सामना करना पड़ रहा है।

सड़क परिवहन : सड़क परिवहन, माल ढुलाई और यात्री परिवहन के क्षेत्र में प्रमुख भूमिका निभा रहा है। सड़क परिवहन द्वारा माल ढुलाई और यात्री परिवहन में क्रमशः 60% और 80% योगदान किया जा रहा है। परिवहन सुविधाओं की मांग और

इनकी आपूर्ति के बीच गम्भीर असंतुलन है। अपर्याप्त सड़क नेटवर्क परिवहन लागत को प्रभावित करता है और भारतीय अर्थव्यवस्था की अंतर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धात्मक क्षमता को क्षीण करता है। कि 2005-6 ई० तक इस क्षेत्र के विकास के लिए अनुमानत: 68,000 करोड़ रुपए की धनराशि अपेक्षित होगी।

नागर विमानन : अपने आधारभूत संरचनाओं तथा क्षमताओं के फलस्वरूप नागर विमानन का भी विस्तार हुआ है तथा एक बड़े-बेड़े के रूप में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका है। लेकिन, क्षमता के उपयोग में इस क्षेत्र का कार्य-निष्पादन खराब रहा है। एअर-इंडिया के कारोबार में गिरावट आ रही है तथा इसके बाजार मूल्य में 22 प्रतिशत की गिरावट आ गयी है। वर्ष 1995-96 में इसे 272 करोड़ रुपए की हानि हुई तथा उसी वर्ष इसे कुल 1000 करोड़ रुपए का घाटा हुआ है।

जहाजरानी : विगत दस वर्षों में विदेशी व्यापार के क्षेत्र में भारतीय जहाजरानी निगम ने कारोबार में निरन्तर गिरावट आ रही है। अब इसका शेयर मात्र 28 प्रतिशत रह गया है। संसाधनों की उगाही हेतु उचित वातावरण की कमी भारत के व्यापार में सेक्टर-वार का आवंटन तथा भर्ती और जनशक्ति को बरकरार रखने जैसी समस्याओं से यह क्षेत्र घिरा पड़ा है। भारतीय बेड़ों का तकनीकी उन्नयन और आधुनिकीकरण की आवश्यकता है।

मुख्य बन्दरगाह : इन वर्षों में लगभग 230 मिलियन टन सामान के लदान को संभाल लेने वाले ग्यारह बन्दरगाह बनाए गए। लेकिन, उनमें काफी भीड़-भाड़ है और वे अच्छे साज़ो-सामान से सुसज्जित नहीं हैं। भीड़-भाड़, अपर्याप्त सेवाएं, आवश्यकता से अधिक जन-शक्ति, निम्न स्तर की तकनीक, रख-रखाव तथा उत्पादकता और घरेलू संचार व्यवस्थाओं की भारी कमी इस क्षेत्र की बहुत बड़ी बाधाएं हैं। राज्यों में संसाधनों की कमी के फलस्वरूप छोटे बन्दरगाहों का विकास नहीं हो पा रहा है। देश की विद्यमान बन्दरगाह क्षमता में व्यापक वृद्धि किए जाने की आवश्यकता है।

दूरसंचार : दूरसंचार नेटवर्क का विस्तार हुआ है। इसकी वर्तमान क्षमता 14 मिलियन सीधी एक्सचेंज लाइनों की है। दो मिलियन उपभोक्ता प्रतीक्षा-सूची में हैं। अन्य विकासशील देशों की तुलना में हमारे देश में दूरभाष-घनत्व बहुत कम है। करीब 300,000 गांवों को अभी भी यह सुविधा दी जानी शेष है। अत: ग्रामीण क्षेत्रों को इस सेवा से जोड़ने के कार्य को प्राथमिकता दिए जाने की आवश्यकता है। भारतीय उद्योगों की उत्पादन क्षमता विश्व के बड़े देशों की अपेक्षा कम है। यह क्षेत्र प्रौद्योगिकी अनुसंधान तथा विकास और निर्यात आदि क्षेत्रों में काफी पिछड़ा हुआ है।

(एक)

पृष्ठभूमि

आधारभूत ढांचा सामान्यत: उस वास्तविक ढांचे के रूप में माना जाता है जिसके माध्यम से जनता को सामान और सेवाएं उपलब्ध कराई जाती हैं। अर्थव्यवस्था के साथ इसका संबंध बहुविध और जटिल है, क्योंकि यह उत्पादन और खपत को सीधे प्रभावित करता है। सकारात्मक और नकारात्मक प्रभाव डालता है और इसमें बड़े पैमाने पर धनराशि का खर्च शामिल होता है।

आधारभूत ढांचा उत्पादकता बढ़ाकर और सुविधाएं उपलब्ध कराकर, जिनसे जीवन का स्तर ऊंचा उठता है, दोनों ही तरीके से आर्थिक विकास में योगदान करता है। उपलब्ध कराई गई सेवाओं से उत्पादन में कई प्रकार से वृद्धि होती है:—

- आधारभूत सेवाएं उत्पादन के लिए मध्यवर्ती आदान हैं और इन आदान लागत मूल्यों में किसी भी कमी से उत्पादन की लाभप्रदता बढ़ती है। इस प्रकार इससे उत्पादन, आय और/अथवा रोजगार में भारी वृद्धि होती है।
- इनसे श्रम और पूंजी सहित अन्य कारकों की उत्पादकता बढ़ती है। (आधारभूत ढांचे को "उत्पादन का नि:शुल्क कारक" भी बताया जाता है क्योंकि आधारभूत ढांचे की उपलब्धता से अन्य पूंजी और श्रम से मिलने वाले उच्च लाभ प्राप्त होते हैं)।
- इन सेवाओं की पर्याप्त रूप से उपलब्धता से उत्पादन का विविधीकरण होता है, व्यापार का विस्तार होता है, जनसंख्या वृद्धि के साथ सामंजस्य होता है, गरीबी कम होती है और पर्यावरण संबंधी स्थितियों में सुधार आता है।

व्यापकता

आधारभूत ढांचे के क्षेत्र के अंतर्गत तमाम सेवाएं आती हैं: ऊर्जा (कोयला, विद्युत, पेट्रोलियम तथा गैस), परिवहन (रेल, सड़कमार्ग, विमान सेवाएं और जल परिवहन) और दूरसंचार। सामाजिक आधारभूत ढांचे के अंतर्गत स्वास्थ्य, शिक्षा और अन्य प्राथमिक सेवाएं आती हैं। औद्योगिक उत्पादन के सूचकांक में 28.8 प्रतिशत संयुक्त योगदान जिन छह आधारभूत उद्योगों का है, उनमें कोयला, बिजली, अशोधित तेल, पेट्रोलियम उत्पाद, इस्पात और सीमेंट उद्योग आते हैं।

समग्र प्रभाव

अनुसंधान से यह पता चला है कि प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पादन में प्रति एक प्रतिशत वृद्धि से कुल आधारभूत स्टाक में एक प्रतिशत वृद्धि होती है, लोगों को मिलने वाले सुरक्षित पेयजल में 0.3 प्रतिशत की वृद्धि होती है, पक्की सड़कों में 0.8 प्रतिशत, बिजली में 1.5 प्रतिशत, दूरसंचार में 1.7 प्रतिशत

की वृद्धि होती है। आधारभूत उत्पादकता यह तय करेगी कि भारत शहरीकरण, भूमंडलीकरण और निर्माण एवं प्रचालन विज्ञान में प्रौद्योगिकीय नवीनताओं की बढ़ती हुई गति से किस तरह सामंजस्य स्थापित करेगा।

आय बढ़ने के साथ-साथ आधारभूत ढांचे की संरचना में काफी परिवर्तन होते हैं। कम आय वाले देशों के लिए प्राथमिक आधारभूत ढांचा-जल, सिंचाई और परिवहन अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण हैं। जैसे-जैसे अर्थव्यवस्था सुदृढ़ होती है पानी की खपत की अधिकांश मूल मांगें पूरी कर दी जाती हैं; अर्थव्यवस्था में कृषि का हिस्सा कम हो जाता है और परिवहन का अपेक्षाकृत अधिक आधारभूत ढांचा उपलब्ध कराया जाता है। अधिक आय वाले देशों में विद्युत, पेट्रोल और पेट्रोलियम पदार्थों तथा दूरसंचार का हिस्सा अपेक्षाकृत अधिक होता है।

निवेश संबंधी अपेक्षाएं

विकासशील देशों को आधारभूत ढांचे में वित्तीय, मानव तथा प्रबंधकीय संसाधनों का भारी निवेश करना होगा। हाल ही में विश्व बैंक द्वारा किए गए अध्ययन में यह अनुमान लगाया गया है कि विकासशील देश वास्तविक बुनियादी सुविधाओं के लिए प्रतिवर्ष कुल मिलाकर लगभग 200 बिलियन डालर का निवेश करते हैं। यह उनके सकल घरेलू उत्पाद का लगभग 4 प्रतिशत है। मोटे तौर पर इसका 4/5वां भाग, या लगभग 160 बिलियन डालर का वित्त पोषण घरेलू सरकारी संसाधनों के माध्यम से, लगभग 1/6वां भाग या लगभग 30 बिलियन डालर अंतर्राष्ट्रीय विकास सहायता के माध्यम से और शेष लगभग 10 बिलियन डालर का वित्त पोषण निजी पूंजी के माध्यम से किया जाता है। यद्यपि निजी क्षेत्र का हिस्सा अभी भी बहुत कम है लेकिन अनेक देशों और क्षेत्रों में इसमे तेजी से वृद्धि हो रही है।

आर्थिक विकास की दर के अनुरूप आधारभूत ढांचे में अधिक निवेश करने की आवश्यकता होती है। आर्थिक विकास से उत्पन्न मांग, जनसंख्या के बढ़ने, तेजी से शहरीकरण होने तथा अर्थव्यवस्था के पुनर्निर्माण की आवश्यकता तथा पर्याप्त निवेश की कमी को पूरा करने के कारण भविष्य में अधिक निवेश किये जाने की संभावना है।

भारतीय अर्थव्यवस्था की वर्तमान 6 प्रतिशत विकास दर के बढ़कर वर्ष 2000-2001 तक 7.5 प्रतिशत और 2005-2006 तक 8.5 प्रतिशत होने का अनुमान लगाया गया है। ऐसी वृद्धि से निवेश दर में 2000-2001 में सकल घरेलू उत्पाद के वर्तमान 25 प्रतिशत से लगभग 29 प्रतिशत तक और 2005-2006 में 31.5 प्रतिशत तक वृद्धि करने की आवश्यकता होगी।

सरकारी क्षेत्र की प्रमुखता

आमतौर पर सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा 20वीं सदी के अधिकांश भाग में विश्वभर में आधारभूत सेवाएं उपलब्ध कराई गई हैं। हाल ही में निजी क्षेत्र की वाणिज्यिक आधार पर आधारभूत सुविधाओं की व्यवस्था करने में बढ़ती हुई रुचि देखने को मिली है। ऐसा पिछले पांच से दस वर्षों में हुआ है। इसमें कोई संदेह नहीं कि गत दशक में आधारभूत निवेश और सेवाओं के वाणिज्यीकरण की संभावना में आश्चर्यजनक वृद्धि हुई है और निवेश, सेवाएं प्रदान करने तथा उनके विनियमन में सरकारी क्षेत्र की भूमिका महत्वपूर्ण बनी रहेगी।

देश में बदलता हुआ परिदृश्य

यदि त्वरित आर्थिक विकास के लक्ष्य को प्राप्त करना और उसे बनाए रखना है तो यह नितांत आवश्यक है कि पर्याप्त आधारभूत सुविधाओं की व्यवस्था और अनुरक्षण उचित लागत पर किया जाये। विगत में देश में आधारभूत सेवाएं उपलब्ध कराने की जिम्मेदारी सरकार की थी। भारी मात्रा में पूंजी निवेश, स्थापना से उत्पादन शुरू होने तक की लंबी अवधि, बाहरी सहायता, अधिक जोखिम और लाभ की अल्प दर जैसे कई कारणों से ऐसा किया गया। लेकिन आधारभूत ढांचे के पुराने प्रतिमान, जो केवल सार्वजनिक क्षेत्र के लिए सुरक्षित रखे गये हैं, वित्तीय अड़चनों तथा नई-नई प्रौद्योगिकियों से उत्पन्न चुनौतियों के फलस्वरूप गड़बड़ा गए हैं। बजटीय आबंटन और सरकारी ऋण पर प्रतिबंध लगाने, ऋण आबंटन प्रणाली को समाप्त करने से निजी क्षेत्र को आधारभूत सुविधाओं की व्यवस्था करने के क्षेत्र में प्रवेश करने में प्रोत्साहन मिला है।

सरकारी विकास संबंधी नीति में सक्षम आधारभूत ढांचे का विकास करने तथा एक ऐसा वातावरण तैयार करने को उच्च प्राथमिकता दी गई है जिससे आधारभूत ढांचा क्षेत्र में निजी भागीदारी हो सके। सरकारी-निजी क्षेत्र की सहभागिता के लिए उपलब्ध अनेक विकल्पों से जोखिम में हिस्सेदारी, जवाबदेही, लागत वसूली और आधारभूत ढांचे के प्रबंधन को बेहतर ढंग से बढ़ावा दिया जा सकता है।

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, सार्वजनिक क्षेत्र ने विशेष रूप से ऊर्जा, परिवहन, संचार और सिंचाई के क्षेत्रों में वास्तविक आधारभूत ढांचा परम्परागत ढंग से उपलब्ध कराया है, और चूंकि इन क्षेत्रों में निर्माण की मात्रा बहुत अधिक है और ये समाज के बड़े वर्ग को प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से लाभ पहुंचाते हैं, इसलिए सरकारी क्षेत्र इस क्षेत्र में एक प्रमुख भूमिका निभाता रहेगा और लोगों की मांगों को पूरा करने का दायित्व अंतत: उसी का होगा। तथापि, यदि निजी क्षेत्र विद्युत संयंत्रों, सड़कों, पुलों, मध्यम तथा लघु सिंचाई परियोजनाओं, सामाजिक आवास तथा औद्योगिक बस्तियों जैसी आधारभूत सुविधाएं उचित शर्तों पर उपलब्ध कराने के लिए सामने आते हैं और लोगों के हितों की पूरी सुरक्षा को ध्यान में रखा जाये तो ऐसी पहल को निश्चित रूप से प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए।

वर्तमान समय में किये गये ढांचागत सुधारों से भारतीय अर्थव्यवस्था एक उच्च और त्वरित विकास के पथ पर अग्रसर है। विश्व बैंक के एक अनुमान के अनुसार वर्ष 1993 में पत्तनों में विलंब होने और घटिया पोत परिवहन सुविधाओं की वजह से भारतीय निर्यातकों को लगभग 420 मिलियन डालर का अतिरिक्त व्यय करना पड़ा। समय पर धनराशि उपलब्ध न होने और परियोजनाओं के समुचित आकलन और उन्हें क्रियान्वयन के अभाव में समय और लागत में भारी वृद्धि हुई जिसके परिणामस्वरूप पूर्ति और मांग के बीच भारी अंतर रहा।

विकास एक नजर में

निम्नलिखित सारणी, संक्षेप में, 1950-51 से लेकर अब तक छः आधारभूत उद्योगों के कार्य निष्पादन को दर्शाती है:-

तालिका 3.1

आधारभूत उद्योगों के कार्य-निष्पादन का रुख

उद्योग	यूनिट	1950-51	1960-61	1970-71	1980-81	1990-91	1995-96
कोयला	(मिलियन टन)	32.3	55.2	76.3	119.0	225.5	270.1
विद्युत	(बिलियन किलोवाट)	5.1	16.9	55.8	110.8	264.3	380.1
कच्चा तेल	(मिलियन टन)	0.3	0.5	6.8	10.5	30.4	35.1
पेट्रोलियम पदार्थ	(मिलियन टन)	0.2	5.7	17.1	24.1	48.0	54.5
सीमेंट	(मिलियन टन)	2.7	8.0	14.3	18.6	48.8	69.3
इस्पात	(मिलियन टन)	1.0	2.4	4.6	6.8	13.5	21.4

स्रोत : आर्थिक समीक्षा 1996-97

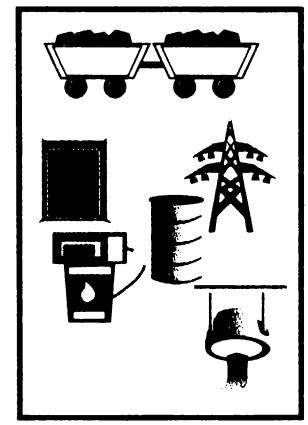

कार्यक्रम क्रियान्वयन विभाग द्वारा आधारभूत ढांचे की निगरानी की जाती है जिसका उद्देश्य, नौ बुनियादी औद्योगिक क्षेत्रों अर्थात् बिजली, कोयला, इस्पात, रेलवे, दूरसंचार, नौवहन और पत्तन, उर्वरक, सीमेंट, पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस, जिनकी देश के आर्थिक विकास में अग्रणी भूमिका है, के वित्तीय वर्ष के लक्ष्य के संदर्श में वास्तविक कार्य-निष्पादन की समीक्षा करना है। इसमें उन समस्याग्रस्त क्षेत्रों जहां प्राथमिकता के आधार पर कार्यवाही करने की आवश्यकता है, की पहचान और जटिल बाधाओं को दूर करने, बेहतर क्षमता उपयोग पर बल देते हुए वांछित परिणाम हासिल करने के लिए अन्त: क्षेत्र संबंध निर्धारित करने की दृष्टि से प्रशासनिक मंत्रालयों के प्रयासों के बीच समन्वय करना शामिल है। आठवीं पंचवर्षीय योजना (अर्थात् 1992—96) के दौरान बुनियादी क्षेत्र के विकास की संपूर्ण स्थिति निम्नलिखित तालिका में दी गई है:-

तालिका 3.2

बुनियादी क्षेत्र की विकास दर का रुख

	पिछले वर्ष प्रतिशत की तुलना में परिवर्तन			
क्षेत्र	1992-93	1993-94	1994-95	1995-96
कोयला	3.9	3.3	3.2	6.4
बिजली उत्पादन	5.0	7.4	8.5	8.3
(क) जल विद्युत	-4.0	0.8	17.2	-12.1
(ख) ताप विद्युत (आणविक ऊर्जा सहित)	8.1	9.5	6.1	14.6
पेट्रोलियम				
(क) कच्चे तेल का उत्पादन	-11.2	0.3	19.3	9.0
(ख) तेलशोधन कारखाना	4.0	1.5	3.8	3.6
परिवहन				
(क) रेलवे का राजस्व अर्जक माल परिवहन	3.6	2.5	1.7	7.0
(ख) मुख्य पत्तनों पर माल की चढ़ाई-उतराई	6.7	7.6	10.0	9.1
दूरसंचार–उपलब्ध कराए गए नये टेलीफोन कनेक्शन	34.2	24.5	44.0	23.3

स्रोत : वर्ष 1994-95 और 1996-97 की आर्थिक समीक्षा

ऊर्जा, परिवहन और दूरसंचार बुनियादी क्षेत्र के महत्वपूर्ण अंग हैं। एक दूसरे के साथ संबंध बनाये रखे बिना उच्च विकास की दर प्राप्त करना संभव नहीं है। चूंकि हम 21वीं शताब्दी में प्रवेश कर रहे हैं इसलिए इन क्षेत्रों के कार्य-निष्पादन की विस्तृत जांच, संबंधित नीतिगत मामले और समस्याएं तथा भावी चुनौतियां अपरिहार्य हैं।

(दो)

ऊर्जा

ऊर्जा के क्षेत्र में कोयला, बिजली, तेल और प्राकृतिक गैस तथा गैर-परम्परागत ऊर्जा क्षेत्र शामिल हैं। हमारी पंचवर्षीय योजनाओं में इनका मुख्य हिस्सा है। पंचवर्षीय योजना में सरकारी क्षेत्र की 25 प्रतिशत से 30 प्रतिशत तक की भागीदारी होती है। ऊर्जा आपूर्ति के लिए भारी निवेश और आयात की आवश्यकता होती है। दूसरी तरफ उद्योग, परिवहन, कृषि और घरेलू क्षेत्र जैसे अत्यंत संवेदनशील क्षेत्र हैं जहां ऊर्जा की बहुत आवश्यकता तो होती है, परन्तु ऊर्जा पैदा करने संबंधी कोई गतिविधि वहां पर नहीं होती। इस प्रकार वृहत आर्थिक विकास और ऊर्जा क्षेत्र एक दूसरे पर आश्रित हैं।

कोयला क्षेत्र

कोयला देश में मुख्य रूप से एक जीवाश्म ईंधन का स्रोत रहा है। यह वाणिज्यिक ऊर्जा का लगभग 85% स्रोत है। भारतीय कोयले में बड़े पैमाने पर डामर और राख होती है। 1956 में राष्ट्रीय कोयला विकास निगम की स्थापना कोयला उद्योग के नियोजित विकास में पहला कदम था। तथापि, जब तक 1971 में कोयला खानों का राष्ट्रीयकरण और 1973 में गैर-कोक कोयला खानों का राष्ट्रीयकरण नहीं हुआ था, तब तक कोयला खानों के विकास के लिए कोई व्यापक कार्यक्रम शुरू नहीं हुआ था। भारतीय भूगर्भ सर्वेक्षण विभाग का अनुमान था कि कोयला भंडारों में 1996 तक 202 बिलियन टन कोयला होगा। इसमें से 15 प्रतिशत कोक कोयला होने का अनुमान था, जबकि 73 प्रतिशत घटिया श्रेणी का गैर-कोक कोयला था।

कोयला देश में ऊर्जा खपत की लगभग 67 प्रतिशत मांग की पूर्ति करता है। कोयला उद्योग के सभी पहलुओं का सतत् और योजनागत विकास सुनिश्चित करने हेतु नई खानों को खोलने, वर्तमान खानों के पुनर्गठन और संबंधित बुनियादी ढांचे के विकास पर इसके राष्ट्रीयकरण के बाद लगभग 160 बिलियन रुपये का भारी पूंजी निवेश किया गया है। गत दो दशकों के दौरान कोयले के उत्पादन में लगभग 6 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि दर परिलक्षित हुई है, जो 1972-73 में 77 मिलियन टन थी, वह 1995-96 में बढ़कर लगभग 270 मिलियन टन हो गई है।

कोयले के उत्पादन में यह वृद्धि दर खुले मुहाने की खानों को ज्यादा महत्व देने के कारण संभव हुई। 1973 में खुले मुहाने की खानों का उत्पादन कुल उत्पादन का 28 प्रतिशत था जो 1995-96 में बढ़कर लगभग 70 प्रतिशत हो गया। खुले मुहानों की खानों के पक्ष की मुख्य बातें हैं—स्थापना से लेकर उत्पादन शुरू किये जाने तक अवधि का कम होना, अधिक वसूली और सुरक्षा तथा उत्पादन लागत का कम होना। तथापि यह कोयला घटिया किस्म का होता है।

भारत की भूमिगत खानों का घटिया मशीनों के कारण कम उपयोग हो पाता है। इस बात का पता भूमिगत खानों में निम्न और स्थिर उत्पादकता अर्थात प्रति पारी उत्पादन से लगता है जो कि 1974-75 में 0.54 टन था और 1994-95 में 0.56 टन था। इसके विपरीत, खुले मुहाने वाली खानों की उत्पादकता 1974-75 में 0.76 टन थी जो कि 1994-95 में बढ़कर 4.35 टन हो गई। भारतीय कोयला खानों की उत्पादकता आस्ट्रेलिया और संयुक्त राज्य अमरीका की खानों की तुलना में बहुत कम है। वर्ष 1990-91 में आस्ट्रेलिया में भूमिगत कोयला खानों की उत्पादकता 11.9 टन और खुले मुहाने वाली खानों की उत्पादकता 30.6 टन थी। इसी प्रकार, संयुक्त राज्य अमरीका में भूमिगत और खुले मुहाने वाली खानों की उत्पादकता क्रमश: 19.3 टन और 17.7 टन थी। भारत में कुल कोयला उत्पादन का केवल 21 प्रतिशत भाग कोककारी क्षमता वाला होता है और यह इस्पात निर्माण और ढलाई कारखानों में बड़े पैमाने पर उपयोग में लाया जाता है। उद्योगों द्वारा गैर-कोककारी कोयले का उपयोग अधिकांशत: बिजली और भाप बनाने के लिए किया जाता है।

भूमिगत खानों में कम उत्पादकता कोयला क्षेत्र की लाभप्रदता के मामले में एक बहुत बड़ी बाधा है। कुल श्रमिकों के 80 प्रतिशत श्रमिक भूमिगत खानों में कार्य करते हैं परन्तु कुल उत्पादन में इनका योगदान केवल 30% ही होता है। मशीनों और उपकरणों के विद्यमान भंडार का बेहतर उपयोग करके, कर्मचारियों की यथा स्थिति तैनाती करके और कार्यबल को युक्तिसंगत बना कर उत्पादकता में सुधार लाया जा सकता है।

समस्याएं : भारतीय कोयला उद्योग के समक्ष अनेक प्रकार की समस्याएं हैं:

- घटिया किस्म का कोयला और कोयले की ढुलाई में बाधाएं।
- धोवनशालाओं की क्षमता का कम उपयोग।
- कोककारी कोयले के आयात पर बढ़ती हुई निर्भरता।
- निर्धारित मूल्य।

घटिया किस्म: भारतीय कोयले में राख की मात्रा अधिक होती है और उसकी उष्मीय क्षमता कम होती है। कोयले में राख की मात्रा 20 से 30 प्रतिशत तक होती है और कभी-कभी यह 40 प्रतिशत से भी अधिक हो जाती है। ऐसे अलाभकारी कोयले की ढुलाई, गाड़ी में लम्बी दूरी तक उसे ले जाने से न केवल परिवहन क्षमता और ऊर्जा व्यर्थ जाती है बल्कि कोयला आधारित ताप विद्युत संयंत्रों की क्षमता भी कम हो जाती है और धुएं और राख के अधिक उत्सर्जन से वायु प्रदूषण में वृद्धि होती है।

कोयला धोवनशालाएं: कोयला धोवनशालाएं राख की अवांछित मात्रा को कम कर सकती हैं और जिससे फालतू भार की ढुलाई नहीं करनी पड़ेगी। कई वर्षों से धोवनशालाओं की क्षमता उपयोग निरंतर 45% से कम रहने के कारण इनका समग्र कार्यनिष्पादन संतोषजनक नहीं रहा है। इसका कारण इन इकाइयों के नवीकरण और आधुनिकीकरण का अभाव हो सकता है।

कोककारी कोयले का आयात: कोककारी कोयले के उत्पादन और उसमें राख की मात्रा अधिक होने के कारण ऐसी संभावना नहीं है कि निकट भविष्य में कोककारी कोयले के आयात में कमी आएगी। कोयले के आयात में निरंतर वृद्धि हो रही है और 1994-95 में यह 8.5 मिलियन टन के स्तर तक पहुंच गया था।

निर्धारित मूल्य: अनियंत्रित प्रीमियम बाजार में कोयले के मूल्यों में अचानक वृद्धि हो गई है। खुले बाजार में कोयले के मूल्यों में एकाएक वृद्धि होने से गैर-विद्युत और गैर-इस्पात उपभोक्ता प्रभावित हुए हैं। सरकार ने 1995-96 के दौरान कोककारी कोयले के और क, ख और ग श्रेणी के गैर-कोककारी कोयले के मूल्यों को विनियंत्रित कर दिया। कोयला कंपनियां इन अलग-अलग किस्मों के कोयले के मूल्य निर्धारित करने के लिए स्वतंत्र हैं।

1980 से 1986 के बीच सभी श्रेणियों के कोयले के मूल्यों में दुगुनी वृद्धि होने से 1980 से स्वदेशी कोयले के मूल्यों में अपेक्षाकृत अधिक वृद्धि हुई है। इस बात पर ध्यान देने की आवश्यकता है कि उच्च आदान लागत को निष्प्रभावी करने के लिए मूल्यों में नियमित रूप से वृद्धि करना कोई समाधान नहीं है। इसका उपाय यह है कि विद्यमान विक्रेता बाजार में प्रतिस्पर्धात्मक स्थितियां उत्पन्न की जाएं और एकाधिकारिक राष्ट्रीय कोयला उत्पादक एककों को प्रतिस्पर्धा द्वारा संचालन कुशलता में वृद्धि करने के लिए बाध्य किया जाए। क्या कोयले के मूल्यों को पूर्णत: नियंत्रणमुक्त किया जा सकता है, क्या प्रतिस्पर्धा लाने और कार्य कुशलता में सुधार लाने के लिए गैर-कोककारी और कोककारी कोयले पर आयात शुल्क को कम/समाप्त किया जा सकता है?

निजी क्षेत्र की भागीदारी

सरकार की उदारीकरण नीति के अनुकरण में निजी क्षेत्र को कोयला उद्योग में (एक) विद्युत उत्पादन, तथा लौह और इस्पात उद्योग में संलग्न उपभोक्ताओं द्वारा रक्षित कोयला खनन; (दो) बिल्ड-आन-आपरेट (निर्माण करो और संचालन करो) आधार पर धोवनशालाओं और रक्षित विद्युत संयंत्रों को निर्माण के क्षेत्रों में 9.6.1993 से भागीदारी की अनुमति दी गई है।

चिन्तनीय क्षेत्र: कुछ प्रमुख चिन्तनीय क्षेत्र इस प्रकार हैं:-

- उत्पादन और ढुलाई संबंधी बाधाओं के कारण विद्युत क्षेत्र के लिए पर्याप्त मात्रा में कोयला उपलब्ध न होना।
- इस्पात क्षेत्र हेतु अपेक्षित किस्म के कोकिंग कोयले की देश में पर्याप्त मात्रा में अनुपलब्धता।
- भूमिगत खानों में कम उत्पादकता।
- निजी क्षेत्रों की अपर्याप्त भागीदारी।

विद्युत क्षेत्र

देश में बिजली का उत्पादन, जो 1947 में केवल 4.1 बिलियन यूनिट (किलोवाट) था, 1995 में बढ़कर लगभग 350 बिलियन किलोवाट हो गया, इस प्रकार वार्षिक दर में 7.5 प्रतिशत मिश्रित वृद्धि हुई। इसके बावजूद विद्युत क्षेत्र में विद्युत आपूर्ति मांग की तुलना में गंभीर बनी हुई है। बिजली का आसानी से आयात अथवा भंडारण नहीं किया जा सकता, अत: देश की विद्युत की मांग को पूरा करने के लिए देश में इसकी उत्पादन क्षमता का सृजन करना गंभीर समस्या है। यदि समय पर इसकी उत्पादन क्षमता में और वृद्धि नहीं की गई, तो विद्युत की कमी के परिणामस्वरूप संचालन और प्रबंधन में अकुशलता तथा सामान्य रूप से निवेश और अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों के विकास में कमी आएगी। भारत में बिजली की सतत् कमी के कारण और निरंतर कटौती किये जाने से क्षमता का पूरा उपयोग नहीं किया जाता तथा जनरेटरों पर निर्भर रहने से अधिक अनुत्पादक व्यय तथा अन्य

तालिका 3.3

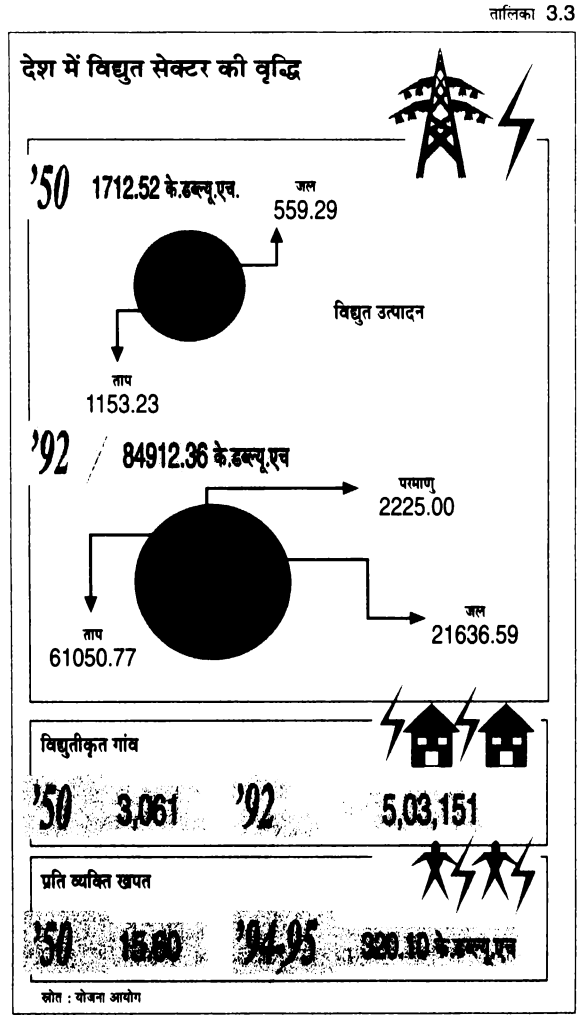

फालतू व्यय होता है। जिसके कारण अर्थव्यवस्था के विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

विद्युत उत्पादन

इस समय कुल विद्युत उत्पादन का 74 प्रतिशत ताप विद्युत संयंत्र और 24 प्रतिशत पन-विद्युत संयंत्र तथा शेष 2 प्रतिशत विद्युत का उत्पादन परमाणु संयंत्रों द्वारा किया जाता है। 31 मार्च, 1996 की अधिष्ठापित क्षमता लगभग 85,000 मेगावाट थी।

[देखिए तालिका 3.3]

हमारी प्रति व्यक्ति विद्युत खपत (320 किलोवाट) की स्थिति विश्व की औसत जो कि 2216 किलोवाट है की तुलना में अत्यंत अपर्याप्त है। हमारी विद्युत खपत कतिपय विकासशील देशों जैसे कि चीन, थाईलैंड, पाकिस्तान, मिश्र, मारीशस, जाम्बिया, अर्जेंटीना, ब्राजील से भी कम है, जिनके खपत के आंकड़े क्रमश: 719, 1162, 416, 787, 906, 706 और 1783 (सभी किलोवाट में) हैं।

केन्द्रीय और राज्य क्षेत्रों में क्षमता सृजन में चूक के कई कारणों का पता लगाया गया है। इनमें धनराशि का अभाव, मुख्य संयंत्र तथा उपकरण के लिए क्रय आदेश में विलम्ब, आपूर्तिकर्ताओं द्वारा उपकरण की आपूर्ति में विलम्ब, भूमि अधिग्रहण में प्रक्रियागत विलम्ब, अन्तर-राज्यीय विवादों का हल न किया जाना आदि कारण शामिल हैं। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि देश की 78 प्रतिशत पन-विद्युत क्षमता का अभी तक दोहन नहीं किया गया है। चूक का विशेष रूप से राज्य क्षेत्र की परियोजनाओं में, अन्य महत्वपूर्ण कारण यह रहा है कि राज्यों ने निजी व भागीदारी संबंधी नीति की घोषणा को परियोजनाओं की स्थापना में उनकी भागीदारी में कमी के रूप मे देखा। इसके परिणामस्वरूप राज्य क्षेत्र के संसाधनों से आरम्भ होने वाली अनेक परियोजनाओं को समय पर पूरा करने हेतु पर्याप्त धनराशि प्रदान नहीं की गई।

बॉक्स 3.1 : विद्युत क्षेत्र के विकास में प्रमुख उपलब्धियां

1948	•	विद्युत प्रदाय अधिनियम के अधीन केन्द्रीय विद्युत प्राधिकरण और राज्य विद्युत बोर्डों का सृजन।
		भारत सरकार तथा पश्चिम बंगाल और बिहार राज्य के संयुक्त उद्यम के रूप में दामोदर घाटी निगम की स्थापना।
1956	•	लिग्नाइट के खनन और विकास तथा लिग्नाइट आधारित विद्युत उत्पादन के लिए नेवेली लिग्नाइट कारपोरेशन की स्थापना।
1969	•	परमाणु ऊर्जा विभाग और बाद में 1987 में इसके वाणिज्यिक निगम अर्थात, परमाणु विद्युत निगम का सृजन।
		ग्रामीण विद्युतीकरण हेतु वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए ग्रामीण विद्युतीकरण निगम की स्थापना।
1975 और 1976	•	राष्ट्रीय ताप विद्युत निगम, राष्ट्रीय पन विद्युत निगम, पूर्वोत्तर विद्युत निगम की स्थापना।
1982	•	अपारम्परिक ऊर्जा स्रोत विभाग की स्थापना
1986	•	विद्युत वित्त निगम की स्थापना।
1987	•	नई ऊर्जा प्रौद्योगिकियों के विकास हेतु सरकारी निगम के रूप में भारतीय पुन: प्रयोज्य ऊर्जा विकास एजेंसी की स्थापना।
1988	•	क्षेत्र विशिष्ट निगमों अर्थात्:- टिहरी पन विद्युत विकास निगम, नाथपा, झाकड़ी विद्युत निगम की स्थापना।
1989	•	अंतर क्षेत्रीय और अंतर्राज्यीय पारेषण प्रणालियों के प्रचालन और रख-रखाव हेतु विद्युत पारेषण के लिए निगम के रूप में पावर ग्रिड की स्थापना।
1991-92	•	बिजली क्षेत्र में निजी क्षेत्र के निवेश हेतु नीति तैयार करना।

संयंत्र भार गुणक (पी.एल.एफ.) ताप विद्युत संयंत्रों की प्रचालनगत कार्यकुशलता का एक महत्वपूर्ण सूचक है। पी.एल.एफ. की प्रवृत्तियों को निम्नलिखित तालिका में दर्शाया गया है:-

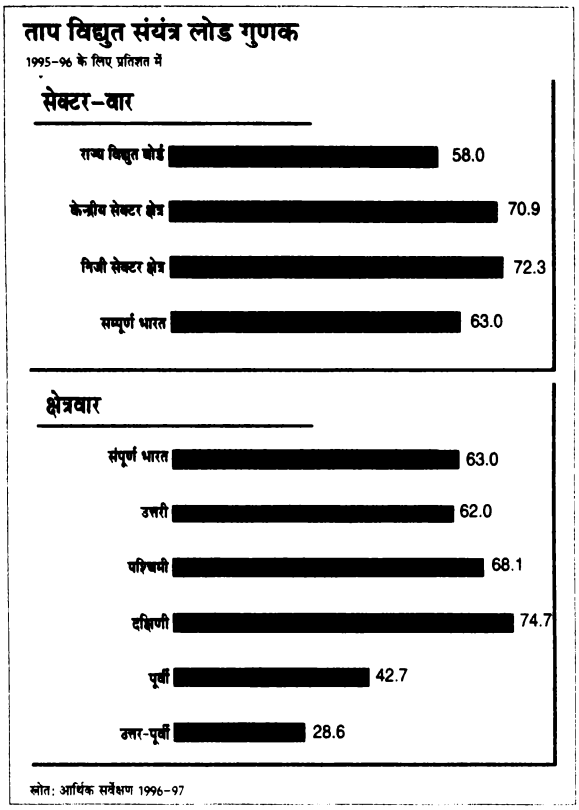

तालिका 3.4

ताप संयंत्र भार गुणक

(प्रतिशत)

	1992-93	1993-94	1994-95	1995-96
राज्य विद्युत बोर्ड	54.1	56.6	55.0	58.0
केन्द्रीय क्षेत्र	62.7	69.8	69.2	70.9
निजी क्षेत्र	58.8	57.0	65.8	72.3
अखिल भारतीय	**57.1**	**61.0**	**60.0**	**63.0**
क्षेत्र				
उत्तरी	62.0	64.0	59.1	62.0
पश्चिमी	59.7	62.4	63.8	68.1
दक्षिणी	62.6	68.3	69.1	74.7
पूर्वी	39.8	44.8	43.7	42.7
पूर्वोत्तर	24.3	19.9	28.6	28.6

स्रोत : आर्थिक सर्वेक्षण 1996-97

राज्य विद्युत बोर्डों के ताप विद्युत संयंत्रों के क्षमता के कम उपयोग के प्रमुख कारण प्रबंधन और संचालन में त्रुटियां, उचित रख-रखाव की कमी तथा उचित किस्म के कोयले की अनुपलब्धता है। पूर्वी और पूर्वोत्तर क्षेत्रों के मामले में ताप संयंत्रों के औसतन पी.एल.एफ. में व्यापक अन्तर-राज्यीय अन्तर हैं जोकि 1995-96 के दौरान अखिल भारतीय औसत की तुलना में बहुत कम रहा है।

राज्य विद्युत बोर्डों का असंतोषजनक कार्य-निष्पादन: विद्युत क्षेत्र में संवेदनशील समस्या क्षेत्र राज्य विद्युत बोर्डों का असंतोषजनक कार्य-निष्पादन है जोकि विद्युत का उत्पादन और वितरण, प्रशुल्क निर्धारण और राजस्व संग्रहण करते हैं। कृषि तथा उद्योग अपने-अपने हिस्से की दृष्टि से उपभोक्ताओं की दो सर्वाधिक महत्वपूर्ण कोटियों में आते हैं जिनके मामले में राज्य विद्युत बोर्डों के विद्युत प्रभार कृषि क्षेत्र के लिए यूनिट लागत से काफी कम और औद्योगिक क्षेत्र के लिए यूनिट लागत से अधिक निर्धारित किया गया है।

एक ओर विद्युत उत्पादन की औसत लागत और आपूर्ति तथा दूसरी ओर कृषि क्षेत्र से औसत वसूली में अंतर बढ़ता जा रहा है।

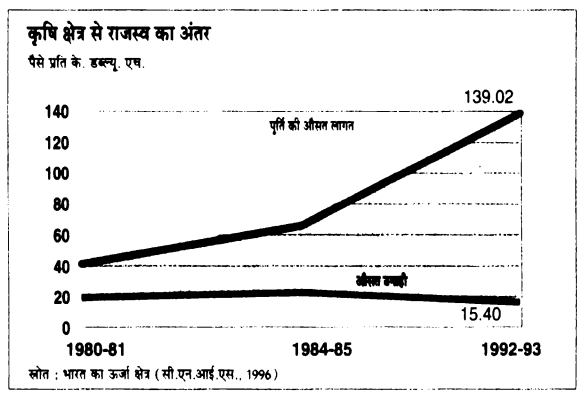

तालिका 3.5

कृषि क्षेत्र से प्राप्त होने वाले राजस्व में अंतर

(पैसे/किलोवाट)

	1980-81	1984-85	1992-93
आपूर्ति की औसत लागत	41.90	65.07	139.02
प्राप्ति	18.84	18.44	15.40
अंतर	23.06	46.63	123.62

स्रोत : भारत का ऊर्जा क्षेत्र (सी.एम.आई.ई. 1996)

किसी भी राज्य विद्युत बोर्ड में कृषि क्षेत्र से होने वाली प्रति यूनिट राजस्व वसूली से सही अर्थों में राज्य विद्युत बोर्ड की औसत लागत भी पूरी नहीं होती जोकि 1995-96 में 7500 करोड़ रुपये से कुछ अधिक थी और जिसके 1996-97 में 10096 करोड़ रुपये तक होने का अनुमान था। कृषि और घरेलू क्षेत्रों के लिए अदृश्य राज सहायता 1991-92 में 7,248 करोड़ रुपये से बढ़कर 1996-97 में 19,227 करोड़ रुपये हो गयी है और 1997-98 में इसके 21,580 करोड़ रुपये हो जाने का अनुमान है।

विद्युत पारेषण और वितरण में होने वाली क्षति: इसके अतिरिक्त, राज्य विद्युत बोर्डों को पारेषण और वितरण (टी एंड डी)

क्षति होती रही है जोकि 1992-93 में 21.8 प्रतिशत थी। तथापि, 1994-95 में यह क्षति थोड़ा कम होकर 20.9 प्रतिशत रह गयी है। यदि हम इन आंकड़ों की विश्व के उन्नत देशों की दस प्रतिशत से भी कम औसत क्षति से तुलना करें, तो यह क्षति बहुत अधिक है।

यह अनुमान लगाया गया है कि पारेषण और वितरण संबंधी हानि में एक प्रतिशत की कमी आने से विद्यमान खपत में हमारी क्षमता में लगभग 800 मेगावाट की बचत होगी। पारेषण और वितरण संबंधी यह हानि बड़े-बड़े ग्रामीण क्षेत्रों में असामान्य रूप से वितरित विद्युत लोड, कम वोल्टेज स्तर पर काफी अधिक मात्रा में ऊर्जा को बेचा जाना, विद्युत वितरण प्रणाली में कम निवेश, अपर्याप्त बिल बनाने तथा अधिक चोरी के कारण होती है। विद्युत कन्डक्टरों तथा उपकरणों में अंतर्निहित हानि प्रणाली सुधार संबंधी योजनाओं के जरिये कम की जा सकती है और ऊर्जा की चोरी में प्रशासनिक उपायों के माध्यम से कमी लायी जा सकती है।

राज्य विद्युत बोर्डों की वित्तीय स्थिति को ठीक करना और उनके परिचालन संबंधी कार्य में सुधार लाना विद्युत क्षेत्र के राज्य विद्युत बोर्डों में सबसे महत्वपूर्ण मुद्दे हैं, जिनसे यह अपेक्षा की जाती है कि वे मूल्य ह्रास और ब्याज प्रभारों का भुगतान करने के बाद अपनी निवल निर्धारित आस्तियों पर कम से कम 3 प्रतिशत लाभ अर्जित करें। वर्ष 1994-95 में केवल तीन ऐसे राज्य विद्युत बोर्ड थे जिन्होंने 3 प्रतिशत से अधिक दर से लाभ कमाया। जहां तक राज्य क्षेत्र संबंधी उपयोगिताओं की बात है वित्तीय और प्रबंधकीय अक्षमता से भविष्य में होने वाली विद्युत क्षमता वृद्धि और प्रणाली सुधार संबंधी कार्यक्रमों पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा है। एक तरफ तो राज्य विद्युत बोर्डों के पास भविष्य में शुरू किये जाने वाले कार्यक्रमों को वित्तपोषित करने के लिए पर्याप्त संसाधन नहीं हैं और दूसरी तरफ उनके असंतोषजनक वित्तीय और वाणिज्यिक कार्यनिष्पादन के कारण उनकी वैकल्पिक स्रोतों से निवेश करने योग्य धनराशि जुटाने की क्षमता सीमित है।

संसाधनों की कमी : कई वर्षों से विद्युत मंत्रालय के अंतर्गत आने वाले केन्द्रीय सरकारी क्षेत्र के उपक्रमों को मिलने वाली निवल बजटीय सहायता में अनुमोदित योजना परिव्यय के अनुपात के रूप में निरन्तर कमी आ रही है। बजटीय सहायता में कमी के कारण केन्द्रीय सरकारी क्षेत्र के उपक्रमों को आन्तरिक तथा बाह्य बजटीय संसाधनों से धनराशि जुटानी है। आज विद्युत क्षेत्र के आन्तरिक तथा बाह्य बजटीय संसाधन कुल योजना परिव्यय का 67 प्रतिशत है।

निजी क्षेत्र की भागीदारी: केन्द्रीय/राज्य सरकारी क्षेत्र के उपक्रमों और राज्य विद्युत बोर्डों के पास संसाधनों की कमी और बिजली की तेजी से बढ़ती मांग और आपूर्ति के बीच अन्तर को पाटने की आवश्यकता को देखते हुए अब यह नीति अपनाई जा रही है कि विद्युत क्षेत्र में निजी उद्यमों द्वारा अधिक निवेश को बढ़ावा दिया जाये। यह नीति, जिसका मुख्य उद्देश्य विद्युत उत्पादन तथा वितरण क्षमता बढ़ाने के लिए अतिरिक्त संसाधन जुटाना है, वर्ष 1991 में बनाई गई थी। निजी क्षेत्र की भागीदारी संबंधी नीति के अंतर्गत पारेषण तथा वितरण क्षेत्र भी आते हैं। कुल 67281 मेगावाट क्षमता वाली 124 से अधिक विद्युत परियोजनाओं, जिनमें लगभग 246472 करोड़ रुपये का निवेश अन्तर्ग्रस्त है, को स्थापित करने में रुचि दिखाई गई है।

संस्थागत सुधारों की आवश्यकता: भारतीय विद्युत क्षेत्र तब तक अपेक्षित निवेश प्राप्त करने में सफल नहीं हो पायेगा जब तक कि इसे एक मजबूत वाणिज्यिक आधार प्रदान करने हेतु इसमें संरचनात्मक परिवर्तन नहीं किए जायेंगे। सशक्त उपायों के बिना चालू मांग-आपूर्ति अन्तर के भविष्य में और अधिक बढ़ने की संभावना है जो कि संभवत: वर्ष 2000 तक सर्वाधिक 25 प्रतिशत तक पहुंच जायेगा। अर्जेन्टीना, चीन, अमरीका तथा ब्रिटेन के अनुभवों से इस संबंध में कुछ उपयोगी शिक्षा हासिल होती है कि विभिन्न सुधार संबंधी प्रक्रियाएं कैसे चलायी जा सकती हैं और इन अनुभवों से प्राप्त जानकारी भारत के विद्युत क्षेत्र में सुधार लाने के कार्य में लगे लोगों के लिए किस तरह से मूल्यवान साबित हो सकती हैं। सुधार प्रक्रिया में बाजारों, संस्थानों, विनियमों और वित्त जैसे परस्पर जुड़े मुद्दों से निपटने के लिए समन्वित प्रयासों की आवश्यकता होगी। सुधार की त्वरित गति इसकी सफलता के लिए महत्वपूर्ण होगी।

आपूर्ति संबंधी प्रबंध व्यवसाय के बेहतर होने से संस्थापित क्षमता से आपूर्ति में वृद्धि हो सकती है। राष्ट्रीय ग्रिड से संबंधित मामलों की समीक्षा करना आवश्यक है। इससे उभरने वाले मुद्दे—समेकित ग्रिड संचालनों से होने वाले लाभ तथा इससे लागत में कमी कैसे हो सकती है, तंत्र की उपयोगिता मे सुधार तथा और अधिक मांग को पूरा करना आदि है, इसके अलावा, बिजलीघर की कार्यक्षमता में सुधार लाने के उपाय, जिनसे उपषंगी खपत अर्थात स्वयं बिजलीघर द्वारा अपने ऊपर बिजली की खपत (8 से 14 प्रतिशत) में कमी आयेगी जिसका तात्पर्य है ऊर्जा तथा लागत दोनों की दृष्टि से भारी बचत।

क्या बचायी गयी ऊर्जा सृजित ऊर्जा के बराबर है? भारत की विद्युत आयोजना में विद्युत आपूर्ति पर अधिक बल दिया गया है। आयोजकों ने सदैव और अधिक उत्पादन तथा और अधिक विद्युत संयंत्रों की अपेक्षा की है। दक्षता में सुधार तथा मांग संबंधी प्रबंध के विभिन्न विकल्प उपभोक्ताओं को ऊर्जा के और अधिक किफायती उपयोग के लिए प्रेरित करते हैं। विद्युत पारेषण तथा वितरण में नुकसान तथा विद्युत संयंत्र की स्वयं की उपषंगी खपत को ध्यान में रखते हुए उपभोक्ताओं द्वारा बचायी गयी ऊर्जा का एक यूनिट उत्पादन संबंधी आवश्यकता में 1.4 यूनिट की कमी लाता है। तथापि, 1.4 यूनिट की आपूर्ति के लिए, उपलब्ध मात्रा की आवश्यकता, संयंत्र भार आदि को ध्यान में रखते हुए अपेक्षित क्षमता लगभग दोगुनी होगी।

नियोजित विकास में लगभग 50 वर्षों के बाद भी विद्युत संबंधी स्थिति अधिक बेहतर नहीं है। आपूर्ति तथा मांग के बीच बढ़ते हुए अंतर के कारण बार-बार विद्युत-आपूर्ति में व्यवधान आता है और बिजली की कटौती की जाती है जब अधिकतम कमी 18 प्रतिशत होती है तब नई क्षमता उत्पादन में 42 प्रतिशत की कमी आती है। लगभग 18 प्रतिशत पारेषण तथा वितरण हानि होती है और जहां बजटीय सहायता कम है जिसके कारण राज्य विद्युत बोर्डों की वित्तीय स्थिति खराब है। ये सब बातें आज विद्युत क्षेत्र की एक बहुत खराब स्थिति दर्शाती हैं। आठवीं योजना के दौरान विद्युत क्षमता वृद्धि में कमी के प्रभाव नौवीं योजना के

दौरान महसूस किये जायेंगे। नौवीं योजना में विद्युत क्षेत्र की भावी चुनौतियों से निपटने के लिए एक स्पष्ट नीति बनाई जानी चाहिए। विद्युत क्षेत्र के कार्य-निष्पादन में सुधार लाने के लिए एक समयबद्ध कार्य योजना बनाने की आवश्यकता है। इसके लिए ध्यान दिये जाने हेतु कुछ महत्वपूर्ण क्षेत्र निम्नानुसार हैं:—

- लक्षित क्षमता वृद्धि में कमी के कारण अधिक ऊर्जा की कमी तथा उच्चतम मांग अवधि के दौरान इसकी कमी।
- निजी क्षेत्र की भागीदारी से संबंधित अनेक मामलों का समाधान।
- राज्य बिजली बोर्डों द्वारा शुल्क ढांचे का यौक्तिकीकरण
- संयंत्र भार कारक में सुधार।
- बाह्य सहायता का बेहतर उपयोग।
- पारेषण तथा वितरण हानियों में कमी लाने के लिए पारेषण और वितरण क्षेत्र के लिए पर्याप्त निवेश।

सरकारी तथा निजी दोनों क्षेत्रों के अंतर्गत विद्युत क्षेत्र में निवेश बढ़ाने की तत्काल आवश्यकता है। निजी क्षेत्र की विद्युत परियोजनाओं को स्वीकृति प्रदान करने में और कोई विलम्ब अर्थव्यवस्था पर अपरिगणनीय लागत का बोझ डालेगा।

पेट्रोलियम क्षेत्र

भारत में 739 मिलियन टन कच्चे तेल का प्रतिलम्य भंडार है। भारत में स्वदेशी तेल उद्योग के विकास को आठवें दशक के मध्य से ही मुख्यत: बाम्बे हाई अपतट की खोज के बाद से उच्च प्राथमिकता दी जाती रही है। नौवें दशक के शुरू में कच्चे तेल के उत्पादन में बहुत तेजी से प्रगति हुई है तथा 1989-90 के दौरान उत्पादन 30 मिलियन टन के सर्वोच्च स्तर पर पहुंच गया। परन्तु मुख्यत: बाम्बे हाई क्षेत्र में कई कूपों के बंद होने के कारण 1992-93 के दौरान यह उत्पादन घटकर 27 मिलियन टन रह गया। तथापि 1994 तक तेल तथा प्राकृतिक गैस आयोग, जो अब तेल तथा प्राकृतिक गैस निगम लि. है, ने अलाभकर कूपों की संख्या 15 प्रतिशत से घटाकर 10 प्रतिशत कर दी जिससे सुधार की स्थिति लायी जा सकी। इस कारण 1994-95 के दौरान उत्पादन में 19 प्रतिशत (32 मिलियन टन) वृद्धि हुई और 1995-96 के दौरान यह उत्पादन 35 मिलियन टन हुआ जो कि 1994-95 से 9 प्रतिशत अधिक था। तेल तथा प्राकृतिक गैस निगम ने देश में उत्पादित कुल कच्चे तेल का 90 प्रतिशत उत्पादन किया। 1995-96 के दौरान शोधनशालाओं में कुल 58.58 मिलियन टन अशोधित तेल का शोधन किया गया। 1995-96 में प्राकृतिक गैस का उत्पादन 22.31 बिलियन घन मीटर हुआ।

आठवीं योजना के पहले चार वर्षों में पेट्रोलियम क्षेत्र में उत्पादन का रुझान इस प्रकार था:

तालिका 3.6

पेट्रोलियम क्षेत्र में उत्पादन रुझान

	यूनिट	1992-93	1993-94	1994-95	1995-96
कच्चा तेल उत्पाद	मिलियन टन	26.95	27.0	32.2	35.2
एक. तट पर	मिलियन टन	10.20	11.6	12.0	11.9
दो. अपतट	मिलियन टन	16.75	15.4	20.2	22.7
रिफाइनरी थ्रूपुट	मिलियन टन	53.48	54.3	56.5	58.6
पेट्रोलियम उत्पाद	मिलियन टन	50.36	51.1	52.9	55.1
प्राकृतिक गैस	बिलियन घन मीटर	18.1	18.3	19.4	22.3

स्रोत : आर्थिक सर्वेक्षण 1994-95 और 1996-97

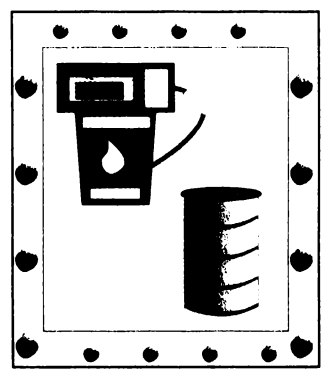

आयात: 1995-96 के दौरान कच्चे तेल तथा पेट्रोलियम उत्पादों का सकल आयात 47.68 मिलियन टन था। 1995 के दौरान पेट्रोल, तेल तथा स्नेहक पदार्थों का मूल्य 24.095 करोड़ रुपये था। पेट्रोलियम उत्पादों के आयात में वृद्धि, रुपये का मूल्य ह्रास और अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में बढ़ते हुए मूल्यों के कारण आयात बिल बहुत अधिक रहा। हाल ही में कच्चे तेल के अंतर्राष्ट्रीय मूल्यों में वृद्धि से अर्थव्यवस्था पर तेल आयात बिल का बोझ बढ़ गया है। इस प्रकार हमारे संसाधनों के उचित प्रबंधन का महत्व सर्वाधिक हो गया है।

तेल उत्पादों का मूल्य निर्धारण: सरकार सभी तेल उत्पादों के मूल्यों पर नियंत्रण रखती है। इन मूल्यों का संशोधन केवल आवधिक तौर पर ही किया जाता है। यह सुनिश्चित करने के लिए कि रिफायनरी, तेल उत्पादक तथा व्यापारी, सरकारी मूल्यों के बावजूद भी अपने कार्यों से पर्याप्त लाभ हासिल करें, सरकार द्वारा गठित एक तेल समन्वय समिति तथाकथित तेल पूल खाते को संचालित करती है। इस खाते का प्रयोजन रिफाइनरियों को निर्धारित मूल्य पर कच्चा तेल प्रदान करना, शोधन शालाओं को उनके उत्पादों के लिए लागत से अधिक मूल्य देना, विपणन कम्पनियों के लिए लाभ सुनिश्चित करना तथा उत्पादों पर

"क्रास सब्सिडी" दी जा सकना। सरकारी मूल्य निर्धारण तंत्र में मुख्य रूप से मिट्टी के तेल, रसोई गैस तथा हाई स्पीड डीज़ल के लिए भारी राज सहायता दी गई है। मिट्टी के तेल तथा रसोई गैस पर दी गई राज सहायता तेल पूल खाते के लिए उचित सीमा से अधिक बोझ बनी हुई है। तेल पूल खाता देश में उपभोक्ताओं को एक समान तथा स्थिर मूल्य प्रदान करने तथा तेल कंपनियों के लिए उचित लाभ बनाए रखने के लिए बनाया गया है। इसे लम्बी अवधि के लिए स्वत: संतुलित माना जाता है। तेल कंपनियों का संचयी बकाया 31 मार्च, 1996 को 5700 करोड़ रुपये था।

तेल पूल खाते से तेल कंपनियों के बढ़ते हुए बकाया का तेल कंपनियों की वित्तीय स्थिति पर विपरीत प्रभाव पड़ रहा है और उन्हें नगदी की भारी कमी का सामना करना पड़ रहा है जिस कारण उन्हें भारी ऋण लेने को बाध्य होना पड़ रहा है।

पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस मंत्रालय ने पांच वर्ष की अवधि में तेल क्षेत्र का पूर्णतया विनियंत्रण करने के लिए योजनाओं को अंतिम रूप दिया है।

समस्या-ग्रस्त क्षेत्र

तेल क्षेत्र के मुख्य समस्या-ग्रस्त क्षेत्र, जिनके संबंध में कतिपय संगत प्रश्न उठते हैं जिन पर शीघ्र कार्यवाही करने की आवश्यकता है, निम्नलिखित हैं:

(क) तेल और तेल उत्पादों के आयात पर भारत की अत्यधिक और बढ़ती हुई निर्भरता से अंतर्राष्ट्रीय तेल मूल्यों में संशोधन करने की गुंजाइश है।

(ख) घरेलू कच्चे तेल का उत्पादन कुछ वर्षों से स्थिर है और यह कम भी हो गया है। हम अपने तेल संसाधनों का बेहतर प्रयोग किस प्रकार करें?

(ग) 1980 से शुरू होने वाले दशक में बाम्बे हाई में प्राप्त किये गये तेल क्षेत्र के पश्चात् हमें कोई अन्य मुख्य तेल क्षेत्र प्राप्त नहीं हुआ है। हम भारत में तेल की खोज के लिए आने हेतु विदेशी कम्पनियों को भी आकर्षित नहीं कर सके हैं। ऐसा क्यों है और हमें क्या करना चाहिए? पूर्वोत्तर क्षेत्र में दोहन करने के प्रयास क्यों नहीं किये जाते हैं?

(घ) इससे सरकारी वित्त पर बोझ भी पड़ता है। क्या हम तेल मूल्य प्रणाली में सुधार कर सकते हैं?

वर्ष 1992-97 के दौरान तेल और गैस उत्पादन क्रमश: 160 मिलियन टन तथा 100 बिलियन घन मीटर होने का अनुमान था, जबकि आठवीं योजना का लक्ष्य क्रमश: 197.32 मिलियन टन और 125.42 बिलियन घन मीटर था। यह कमी बम्बई अपतट बेसिन में तेल भंडारों की अनिश्चितता की स्थिति, पूर्वोत्तर क्षेत्र में समस्याओं और संयुक्त उद्यम परियोजनाओं के कार्यान्वयन में विलम्ब होने के कारण है। वर्ष 2001-2002 में तेल के लिए आयात निर्भरता बढ़कर 65-70 प्रतिशत हो सकती है जबकि इस समय यह लगभग 55 प्रतिशत है।

निम्नलिखित क्षेत्रों पर विशेष ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है:

- तेल की खोज करने के प्रयासों में तेजी लाना, विशेष रूप से गहरे अपतट क्षेत्रों में। अन्य देशों में क्षेत्रों के अर्जन की संभावनाओं का भी पता लगाया जाना चाहिए।
- तेल भंडारों के प्रबंधन में सुधार करना और तेल प्राप्ति में वृद्धि करना।
- सरकारी मूल्य तन्त्र को युक्तिसंगत बनाना जिसमें आपूर्ति की लागत परिलक्षित की गई हो।
- प्रतिस्पर्धात्मक दरों पर प्राकृतिक गैस आयात करने की संभावना, विशेष रूप से तटीय स्थलों पर तरल प्राकृतिक गैस के रूप में।

(तीन)

परिवहन

परिवहन विकास प्रक्रिया के लिए आवश्यक एक महत्वपूर्ण आधारभूत सुविधा है। यह क्षेत्र पूंजी प्रधान है। इस क्षेत्र में परियोजनाओं से कम लाभ मिलता है और इन्हें तैयार करने में अधिक समय लगता है। भारत में इस क्षेत्र में ऊर्जा के एक बड़े भाग की खपत विशेष रूप से पेट्रोलियम उत्पादों की होती है। आर्थिक और जनसंख्या वृद्धि; तेजी से हो रहे औद्योगिकीकरण, शहरीकरण और कृषि विकास के साथ इस क्षेत्र पर दबाव और बढ़ जाने की संभावना है। आर्थिक कार्यकलाप को बनाये रखने तथा रोजगार अवसरों के सृजन में परिवहन महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वर्ष 1990-91 में भारत में कुल सकल घरेलू उत्पाद में इस क्षेत्र का अंशदान लगभग 4.55 प्रतिशत था। राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में परिवहन की भूमिका अधिक महत्वपूर्ण होती जा रही है।

रेलवे क्षेत्र

भारतीय रेल व्यवस्था अब 140 वर्षों से भी अधिक पुरानी हो गई है जिसका रेल मार्ग नेटवर्क 62,915 किलोमीटर है और यह देश में परिवहन का प्रमुख साधन है। भारतीय रेल प्रणाली एकल प्रबन्ध के अन्तर्गत विश्व में दूसरी सबसे बड़ी प्रणाली है। वर्ष 1995-96 में, रेलगाड़ियों में प्रतिदिन 11 मिलियन से भी अधिक यात्रियों ने सफर किया तथा रेल द्वारा प्रतिदिन एक मिलियन टन से भी अधिक माल की ढुलाई की गई और ऐसा 62,915 किलोमीटर से भी अधिक फैले मार्ग के अन्तर्गत किया गया जिसके अन्तर्गत 7,068 स्टेशन आते हैं।

भारत में स्वतंत्रता के पश्चात् अब तक रेल परिवहन में वृद्धि काफी प्रभावशाली रही है जैसाकि सेवा, कार्य-निष्पादन; प्रारंभिक यात्रियों की संख्या और यात्री किलोमीटर तथा प्रारंभिक माल टन भार तथा प्रति किलोमीटर ढोये गये टन भार से संबंधित दो मूल सूचकांकों में हुई वृद्धि से देखा जा सकता है।

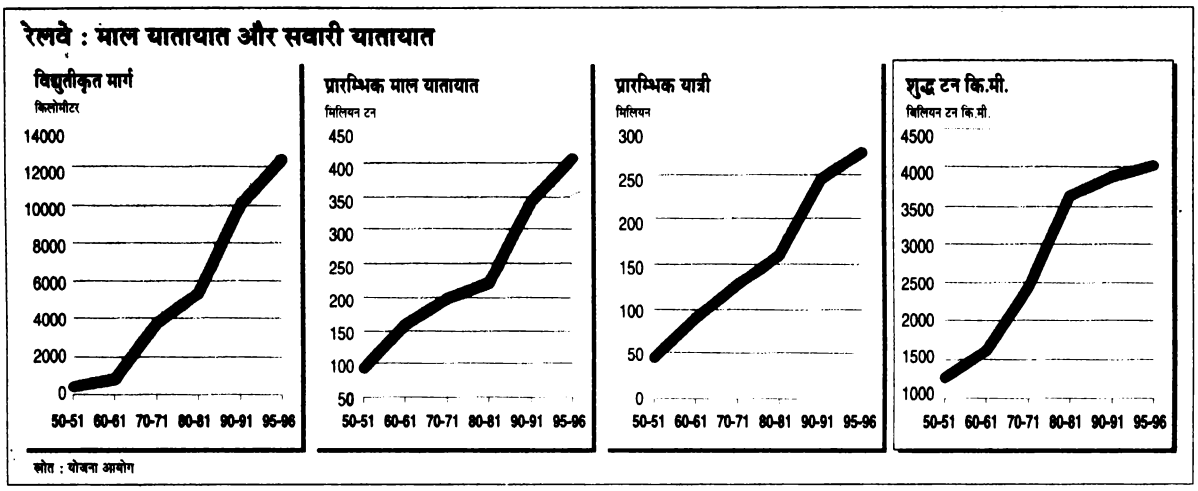

तालिका 3.7

रेलवे : वास्तविक कार्यक्रम और उपलब्धियाँ

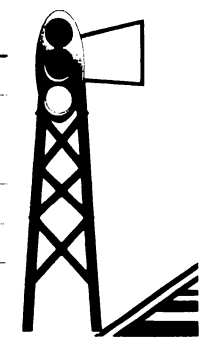

मद	1950-51	1960-61	1970-71	1980-81	1990-91	1995-96
रेल मार्ग की लम्बाई (किलोमीटर)	53596	56247	59790	61240	62367	62915
विद्युतीकृत रेल मार्ग की लम्बाई (किलोमीटर)	388	748	3706	5345	9968	12306
प्रारम्भिक माल यातायात (मिलियन टन)	93.0	156.2	196.5	220.0	341.4	405.5
निवल टन किलोमीटर (बिलियन टन किलोमीटर)	44.12	87.68	127.36	158.47	242.70	273.52
प्रारम्भिक यात्री (मिलियन)	1248	1594	2431	3613	3858	4018

स्रोत : योजना आयोग

विगत में, माल भाड़ा परिवहन उत्पादन (निवल टन किलोमीटर में पाया गया) में लगभग 6.20 गुणा वृद्धि हुई है, यात्री उत्पादन (गैर-उपनगरीय यात्री किलोमीटर) में लगभग 4.50 गुणा वृद्धि हुई है जबकि रेल नेटवर्क में मार्ग किलोमीटर को ध्यान में रखते हुए केवल लगभग 1.17 गुणा और रेल पटरी किलोमीटर को ध्यान में रखते हुए 1.36 गुणा की वृद्धि हुई है। परिवहन उत्पादन में यह महत्वपूर्ण वृद्धि उपलब्ध परिसम्पत्तियों के अधिक सघन उपयोग, उनकी उत्पादकता में सुधार करके और प्रौद्योगिकी को उन्नत बनाकर की जा सकी है। यह नीचे दी गई तालिका में देखी जा सकती है:

तालिका 3.8

यातायात आउटपुट और इनपुट की वृद्धि के सूचकांक (1950-51 = 100)

वर्ष	यातायात आउटपुट का सूचकांक		निवेश इनपुट का सूचकांक				
	माल यातायात (एन.टी. किलोमीटर)	यात्री यातायात (गैर-उपनगरीय यात्री कि.मी.)	माल डिब्बा क्षमता	सवारी डिब्बे	मार्ग कि.मी.	चालू रेलपथ कि.मी.	रेल इंजनों के कर्षणात्मक प्रयास
1950-51	100	100	100	100	100	100	100
1960-61	199	110	152	154	105	107	144
1970-71	289	159	226	188	112	121	178
1980-81	359	279	269	210	114	128	201
1990-91	550	394	278	219	116	133	192
1991-92	582	419	286	225	117	133	194
1992-93	585	400	285	231	117	134	194
1993-94	583	389	273	233	117	134	188
1994-95	573	419	260	229	117	134	196
1995-96	620	448	256	227	117	136	196

स्रोत : भारतीय रेल : वार्षिकी पुस्तक 1995-96

नीति संबंधी प्रारम्भिक उपाय

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद रेलवे द्वारा प्रभावकारी वृद्धि उपयुक्त नीति संबंधी किये गये प्रारम्भिक उपायों तथा योजना प्रक्रिया द्वारा ही प्राप्त की जा सकी है। स्वतंत्रता के बाद बुनियादी और भारी उद्योगों के विकास पर बल दिये जाने से इन उद्योगों के लिए कच्चा माल और तैयार उत्पादों को ले जाने का मुख्य दायित्व रेलवे पर आ गया है। योजना अवधि में ले जाये जाने वाले इस प्रकार के यातायात में हुई वृद्धि की मात्राओं को ध्यान में रखते हुए रेल क्षमताओं के विस्तार के लिए योजनाएं बनाई गई हैं। रेलवे को अपनी उपलब्ध क्षमताओं के अन्तर्गत विकास परियोजनाओं में संबंधित कच्चे माल और खाद्यान्न जैसी आवश्यक वस्तुओं की ढुलाई को उच्च प्राथमिकता देनी होगी, जोकि अधिक भाड़ा देने वाली वस्तुओं की तुलना में अपेक्षाकृत कम भाड़ा देने वाली वस्तुएं हैं।

पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत अधिकतर निवेश वर्तमान रेल प्रणाली की क्षमता को बनाए रखने/उसमें वृद्धि करने के कार्यों पर किया गया है जिसमें कि देश के आर्थिक विकास के कारण रेल यातायात की मांग को पूरा किया जा सके और नए क्षेत्रों में रेलवे प्रणाली के विस्तार पर बहुत ही कम निवेश किया गया है। शुरू में नई रेल लाइनें इस दृष्टि से बिछाई गई थीं जिससे कि उन्हें कोयला जैसे बुनियादी उद्योगों के विकास के साथ जोड़ा जा सके। कुछ रेल लाइनें नये क्षेत्रों को विकसित किये जाने के लिए बिछाई गई थीं।

वर्ष 1950-1960 के दशकों मे रेलवे में पर्याप्त प्रौद्योगिकी का हस्तान्तरण हुआ। मुख्य परिवर्तन जो आया वह था भाप इंजनों के स्थान पर डीजल इंजनों का चलन और दो-धुरी के 20 टन की क्षमता वाले माल ढुलाई वैगनों के स्थान पर चार धुरी वाले 60 टन वाले वैगनों का चलन और वैक्यूम ब्रेकिंग प्रणाली को आरंभ करना। इलैक्ट्रानिक संचार साधनों और सिगनल प्रणाली के साथ इस प्रौद्योगिकीय सुधार से अधिक संख्या में यात्रियों का आना-जाना संभव हो सका है साथ ही बढ़ती हुई मांग के अनुसार अधिक माल को लाने ले जाने की भी क्षमता बढ़ी। लागत कम करने और कार्य क्षमता सुधारने के उद्देश्य से भारतीय रेलवे सभी रेल मार्गों पर परिवर्तन कर डीजल और बिजली के इंजन चलाने की अपनी नीति पर कार्य कर रही है। अधिक घनत्व वाले मार्गों के विद्युतीकरण द्वारा प्रदूषण मुक्त प्रणाली को लाया जाना इसकी एक बड़ी उपलब्धि है। जहां तक माल ढुलाई का संबंध है भाप के इंजनों को बिल्कुल हटा दिया गया है।

31 मार्च, 1996 तक भारतीय रेल के कुल कि.मी. मार्ग में से लगभग 20 प्रतिशत का विद्युतीकरण कर दिया गया। कुल विद्युतीकृत कि.मी. मार्ग में से 1379 कि.मी. उप-नगरीय सेक्शन का है और शेष 11,496 अधिक घनत्व वाले माल ढुलाई वाले मार्गों का है। आज मुम्बई, कलकत्ता, नई दिल्ली और चेन्नई को जोड़ने वाले प्रमुख सात लम्बे मार्गों में से पांच मार्गों का पूर्ण विद्युतीकरण किया जा चुका है और शेष दो में कार्य प्रगति पर है।

भारतीय रेल में कई प्रकार की आयात प्रणाली विद्यमान है, नामत: बड़ी लाइन, छोटी लाइन और संकीर्ण लाइन। 1992-93 तक नीति यह थी कि आमान परिवर्तन यह देखते हुए किया जाता था कि जहां यातायात की अधिकता हो और इससे रेलान्तरण के स्थान पर बहुत अधिक माल इकट्ठा हो जाता था और अनेक कठिनाइयां उठानी पड़ती थीं। वर्ष 1992-93 में जब एकल लाइन परियोजना शुरू की गई तो आमान परिवर्तन के संबंध में रेल नीति में महत्वपूर्ण परिवर्तन आया। इसका उद्देश्य था व्यस्त लम्बे मार्गों पर जिन पर बहुत अधिक भीड़-भाड़ है भीड़-भाड़ को कम करने के लिए वैकल्पिक मार्ग स्थापित कर यातायात क्षमता बढ़ाना और ऐसे क्षेत्रों में जो विकास की दृष्टि से उपयोगी है शीघ्र और बिना किसी बाधा के संचार व्यवस्था उपलब्ध करना।

सामान्यत: नई रेलवे लाइन परियोजनाएं बजटीय समर्थन द्वारा ऋण पूंजी से शुरू की जाती हैं। सातवीं पंचवर्षीय योजना में पहली बार एक नया प्रयोग किया गया जिसका उद्देश्य था बाजार से ऋण लेकर कन्टेनर कारपोरेशन आफ इंडिया लि. (सी. ओ. एन. सी. ओ. आर.) के निर्माण के लिए धन प्रदान करना तथा ऐसे निगम की स्थापना करना था जिसमें इक्विटी का हिस्सा रेलवे और लाभार्थी राज्यों के बीच बांटा जाए।

पिछले दशक में भारतीय रेल द्वारा आधुनिकीकरण के लिए किए गए प्रयासों में एक प्रमुख है कम्प्यूटरों का प्रगतिशील प्रयोग। कम्प्यूटरों का कोयला एकाउंटिंग सिस्टम, माल-सूची, कंट्रोल, उत्पादन एककों में प्रबन्धन, सूचना सिस्टम, परिचालन नियंत्रण कक्ष, यात्री टिकटों के आरक्षण और हाल में माल-ढुलाई कार्यों में प्रयोग किया जा रहा है।

समस्याएं

माल भाड़े की ढुलाई में रेलवे की कम होती सहभागिता

प्रभावशाली उपलब्धियों के बावजूद रेलवे का विकास राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की बढ़ती मांग के अनुकूल नहीं है। इसके परिणामस्वरूप कुल यातायात में रेलवे की सहभागिता में कमी आई है। माल यातायात के संबंध में 1950-51 में जहां रेलवे की सहभागिता 88 प्रतिशत थी वह 1991-92 में कम होकर 47 प्रतिशत रह गयी। 2000 ई. तक माल-भाड़ा यातायात में रेलवे की सहभागिता 35 प्रतिशत तक कम हो जाने की संभावना है। यह चिंता का विषय है क्योंकि रेलवे की कार्य क्षमता अधिक है और यह सुरक्षित यातायात का एक साधन है। कुल यातायात में रेलवे की सहभागिता कम होने का कारण बढ़ती मांग को पूरा करने के लिए रेलवे द्वारा अतिरिक्त क्षमता पैदा न कर पाना है। रेलवे की अपर्याप्त क्षमता का मुख्य कारण इस क्षेत्र में कम निवेश करना है।

ह्रासोन्मुख बजटीय समर्थन

योजना परिव्यय के संबंध में रेलवे बजटीय समर्थन पांचवीं योजना में 75 प्रतिशत से कम होकर आठवीं पंचवर्षीय में लगभग 22 प्रतिशत रह गया है। रेल परियोजनाओं को वित्त देने के लिए बाजार से ऋण लेने की बढ़ती निर्भरता के कारण ऋणों को चुकाने

के लिए अपेक्षित राजस्व में निरन्तर वृद्धि को बढ़ावा मिला है। पूंजी बाजार से ऋण लेने की ऊंची लागत के कारण रेलवे में निवेश में कमी आई है।

योजना परिव्यय में रेलवे के लिए कम होते हिस्से से यह बात स्पष्ट है। कुल योजना परिव्यय के प्रतिशत के रेलवे का हिस्सा 1950-74 (अर्थात् चौथी योजना तक 10.3 प्रतिशत से कम होकर आठवीं योजना 1992-97) में 6.3 प्रतिशत रह गया है।

दो तरफा (क्रॉस) राजसहायता

विभिन्न समितियों द्वारा बार-बार बल देने के बावजूद, रेलवे अपने कार्यों में बड़े पैमाने पर दो तरफा राजसहायता देता रहा है। यात्री यातायात कुल यातायात का 60 प्रतिशत बैठता है और इससे होने वाली आय केवल 28 प्रतिशत है। बजटीय समर्थन में लगातार कमी और दो तरफा राजसहायता के कारण निवेश के लिए संसाधनों को पैदा करने की रेलवे की क्षमता को कम कर दिया है।

सामाजिक दायित्व में वृद्धि

चिंता का एक अन्य विषय है ब्रांच लाइनों के चलाए जाने, बहुत सी उपभोक्ता वस्तुओं के कम दरों पर लाने ले जाने आदि के कारण रेलवे का बढ़ता दायित्व रेलवे पर बढ़ते सामाजिक दायित्व से भी निवेश की क्षमता कम हुई है।

रेलवे के सामने आ रही समस्याओं के बावजूद इसका कार्य निष्पादन काफी संतोषजनक रहा है। नीचे दी गई तालिका विश्व में अन्य विकासशील देशों की तुलना में भारतीय रेल के कार्य क्षमता संबंधी पैरामीटरों को दर्शाती है:-

तालिका 3.9

कार्यक्षमता संबंधी पैरामीटर
(अन्तर्राष्ट्रीय कम्पनियाँ)

देश	वर्ष	टी.यू. प्रति लाइन (000) कि.मी.	एन.टी. कि.मी. प्रति (000) वैगन	डीजल लोको उपलब्धता (प्रतिशत)
भारत	1994	9154	866	89
चीन	1994	29743	3185	82
बांग्लादेश	1992	2209	47	74
श्रीलंका	1994	2250	61	शून्य
पाकिस्तान	1994	2544	203	78
मलेशिया	1994	1546	338	80
इंडोनेशिया	1994	3481	357	78

स्रोत : रेलवे बोर्ड (भारत सरकार)

सड़क यातायात क्षेत्र

पिछले दशकों में सड़क यातायात, भारत में माल ढुलाई और यात्री यातायात के प्रमुख साधन के रूप में उभरा है। पिछले वर्षों में माल और यात्रियों को लाने ले जाने में सड़कों के योगदान में बहुत वृद्धि हुई है। 1950-61 में सड़कों से केवल 12 प्रतिशत माल की ढुलाई और 26 प्रतिशत यात्री यातायात हुआ। वर्ष 1995-96 तक सड़कों द्वारा माल की कुल आवाजाही में 60 प्रतिशत वृद्धि हुई और यात्री यातायात में 80 प्रतिशत की वृद्धि हुई। 1995-96 में किए आर्थिक सर्वेक्षण के अनुसार, वर्ष 2000 तक इस अनुपात के माल ढुलाई में 65 प्रतिशत और यात्री यातायात में 87 प्रतिशत तक बढ़ने की आशा है।

नेटवर्क की तुलना में यातायात

सड़क यातायात में प्रतिवर्ष 10 प्रतिशत तक वृद्धि हो रही है और इससे राष्ट्रीय राजमार्गों और राज्य राजमार्गों पर भारी दबाव बढ़ा है। सड़क यातायात बढ़ने से वाहनों की कुल संख्या 1951 में 0.3 मिलियन से बढ़कर 1994 में 25.3 मिलियन हो गई है। यह अनुमान लगाया गया है कि वर्ष 2001 तक पंजीकृत वाहनों की संख्या 54 मिलियन तक हो जायेगी।

तथापि, राष्ट्रीय राजमार्गों और राज्य राजमार्गों दोनों को मिलाकर मुख्य सड़क नेटवर्क इस बढ़ते हुए यातायात के लिए पर्याप्त नहीं है। राष्ट्रीय राजमार्ग प्रणाली देश की मुख्य आन्तरिक परिवहन प्रणाली है। इस प्रणाली के अन्तर्गत सड़क की कुल लम्बाई 34000 कि.मी. है जो कि कुल सड़क मार्ग से केवल 2 प्रतिशत कम है जबकि यह कुल यातायात का लगभग 40 प्रतिशत यातायात वहन करती है। राष्ट्रीय राजमार्गों का विस्तार 1951 के 20,000 किलोमीटर से बढ़कर 1995 में 34,000 किलोमीटर हो गया जो केवल 55 प्रतिशत के लगभग है जबकि राज्य राजमार्गों का विस्तार 1951 के 60,000 किलोमीटर से बढ़कर 1995 में 1,31,000 किलोमीटर हो गया जो कि 118 प्रतिशत है।

गुणवत्ता के आधार पर मुख्य सड़कें भी बढ़ती हुई यातायात के मांगों के अनुरूप नहीं बढ़ सकीं। राष्ट्रीय और राज्य राजमार्गों की कुल 1,65,000 किलोमीटर की लम्बाई का मात्र दो प्रतिशत चार लेन वाली और 34 प्रतिशत दो लेन वाली सड़कें हैं जबकि 64 प्रतिशत एकल लेन वाली सड़कें हैं।

सड़कों के अपर्याप्त नेटवर्क के परिणामस्वरूप परिवहन लागत में वृद्धि हुई है जिससे भारतीय अर्थव्यवस्था को अंतर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धात्मकता में धक्का लगा है। मुख्य सड़कों की खराब दशा के कारण हुई आर्थिक हानि का लगभग 200 से 300 बिलियन प्रति वर्ष होने का अनुमान लगाया गया है।

राष्ट्रीय और राज्य राजमार्गों की मुख्य सड़कों को सुदृढ़ करने और इसकी क्षमता को बढ़ाये जाने की आवश्यकता है। सड़कों के रखरखाव की, उनके दर्जा उन्नयन और विस्तार से अधिक महत्वपूर्ण है। भारतीय सड़क प्रणाली में सड़कों का रखरखाव एक उपेक्षित पहलू रहा है। भारी लागत से बने इस बड़े सड़क नेटवर्क की दशा खराब होती जा रही है। यह देखा गया है कि रखरखाव की आम आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए

सामान्यतया 50 से 60 प्रतिशत से अधिक धनराशि उपलब्ध नहीं हो पाती है।

चुने गए कुछ देशों के क्षेत्र और उनकी जनसंख्या के अनुरूप सड़क की लम्बाई निम्नलिखित है:—

तालिका 3.10

क्षेत्र और जनसंख्या के अनुरूप चुने गए देशों के सड़क की लम्बाई 1994

देश	कुल लम्बाई (किलोमीटर में)	क्षेत्र वर्ग (किलोमीटर)	जनसंख्या (लाख में)	प्रति 100 वर्ग किलोमीटर के क्षेत्र में सड़क की लम्बाई	प्रति दस लाख की जनसंख्या पर सड़क की लम्बाई
अफ्रीका					
मिस्र	52000	1001449	59.68	5.20	871.31
मोरोक्को	59790	710781	26.07	8.41	2293.44
जाम्बिया	37359	752618	-	4.96	-
दक्षिण अफ्रीका (ग)	182329	1123226	31.24	16.23	5836.40
एशिया और मध्य पूर्व					
भारत (ङ)	3015229	3287263	844.32	91.72	3571.19
इंडोनेशिया (ख)	244164	2027087	179.38 (क)	12.05	-
जापान	1137453	377801	125.00	301.07	9099.62
मलेशिया	-	330434	18.61 (ग)	-	-
पाकिस्तान	204346	796095	126.61	25.67	1613.98
यूरोप					
आस्ट्रिया	200000	83859	8.04	238.50	24875.62
बेल्जियम	140978	30519	10.10	461.94	13958.22
फ्रांस	812550	551000	57.80	147.47	14057.96
पश्चिम जर्मनी	639805	248694	81.34	257.27	7865.81
ब्रिटेन (घ)	366477	229988	56.56	159.35	6479.44
अमेरिका					
संयुक्त अमेरिका (क)	6284039	9809418	259.16	64.06	24247.72
मेक्सिको (घ)	245433	1969269	84.50	12.46	2904.53
ब्राजील (घ)	1824364	8511965	-	21.43	-
कनाडा (ग)	901903	9970610	27.30	9.05	33036.74
ओसिआनिया					
आस्ट्रेलिया (क)	810264	7683000	17.66	10.55	45881.31
न्यूजीलैंड (घ)	92308	270534	8.52	34.12	26223.30

टिप्पणी : (क) वर्ष 1990 से संबंधित (ख) वर्ष 1991 से संबंधित (ग) वर्ष 1992 से संबंधित (घ) वर्ष 1993 से संबंधित (ङ) वर्ष 1995 से संबंधित
स्रोत : योजना आयोग

उपर्युक्त तालिका से यह पता चलता है कि क्षेत्र और जनसंख्या की दृष्टि से सड़क की लम्बाई में भारत अनेक विकासशील देशों से पीछे है। तथापि कुल सड़क लम्बाई में भारत का दूसरा स्थान है। यह हमारे देश के आकार और जनसंख्या के परिणामस्वरूप है।

देश के समग्र आर्थिक विकास और यातायात के विस्तार के अनुरूप राष्ट्रीय राजमार्गों की क्षमता और गुणवत्ता में वृद्धि की जानी चाहिए। सड़क नेटवर्क में व्याप्त खामियों के परिणामस्वरूप सुरक्षा जोखिमों के अतिरिक्त परिवहन लागत में वृद्धि हुई है। अत: इन राजमार्गों की क्षमता में वृद्धि और उनके संरचनात्मक उन्नयन की आवश्यकता है।

सड़कों के विकास के लिए धनराशि

उत्तरोत्तर पंचवर्षीय योजनाओं में सड़क क्षेत्र हेतु धन में लगातार कमी की गई है। पहली पंचवर्षीय योजना में सड़कों हेतु आबंटित धन कुल सरकारी क्षेत्र हेतु उपलब्ध राशि का 6.7% था जो आठवीं पंचवर्षीय योजना में घटकर 3% मात्र रह गया है। राष्ट्रीय राजमार्गों के मामले में जहां पहली पंचवर्षीय योजना के दौरान कुल योजना राशि के 1.4% का निवेश होता था वह घटकर आठवीं पचवर्षीय योजना के दौरान सरकारी क्षेत्र हेतु कुल राशि का 0.6% मात्र रह गया है।

पूरे विश्व में सड़क निर्माण और सड़कों के आधारभूत ढांचे की गुणवत्ता को बनाए रखने हेतु निम्नलिखित चार स्रोत उपयोग

में लाये जाते हैं। भारत में, उनमें से पहले का ही अभी उपयोग किया गया है।

सामान्य राजस्व के रूप में विद्यमान उपभोक्ता करों द्वारा एकत्र की गई धनराशि में से आबंटन भारत द्वारा सड़कों पर किया जाने वाला व्यय, सड़क करों और तत्संबंधी करों के माध्यम से प्राप्त राजस्व का एक तिहाई है।

विशिष्ट उपभोक्ता यातायात शुल्क लगाकर इसके लिए अलग से कोष बनाना/उगाहना।

"उपभोक्ता शुल्क" के आधार पर वाणिज्यिक और बहुपक्षीय ऋण लेकर राजमार्गों का विकास और रखरखाव।

निजी क्षेत्र की भागीदारी

किये जाने वाले कार्य की विशालता तथा इस उद्देश्य के लिए अपेक्षित भारी धनराशि सरकारी क्षेत्र की क्षमता के बाहर की बात है। इसलिए राष्ट्रीय राजमार्ग अधिनियम में संशोधन कर निजी क्षेत्र को निर्माण, परिचालन और अंतरण (बीओटी) के द्वारा निर्माण, रखरखाव, और सड़क परिचालन में भागीदारी देकर उन्हें शुल्क या कर उगाही की अनुमति देनी चाहिए। अभी तक, निजी क्षेत्रों द्वारा सड़क क्षेत्र के प्रति उत्साह कम रहा है। निजी क्षेत्र अनियंत्रणीय प्रशासनिक विलम्ब और प्राधिकारियों द्वारा संगत और वचनबद्ध नीतियों के अभाव के परिणामस्वरूप निवेश लागत वृद्धि से कम या अनिश्चित वापसी के प्रति चिंतित दिखते हैं।

एक आकलन के अनुसार राष्ट्रीय, राज्य और सुपर राष्ट्रीय राजमार्गों के विकास और विस्तार हेतु आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए वर्ष 1996-97 से 2000-01 तक 320 बिलियन रुपए और वर्ष 2001-02 से 2005-06 तक 360 बिलियन अतिरिक्त धन की आवश्यकता होगी। हम इतनी भारी धनराशि का इंतजाम कहां से करेंगे?

नागर विमानन क्षेत्र

अतीत में 1953 तक

वर्ष 1946 में भारतीय वायु मार्ग परिवहन उद्योग में, टाटा एयरलाइन्स और इंडियन नेशनल एअरवेज शामिल थे जो छोटे होते हुए भी, सुसंगठित और व्यावसायिक दृष्टि से सक्षम थे। 1947 के मध्य तक ग्यारह कम्पनियों को वायुयान परिचालन हेतु 51 मार्गों पर अस्थायी लाइसेंस जारी किये गये थे। नये लाइसेंस प्राप्त एयरलाइंस संगठन, उपकरण आदि की कमी होने के परिणामस्वरूप वे पर्याप्त मात्रा में सुरक्षा और दक्षता प्रदान करने में अक्षम थीं। इस गंभीर स्थिति को देखते हुए, जिसमें भारतीय वायुयान परिवहन उद्योग को रखा गया था, सरकार ने इसका पूरी तरह राष्ट्रीयकरण करने का निर्णय लिया और मार्च, 1953 में संसद ने वायु निगम अधिनियम पारित किया जिसके अंतर्गत 1 अगस्त, 1953 से एयर इंडिया इंटरनेशनल और इंडियन एयरलाइन्स का सरकारी क्षेत्र निगमों के रूप में निर्माण किया गया।

निजी क्षेत्र का प्रवेश

अप्रैल 1990 में नागर विमानन क्षेत्र ने खुली आकाश नीति के अंतर्गत मालवाहक विमानों के लिए निजी क्षेत्र को इसमें प्रवेश की अनुमति दी। इस नीति के अंतर्गत इंटरनेशनल एयरलाइन्स को बिना किसी रोकटोक के मालवाहक विमानों को उड़ानों की अनुमति दी गई। एअर टैक्सी ओपरेटर योजना शुरू करके नागर विमानन के निजीकरण को और प्रोत्साहन दिया गया। तत्पश्चात्, 1994 में वायु निगम अधिनियम के निरसन से इंडियन एयरलाइन्स, एअर इंडिया और वायुदूत द्वारा नियत वायुयान परिवहन सेवा के एकाधिकार का अंत हो गया। अब तक सात निजी टैक्सी ओपरेटरों को नियमित एयरलाइन्स का दर्जा दिया गया है।

इस समय 21 एयर टैक्सी आपरेटर हैं जो 34 वायुयानों के साथ 120 प्लस श्रेणी के चार्टर/गैर-अनुसूचित वायु सेवाओं का प्रचालन करते हैं।

उदारीकरण

मंत्रिमंडल द्वारा 1 अप्रैल, 1997 को अनुमोदित संशोधित नागर विमानन नीति में सरकार ने घरेलू वायु परिवहन सेवाओं में विदेशी सहभागिता को 40 प्रतिशत तक और एन.आर.आई./ ओ.सी.बी. को 100 प्रतिशत निवेश की अनुमति दी है। घरेलू वायु परिवहन सेवा में विदेशी एयरलाइनों द्वारा प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से पूंजी निवेश की अनुमति नहीं है। इस क्षेत्र में आने और क्षेत्र से हट जाने संबंधी बाधाओं को दूर किया गया है और सूचीबद्ध प्रचालकों के लिए न्यूनतम वायुयानों की संख्या वर्तमान 3 से बढ़ाकर 5 कर दी गई है।

विमानपत्तन प्रबन्धन : कुछ संरचनात्मक परिवर्तन

विमानपत्तन प्राधिकरण अधिनियम, 1994 के अधिनियमन के साथ दो विमानपत्तन प्राधिकरणों, अर्थात् भारतीय अन्तर्राष्ट्रीय विमानपत्तन प्राधिकरण (आई.ए.ए.आई.) और राष्ट्रीय विमान-पत्तन प्राधिकरण (एन.ए.ए.) को, जिनका कार्य क्रमश: अंतर्राष्ट्रीय विमान पत्तनों और घरेलू विमानपत्तनों (रक्षा विमानपत्तनों में सिविल एन्क्लेवों सहित) का प्रबन्ध और विकास करना था, एक संयुक्त प्राधिकरण अर्थात् भारतीय विमानपत्तन प्राधिकरण (ए.ए.आई.) में मिला दिया गया और इस प्रकार एक नए प्राधिकरण की स्थापना की गई। दिनांक 25 मई, 1993 से वायुदूत लिमिटेड को इंडियन एयरलाइन्स में मिला दिया गया।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् की गई प्रगति

देश में सिविल विमानपत्तनों की संख्या जोकि 1951 में 62 थी अब बढ़कर 92 हो गयी है।

दो राष्ट्रीय एयरलाइनों का 1953 से विकास इस प्रकार हुआ है:

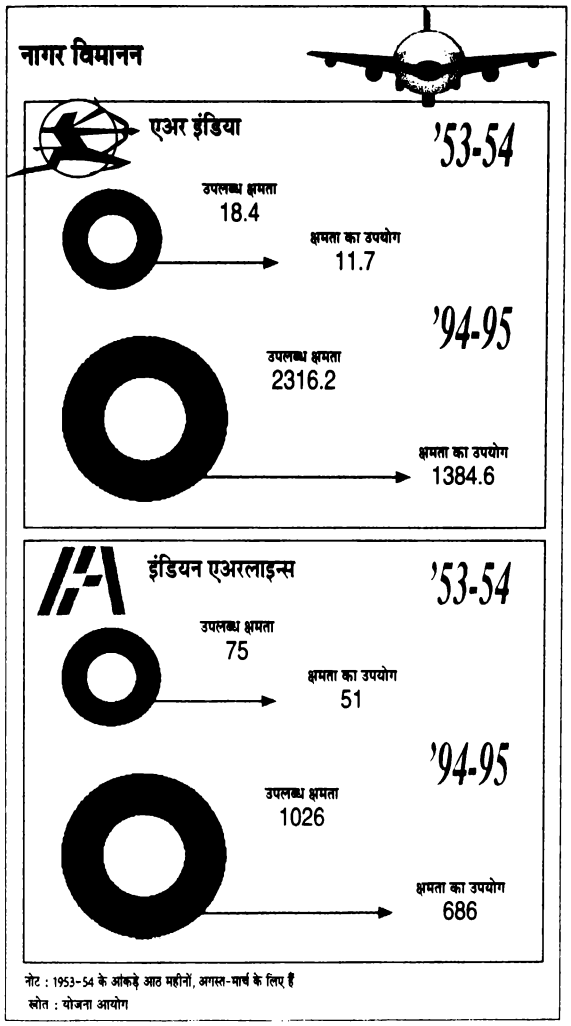

नोट : 1953-54 के आंकड़े आठ महीनों, अगस्त-मार्च के लिए हैं
स्रोत : योजना आयोग

तालिका 3.11

एयर इंडिया

	1953-54*	1994-95
उपलब्ध क्षमता *(उपलब्ध टन किलोमीटर मिलियन)*	18.4	2316.2
उपयोग में लाई गई क्षमता (राजस्व टन *किलोमीटर मिलियन)*	11.7	1384.6

इंडियन एयरलाइन्स

	1953-54*	1994-95
उपलब्ध क्षमता *(उपलब्ध टन किलोमीटर मिलियन)*	75	1026
उपयोग में लाई गई क्षमता (राजस्व टन *किलोमीटर मिलियन)*	51	686

*अगस्त 1953-मार्च 1954 आठ महीनों के आंकड़े
स्रोत : योजना आयोग

भारत को अन्य विकासशील देशों की तुलना में नागर विमानन के क्षेत्र में एक प्रमुख स्थान प्राप्त है। इसके दो राष्ट्रीय वायुवाहकों के स्वामित्व में एक बड़ा बेड़ा है। 31 दिसम्बर, 1996 को एयर इंडिया के पास 28 वायुयानों का एक बेड़ा था। इस समय इंडियन एयरलाइन्स के बेड़े में 53 वायुयान शामिल हैं। इस समय देश में रक्षा व विमानपत्तनों पर 28 सिविल एन्क्लेवों के अतिरिक्त कुल 5 अंतर्राष्ट्रीय विमानपत्तनों सहित कुल 92 सिविल विमान-पत्तन हैं।

वर्तमान समस्याएं

पिछले कुछ वर्षों के दौरान एयर इंडिया के कार्यनिष्पादन में काफी गिरावट आई है और भारत से होकर गुजरने वाले अंतर्राष्ट्रीय वायु यातायात में इसकी भागीदारिता भी धीरे-धीरे कम हुई है जिसका आंशिक कारण अतिरिक्त वायुयान क्षमता को न बढ़ाना और आपरेशनों से कम आमदनी है। एयर इंडिया को 1995-96 से घाटा होने लगा। यह घाटा 1994-95 में 41 करोड़ रुपये के लाभ की तुलना में 1995-96 में 272 करोड़ रुपए था।

एयर इंडिया का सकल भार घटक 62 प्रतिशत जो अन्य अन्तर्राष्ट्रीय एयरलाइनों की तुलना में कम है। भारत से आरम्भ होने वाले अंतर्राष्ट्रीय यातायात में इसकी भागीदारी 1981 में 42 प्रतिशत थी जो 1991 में घटकर 35 प्रतिशत और 1994 में 20.4 प्रतिशत हो गई। फिर भी 1995 में एयर इंडिया की बाजार भागीदारिता में 22 प्रतिशत तक थोड़ा-सा सुधार हुआ है।

इंडियन एयरलाइन्स पिछले कई वर्षों से घाटा उठा रही है। इसके वित्तीय कार्यनिष्पादन में 1989-90 से ही गिरावट आनी शुरू हो गई थी। उस वर्ष से 1995-96 तक, यह एयरलाइन लगभग 1000 करोड़ रुपए का घाटा उठा चुकी है जिससे कि इसके आरक्षित निधियों का भंडार घटने लगा। इस एयरलाइन के कार्यनिष्पादन में गिरावट का प्रमुख कारण अलाभकारी मार्गों पर ए-320 वायुयान के आपरेशनों को बन्द करना और मई, 1993 में इस एयरलाइन के साथ वायुदूत को मिला देना है।

कुल 92 घरेलू/अन्तर्राष्ट्रीय/विमानपत्तनों और रक्षा विमानपत्तनों में 28 सिविल एन्क्लेवों में से केवल 35 विमानपत्तन ही लाभकारी हैं। अन्य विमानपत्तनों पर या तो यातायात नहीं है या कम यातायात है जिससे कि विमानपत्तन लाभकारी नहीं रह जाते हैं। चीन को छोड़कर, भारत में विमानपत्तन क्षमता पूर्व एशिया की तुलना में कम ही रहती है जैसाकि निम्नलिखित तालिका में दिखाया गया है:—

तालिका 3.12

विमानपत्तन क्षमता की अन्तर्राष्ट्रीय तुलना

	प्रति 1 मिलियन जनसंख्या के लिए विमानपत्तन	प्रति 1000 वर्ग कि.मी. के लिए विमानपत्तन
भारत	0.38	0.11
मलेशिया	5.83	0.35
फिलीपीन्स	3.67	0.52
सिंगापुर	3.46	15.81
दक्षिणी कोरिया	2.50	1.16
इण्डोनेशिया	2.21	0.23
थाईलैण्ड	1.74	0.20
चीन	0.17	0.02

स्रोत : विश्व बैंक राष्ट्र अध्ययन : भारत (1996)

भविष्य

वायु परिवहन में निजी क्षेत्र के निवेश सहित ज्यादा निवेश के माध्यम से बुनियादी ढांचे को सुदृढ़ किया जाना चाहिए। सुरक्षा को ध्यान में रखकर संचार और विमान यात्रा की सुविधाओं को बढ़ाया जाना चाहिए। राष्ट्रीय परिवाहकों की क्षमता को सुदृढ़ किए जाने की आवश्यकता है और बेड़े को बढ़ाने, सेवाओं को बेहतर करने और यातायात को कम करने वाले निजी क्षेत्र के प्रयासों का स्वागत किया जाना चाहिए।

क्या हमारे राष्ट्रीय परिवाहक आत्म-निर्भर बन पाएंगे और अपने प्रचालनों, सेवा और वित्तीय कार्यनिष्पादन में सुधार ला पाएंगे?

नौवहन क्षेत्र

देश के व्यापार और आर्थिक विकास के संवर्धन में नौवहन की भूमिका को विश्व के सभी समुद्रतटीय देशों ने मान्यता दी है। भारत की समुद्री सीमा 5600 किलोमीटर की है, जिसमें 11 मुख्य पत्तन और 179 गौण तथा मध्य-स्तरीय पत्तन हैं, अत: इस क्षेत्र का व्यापक महत्व है। इस समय मात्रा के हिसाब से इसके अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का 95 प्रतिशत भाग और मूल्य के हिसाब से 77% भाग समुद्र के रास्ते से हो रहा है।

भारतीय नौवहन क्षेत्र को, निर्यातोन्मुखी विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करनी है जो समग्र उदारीकरण नीति और आर्थिक व्यवस्था के परिणामस्वरूप खुलेपन के साथ अभिन्न रूप से जुड़ी है। महत्वपूर्ण आधारभूत ढांचे के रूप में नौवहन क्षेत्र की अंतर्राष्ट्रीय बाजार में निर्यात को और अधिक प्रतिस्पर्धात्मक बना कर अत्यधिक विकास करने की क्षमता है और सम्बद्ध परिवहन सुविधाएं प्रदान करके यह निर्यात के व्यय को कम कर सकता है। इसके अतिरिक्त नौवहन भुगतान सन्तुलन की स्थिति को सुधारने में, चालू खाते में विदेशी मुद्रा अर्जित करने में महत्वपूर्ण योगदान करके देश के अदृश्य निर्यात को बढ़ाता है।

महत्वपूर्ण नीतिगत पहलें

1950 में केन्द्र सरकार ने भारतीय जहाजों के माल पर लगने वाले कर के लिए समुद्रतटीय व्यापार की नीति को स्वीकार किया और मर्चेन्ट नेवी के कार्मिकों के प्रशिक्षण की जिम्मेदारी भी स्वीकार की। प्रारंभिक योजना अवधि के व्यापक उद्देश्य नीचे दिये गये हैं:—

- समुद्रतटीय व्यापार की आवश्यकताओं को पूरा करना और रेल मार्ग से नौवहन की ओर कुछ यातायात को परिवर्तित करने की संभावना का पूरा ख्याल रखना।
- भारतीय समुद्री जहाजों के लिए एक प्रगतिगामी हिस्से को प्राप्त करना और एक नाभिकीय बेड़ा तैयार करना।

योजना दर योजना महत्व दिये जाने वाले क्षेत्रों में परिवर्तन से अधिकतर ढांचागत निरन्तरता ही प्रतिबिम्बित हुई और वे परिवर्तन अन्तर्राष्ट्रीय समुद्री परिवहन वातावरण के अनुरूप भी थे। चूंकि समुद्र के किनारे स्थित देश नौ परिवहन बेड़े को किसी न किसी रूप में रियायतें देते रहते हैं अत: भारतीय नौवहन से भी यह आशा नहीं की जा सकती कि वह इनसे हटकर अलग तरह अलग ढंग से कार्य करें। समय-समय पर किये गये नीति-निर्धारणों में समुद्री निरन्तर रूप से माल मिलना वित्तीय प्रोत्साहन और प्रौद्योगिकी का उन्नयन ही मुख्य रहे हैं। आठवीं पंचवर्षीय योजना में ऐसे आधुनिक विविध समुद्र-बेड़े को प्राप्त करने पर जोर दिया गया है जो निर्यात को प्रोत्साहन देने के राष्ट्रीय उद्देश्यों को पूरा करने में समर्थ हो। अन्य उद्देश्य हैं: पुराने जहाजों को सेवा से हटाना, कम ईंधन से चलने वाले जहाज खरीद कर समुद्री बेड़े का आधुनिकीकरण करना, धीरे-धीरे सम्पूर्ण लाइसेंस प्रणाली को समाप्त करना, एफ.ओ.बी. की शर्तों पर खरीद तथा सी.आई.एच. की शर्तों पर बिक्री की नीति द्वारा भारतीय समुद्री जहाजों को सभी सरकारी विभागों/अभिकरणों का ढुलाई के लिए माल देना, पर्याप्त मरम्मत सुविधाओं का विकास करना तथा इस क्षेत्र के विदेशी मुद्रा अर्जन से जुड़े हुए वास्तविक और वित्तीय प्रोत्साहन का एकमुश्त प्रावधान करना।

वास्तविक तथा वित्तीय प्रगति

पहली पंचवर्षीय योजना के आरम्भ में भारत का टन भार 3.91 सकल पंजीकृत टन (जी. आर. टी.) था, जो निरन्तर बढ़ता हुआ छठी पंचवर्षीय योजना के अन्त में 6.32 मिलियन पंजीकृत टन हो गया। सातवीं योजना के अन्त में सकल टन भार व्यापारिक मन्दी की स्थितियों के कारण घट कर 5.91 मिलियन टन हो गया। आठवीं पंचवर्षीय योजनावधि में नौ-परिवहन क्षेत्र में आत्मविश्वास के नए दौर का आरम्भ हुआ। सातवें दशक की लम्बी व्यापारिक मन्दी के बाद, आठवीं योजना के 7 मिलियन सकल पंजीकृत टन भार के लक्ष्य को प्राप्त कर लिया गया और इस तरह यह क्षेत्र नौवहन बेड़े की स्थिर हो चुकी क्षमता की प्रवृत्ति को पलटने में सफल हो गया।

प्रथम पंचवर्षीय योजनावधि के दौरान 19 करोड़ रुपये के कुल व्यय से आरंभ होने वाले नौपरिवहन क्षेत्र में चौथी पंचवर्षीय योजना के बाद व्यापक निवेश किया गया। चौथी पंचवर्षीय योजना के दौरान कुल व्यय 155 करोड़ रुपये हो गया और फिर पांचवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान यह और अधिक बढ़कर 469 करोड़ रुपये हो गया। आठवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान 3400 करोड़ रुपये के कुल स्वीकृत योजना व्यय की तुलना में 3353 करोड़ रुपये है।

समस्याएं

भारतीय बेड़े के पोतों के कार्यकाल के विश्लेषण से कोई उत्साहजनक तस्वीर सामने नहीं आती। इनमें से अधिकतर पोत या तो अपना कार्यकाल पूरा कर चुके हैं या कार्यकाल पूरा किये जाने के कगार पर हैं। वर्ष 1987-88 में लगभग 41% तक की चरम प्रतिशतता को छूने वाला भारतीय विदेशी व्यापार में भारतीय नौवहन का अंश अब लगातार घटता चला जा रहा है। आठवीं पंचवर्षीय योजना के आरंभ में अपने विदेशी व्यापार में भारतीय ध्वज स्रोत का हिस्सा 36% था और इस योजनावधि के अंतिम

वर्ष में यह 28% रह गया। वाणिज्यिक ऋण के कड़े अन्तर्राष्ट्रीय (ई. सी. बी.) और प्रशिक्षित श्रमशक्ति का विदेशी ध्वजपोतों की ओर पलायन अन्य चिन्ता के क्षेत्र हैं।

तटीय नौवहन के विकास पर तत्काल ध्यान दिये जाने की जरूरत है। भारतीय ध्वजपोतों के लिए तटों के शत-प्रतिशत आरक्षण की नीति का दुर्वध्य परम्पराओं और प्रक्रियाओं तथा केवल तटीय नौवहन के लिए बनाए गए उपर्युक्त भारतीय पोतों की अनुपलब्धता के कारण प्रभावशाली रूप से अनुपालन नहीं किया जा सका।

भविष्य

टन भारत विस्तार योजना इस प्रकार से बनाई जानी चाहिए ताकि भारत अंतर्राष्ट्रीय समुद्री व्यापार में अपना विद्यमान हिस्सा सुरक्षित रख सके। इसके लिए इन प्रयासों की आवश्यकता है- (क) आन्तरिक आधार से संसाधन जुटाने के लिए समुचित वातावरण तैयार करना; (ख) भारत के अन्तर्राष्ट्रीय और तटीय व्यापार में टन भार क्षमता के क्षेत्रीय आवंटन को चरणबद्ध तरीके से हटाना; (ग) समुद्री जहाज के अधिग्रहण में स्वायत्ता प्रदान करना; (घ) भर्ती, प्रशिक्षण और भारतीय ध्वजपोतों की श्रमशक्ति को बनाए रखने के मुद्दों का समाधान; और (ङ) व्यापारी नौवहन अधिनियम में समुचित संशोधन करना।

बेड़े के विस्तार, तट से दूर सहायक कम्पनियों को स्थापित करने, जहाजों के दोहरे पंजीकरण तथा सीधे या संयुक्त रूप से विदेशी निवेश हासिल करने के लिए नए-नए ढंग से अपनाये जाने की आवश्यकता है। भारतीय ध्वजपोतों के बेड़े को दिये जाने वाली माल-ढुलाई प्राथमिकता और अन्य लाभ, ऐसी योजनाओं के माध्यम से प्राप्त किए गए, दूसरे जहाजों को भी दिये जाने चाहिए।

वर्तमान भीड़भाड़ को कम करने के लिए ही नहीं अपितु "हब और फीडर" प्रणाली को आगे विकसित करने के लिए कदम उठाने हेतु पत्तनों पर आधारभूत सुविधाओं को बढ़ाया जाना चाहिए ताकि उन्हें बड़े कंटेनरयुक्त जहाजों को कुशल ढंग से संचालन करने के योग्य बनाया जा सके।

पत्तन क्षेत्र

यहां 11 मुख्य पत्तन और 179 गौण/मध्य स्तरीय पत्तन हैं जो भारत के 5560 किलो मीटर लम्बे समुद्रतटीय भाग पर फैले हुए हैं। प्रमुख पत्तनों का प्रशासन केन्द्र सरकार के अधीन पत्तन न्यासों के सुपुर्द किया गया है जबकि पत्तनों के विकास का उत्तरदायित्व सम्बद्ध राज्य सरकारों में निहित है। भारत के समुद्री व्यापार का 90% व्यापार प्रमुख पत्तनों के माध्यम से होता है।

महत्वपूर्ण नीतिगत पहल

स्वतंत्रता के समय देश में प्रमुख पत्तन सघन उपयोग, समुचित रखरखाव के अभाव तथा परिसंपत्तियों के अपर्याप्त प्रतिस्थापन के कारण खराब और जीर्णशीर्ण हालत में थे। प्रारंभिक योजना का जोर सभी विद्यमान पत्तनों पर सुविधाओं को पुनर्स्थापित करना एवं उन्हें आधुनिक बनाना तथा पश्चिम प्रदेश (हिन्टरलेन्ड) की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए बेहतर अभिकल्पित नए प्रमुख पत्तनों की स्थापना करना भी था। अपेक्षित भारी निवेश, दीर्घकालिक निर्माण अवधि इससे सम्बद्ध बाजार विफलता के अनुमानों को देखते हुए पत्तन की आधारभूत संरचना के विकास में राज्य की प्रभावी भूमिका रही है। प्रमुख पत्तनों को वित्तीय स्वायत्ता देने के उद्देश्य से प्रमुख पत्तन न्यास अधिनियम 1963 बनाया गया। वर्ष 1992 से देश भर में उभरी उदारीकरण की लहर का प्रभाव पत्तन क्षेत्र पर भी पड़ा। प्रतिस्पर्द्धा और आधुनिकीकरण के युग में प्रवेश करने के उद्देश्य से पत्तन क्षेत्र को धीरे-धीरे निजी क्षेत्र की भागीदारी के लिए खोल दिया गया। इस संबंध में 1996 में व्यापक दिशा निर्देश जारी किये गये हैं और इस प्रकार बीओटी आधार पर टर्मिनल बनाने और पत्तन संबंधी सेवाएं प्रदान करने हेतु निजी क्षेत्र की भागीदारी को और सरल बना दिया गया है।

वास्तविक और वित्तीय निष्पादन

1951 से विभिन्न पत्तनों पर व्यापार में लगातार वृद्धि हुई है। 1950-51 में पांच पत्तन थे जो कुल 19.2 मिलियन टन तक का व्यापार संभालते थे; वित्त वर्ष 1976-77 के अंत तक दस प्रमुख पत्तन थे जो कुल 67.8 मिलियन टन का व्यापार संभालते थे; 1996-97 में ग्यारह प्रमुख पत्तन हो गए जिनके माध्यम से कुल 227.13 मिलियन टन का व्यापार हुआ।

निवेश के रूप में भी आजादी के बाद की अवधि में निष्पादन काफी उत्साहवर्द्धक रहा था। पहली पंचवर्षीय योजना के दौरान पत्तनों और "लाइट हाउसों" पर कुल 28 करोड़ रुपये व्यय किये गये थे; चौथी पंचवर्षीय योजना तक यह राशि बढ़कर 255 करोड़ रुपये हो गई और पांचवी पंचवर्षीय योजना तक यह राशि 497 करोड़ रुपये हो गयी। आठवीं योजना के दौरान 2150 करोड़ रुपये खर्च किये जाने का अनुमान है।

समस्याएं

विश्व बैंक के अध्ययन (1996) के अनुसार भारत के प्रमुख पत्तन अत्यधिक भीड़भाड़ वाले अपूर्ण रूप से सुसज्जित तथा पूर्ण कारोबार संभालने में अक्षम हैं। उनका उपयोग उनकी क्षमता से अधिक किया जाता है। इनकी वर्तमान औसत उपयोगिता की दर 118 से 135 प्रतिशत है जबकि अंतर्राष्ट्रीय मानदण्ड 55 से 65 प्रतिशत के बीच है। इतनी अधिक भीड़भाड़ एवं कार्य की सघनता से कारोबार में हमेशा विलम्ब हो जाता है। अधिक विलम्ब और अपर्याप्त पत्तन सेवाओं के कारण मालवाहक अन्य एशियाई पत्तनों की अपेक्षा भारतीय पत्तनों से अधिक मालभाड़ा दरें वसूल कर रहे हैं। इन पत्तनों को जनशक्ति आधिक्य पुराने उपस्कर, उपस्कर रखरखाव संबंधी घटिया सुविधाएं, कम उत्पादकता और घटिया स्तर के उपस्कर तथा क्षमता अभाव के कारण अत्यधिक भीड़भाड़ जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। ये पत्तन सड़क, रेल सम्पर्क और सीमा शुल्क संबंधी पेचीदी प्रक्रियाओं जैसी अन्य अड़चनों से भी जूझ रहे हैं। अपर्याप्त यातायात

सुविधाओं और पेचीदी दस्तावेजी प्रक्रियाओं के कारण पत्तनों पर आयात-निर्यात कन्टेनरों को पैक किया जाता है और खोला जाता है जिससे कन्टेनर संबंधी सुविधाओं का लाभ लगभग समाप्त हो जाता है। पत्तनों के विभिन्न मामलों को सुलझाने तथा उत्पादकता बढ़ाने के लिए तत्काल आवश्यक कार्रवाई किये जाने की आवश्यकता है जिससे कुछ हद तक पत्तनों की क्षमता में अभिवृद्धि हो जाएगी। तथापि दीर्घावधि में नए बर्थों का निर्माण करके, नए पत्तनों का विकास करके तथा आधुनिक किस्म के माल रखरखाव उपस्करों (कारगो हेन्डलिंग इक्विपमेन्ट) को लगाकर क्षमता बढ़ाने की आवश्यकता है।

अंतर्राष्ट्रीय मानकों की तुलना में इस समय यहां कन्टेनर हैंडलिंग की दर भी कम है। हमारा अत्याधुनिक पत्तन जवाहरलाल नेहरू पत्तन न्यास प्रति समुद्री जहाज घंटे में 8.5 बक्से वहन करता है जबकि सिंगापुर में यह दर 69 और कोलम्बो में 30-40 बाक्स है। यहां तक कि प्रति क्रेन घंटे में कन्टेनरों की उत्पादकता वहन क्षमता जवाहर लाल नेहरू पत्तन न्यास में 7.5 से लेकर चेन्नई में 15 तक है जबकि सिंगापुर में यह 36 बक्से और कोलम्बो में 26 बक्से हैं। इसलिए, श्रम तथा उपस्कर में उत्पादकता स्तर में सुधार लाने के लिए बहुत कुछ किया जाना है। विश्व बैंक के एक अध्ययन में भारतीय पत्तन वहन लागतों को अन्य चुनिन्दा देशों की पत्तन वाहन लागतों से तुलना करते हुए, संभावित निर्यात की हानियों को छोड़कर, निर्यातकों के लिए 80 डालर प्रति कन्टेनर तथा आयातकों के लिए 190 डालर प्रति कन्टेनर के हिसाब से तुलनात्मक लागत हानि का अनुमान लगाया गया है।

छोटे पत्तनों का विकास और प्रबंधन राज्य का विषय है। तथापि, राज्यों के पास अपने पत्तनों के लिए पर्याप्त धन नहीं है। तटीय शिपिंग के विकास को प्रोत्साहन दिये जाने के कारण छोटे पत्तनों की भूमिका महत्वपूर्ण होती जा रही है और इन्हें अधिक भीड़भाड़ वाले बड़े पत्तनों के विकल्प के रूप में देखा जाता है।

भविष्य

सम्पूर्ण विकास के परिप्रेक्ष्य में यातायात आधारभूत संरचना के विकास को देखा जाना चाहिए। पत्तनों को समग्र आर्थिक विकास के लिए आगे आकर काम करना चाहिए। मांग पूर्वानुमानों के सुझावों के अनुसार भारत को इस शताब्दी के अंत तक कम से कम 200 मिलियन टन अतिरिक्त क्षमता की आवश्यकता होगी। एशियाई विकास बैंक, 1996 वर्तमान अनुमान 174 मिलियन टन क्षमता का है।

विश्व भर में सुप्रबंधित पत्तनों द्वारा अपनाए जा रहे दृष्टिकोण के अनुरूप यहां मौलिक दृष्टिकोण में परिवर्तन करने की आवश्यकता है। इस समय हमारे पत्तन "सेवा पत्तनों" की तरह काम कर रहे हैं, और ये पत्तन कम लागत का ध्यान रखे बिना सभी प्रकार की पत्तन और हार्बर सुविधाएं उपलब्ध कराने में जुटे हुए हैं। भारतीय पत्तनों की "लेन्डलोर्ड पोर्टस" की भूमिका को भी ध्यान में रखना होगा जिनमें पोर्ट आपरेटरों द्वारा सभी उपस्कर और पत्तन संबंधी सहायक सेवाएं प्रदान की जाती हैं।

भावी विकास में कन्टेनराइजेशन की मुख्य भूमिका है। कन्टेनर बर्थ के रूप में प्रयोग किये जाने के लिए पत्तनों के आधुनिकीकरण का आर्थिक महत्व दिये जाने की आवश्यकता है। पत्तन विकास के लिए संसाधन उपलब्ध कराने तथा पत्तन सेवाएं प्रदान करने में प्रतिस्पर्द्धा लाने के लिए बड़े पत्तनों में निजी क्षेत्र को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। निजी क्षेत्र के उद्यमी पूर्ण सुविधाओं को सृजित करने में निवेश कर सकते हैं जिसमें आधार संरचना जैसे बर्थ, ड्रैगिंग इत्यादि और अतिसंरचना जैसे शेड, उपस्कर इत्यादि या अपने ही प्रयोग के लिए या अन्यों द्वारा भुगतान के आधार पर प्रयोग किये जाने के लिए अतिसंरचना शामिल है।

पत्तन आधारभूत संरचना के सही विकास तथा पत्तन सुविधाओं के दोहरेकरण से हुए व्यर्थ व्यय को रोकने के लिए एक समेकित दृष्टिकोण विकसित करने की आवश्यकता है जिससे बड़े और छोटे पत्तनों के बीच अधिकतम समन्वय सुनिश्चित किया जा सके।

(चार)

दूरसंचार

त्वरित और बहुमुखी सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए, सक्षम तथा पूर्णतया विकसित सूचना और संचार व्यवस्था एक आवश्यक एवं महत्वपूर्ण बुनियादी आवश्यकता है। विश्व को परस्पर जोड़ने व विश्व के विभिन्न देशों के बीच आवश्यक संबंध बनाए रखने में दूरसंचार सेवाओं का महत्वपूर्ण स्थान है। भारत जैसे विकासशील देश में विकास दर में वृद्धि के लक्ष्य को प्राप्त करने में यह एक अनिवार्य आधारभूत आवश्यकता बन गया है।

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

दूरसंचार सेवा के विकास का कार्य 1951 में प्रारम्भ की गई प्रथम पंचवर्षीय योजना से ही बड़े नियोजित रूप से शुरू किया गया था जो कि उसकी अनुवर्ती पंचवर्षीय योजनाओं में भी जारी रहा। प्राथमिक सेवाओं के विकास संबंधी कार्यों पर किया गया व्यय पूर्णतया सरकारी धन होता है इसीलिए दूरसंचार सेवाओं पर सरकार का एकाधिकार रहा है। इन योजनाओं के अंतर्गत मुख्य तौर पर दूरसंचार सेवाओं के "नेटवर्क" के विस्तार एवं आधुनिकीकरण पर बल दिया गया है। आठवीं योजना में "नेटवर्क" के आधुनिकीकरण और इसे ग्रामीण क्षेत्रों से जोड़ने को मुख्य प्राथमिकता दी गयी है। दूरसंचार सेवाओं के क्षेत्र में पहली बार निजी क्षेत्र की कम्पनियों को उत्कृष्टता के आधार पर मूल्यवर्धित सेवाओं का प्रावधान करके सम्मिलित किया गया है। आठवीं योजना के दौरान कुल योजना परिव्यय (केन्द्रीय क्षेत्र) का 9.7 प्रतिशत दूरसंचार सेवा के लिए आबंटित करके इस क्षेत्र को प्रोत्साहन दिया गया है।

मूल नेटवर्क का विस्तार

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से ही भारत ने दूरसंचार नेटवर्क के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति की है। 1951 में 1 लाख लाइनों के नेटवर्क के साथ यह कार्य प्रारम्भ किया गया था और 31 मार्च, 1997 तक दूरसंचार नेटवर्क में 1 करोड़ 40 लाख सीधी सेवा की लाइनें (डी. ई. एल. एस.) हो गयी हैं। लेकिन नीचे दी गयी सारणी से पता चलता है कि प्रतीक्षा सूची भी लगभग इतनी ही अधिक द्रुतगति से बढ़ी है।

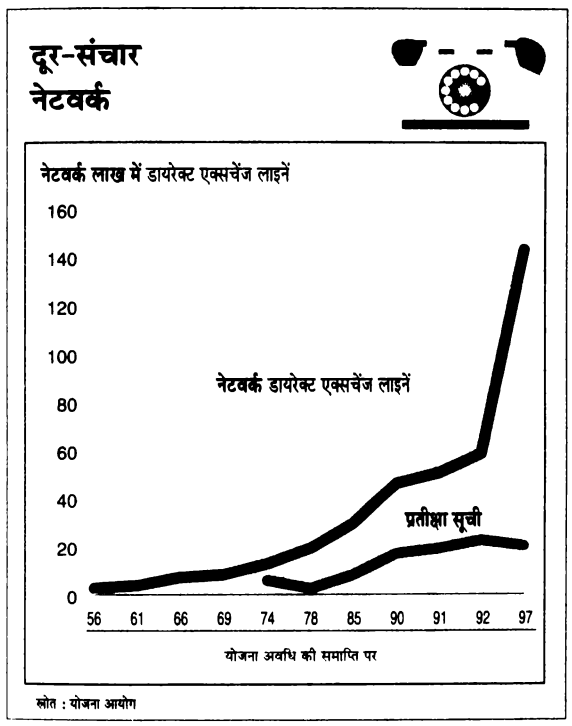

स्रोत : योजना आयोग

तालिका 3.13

दूरसंचार नेटवर्क में हुई प्रगति

योजना अवधि के समापन पर	नेटवर्क (सीधी लाइनें) (लाखों में)	प्रतीक्षा सूची (लाखों में)
पहली योजना (1951-56)	1.73	—
दूसरी योजना (1956-61)	3.32	—
तीसरी योजना (1961-66)	6.51	—
वार्षिक योजनाएँ (1966-69)	8.14	—
चौथी योजना (1969-74)	12.44	5.32
पांचवी योजना (1974-78)	18.67	2.42
छठी योजना (1980-85)	28.95	8.42
सातवीं योजना (1985-90)	45.89	17.13
वार्षिक योजना (1990-91)	50.74	19.61
वार्षिक योजना (1991-92)	58.10	22.89
आठवीं योजना (1992-97)	144.30	20.07

स्रोत : योजना आयोग

पिछले दशक के दौरान मूल दूरसंचार सेवाओं के क्षेत्र में विकास की दर काफी ज्यादा रही है, 16-17 प्रतिशत वार्षिक दर के अनुसार विस्तार की वर्तमान (1996-97) में वार्षिक दर 24.5 लाख है। इतनी अधिक वृद्धि के बावजूद भी काफी बड़ी मात्रा में मांग निपटायी नहीं जा सकी है। लगभग 20 लाख लोग इस मूलभूत सुविधा के लिए प्रतीक्षारत हैं। भारत के बड़े आकार व जनसंख्या को देखते हुए वर्तमान में टेलीफोन सेवा का घनत्व प्रति 100 व्यक्तियों पर 1.7 है जबकि विश्व में यह औसत 12 है और विकासशील देशों की तुलना में काफी कम बैठता है। उदाहरण के लिए (1995 में) मलेशिया में 16.5, ब्राजील में 7.4 और थाइलैंड में 5.8 है। दूरसंचार सेवाओं से अर्जित राजस्व, भारत के सकल घरेलू उत्पाद का 1.8 प्रतिशत है जो कि एशिया प्रशान्त क्षेत्र के राजस्व के आंकड़ों (1995) के बराबर ही है।

वर्तमान स्थिति

भारतीय दूरसंचार नेटवर्क विश्व का 14वां तथा एशिया का चौथा बड़ा नेटवर्क है (1995)। इस नेटवर्क की वर्तमान स्थिति इस प्रकार है:-

- देश में 22,000 से अधिक टेलीफोन एक्सचेंज कार्यरत हैं।
- 144 लाख टेलीफोन कनेक्शनों का नेटवर्क, कार्यरत है जिसमें से लगभग 20 प्रतिशत कनेक्शन ग्रामीण क्षेत्रों में हैं।
- लगभग 95 प्रतिशत उपभोक्ताओं के लिए राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय उपभोक्ता सीधी सेवा (आई.एस.टी.डी./ एस.टी.डी.) सुविधा उपलब्ध है।
- देश के 6 लाख गांवों में से लगभग 50 प्रतिशत में सार्वजनिक टेलीफोन सुविधा है।
- उपभोक्ताओं के व्यवसाय व दूसरी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अन्य विशिष्ट प्रकार की सेवाएं भी उपलब्ध हैं, जैसे कि मोबाइल रेडियो टेलीफोन, रेडियो-पेजिंग-फैसीमिल, डाटा ट्रांसमिशन, इन्टेगरेटिड सर्विसेज डिजीटल नेटवर्क (आई.एस.डी.एन.) आदि।

ग्रामीण क्षेत्रों से जोड़ना

भारत की लगभग 70 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में रहती है इसीलिए राष्ट्र के विकास के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में दूरसंचार सेवाएं प्रदान करना और भी महत्वपूर्ण हो जाता है। आठवीं योजना के मुख्य उद्देश्यों में से एक ग्रामीण क्षेत्रों को जोड़ना रखा गया था। आठवीं योजना में 3.6 लाख गांवों में यह सुविधा प्रदान करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया था। निजी क्षेत्र के महत्वपूर्ण योगदान को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीय दूरसंचार नीति (1994) में संशोधन करके मार्च, 1997 तक लगभग सभी 6 लाख गांवों में यह सुविधा उपलब्ध कराने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। निजी क्षेत्र के संचालकों द्वारा मूलभूत सेवाएं प्रदान करने के कार्य को आशानुरूप प्रोत्साहन न मिलने के कारण दूरसंचार विभाग (डी.ओ.टी.) के प्रयत्नों और उसके पास उपलब्ध स्रोतों के अनुरूप इन लक्ष्यों को सीमित कर दिया गया है। आठवीं योजना के दौरान लगभग 2.17 लाख गांवों में टेलीफोन सुविधा प्रदान की गई। पहले प्रदान की गई टेलीफोन सुविधा को ध्यान

में रखते हुए अब तक लगभग 3 लाख गांवों में टेलीफोन सुविधा उपलब्ध करा दी गई है।

समस्याएं/मुद्दे

निम्नलिखित सारणी से अन्य देशों की तुलना में दूरसंचार क्षेत्र में टेलीफोन उपलब्धता और टेलीफोन लाइनों में खराबी आदि के बारे में भारत के कम कार्य निष्पादन की स्थिति का पता चलता है

तालिका 3.14

दूरसंचार सेवा क्षेत्र प्रदर्शक, 1993

	टेलीफोन उपलब्ध प्रति 100 व्यक्तियों की जनसंख्या पर	प्रतीक्षा अवधि (वर्षों में)	प्रति वर्ष प्रति 100 लाइनों में खराबी आने की संख्या
भारत	0.89	2.5	218.0
यूरोप	30.85	2.9	अनुपलब्ध
अर्जेन्टीना	12.29	1.3	12.5
मैक्सिको	8.79	1.0	अनुपलब्ध
ब्राजील	7.51	0.7	43.2
एशिया	4.27	1.4	अनुपलब्ध
मिस्र	4.26	5.8	अनुपलब्ध
थाईलैंड	3.71	6.5	32.2
अफ्रीका	1.6	4.9	अनुपलब्ध
चीन	1.47	0.8	अनुपलब्ध
फिलीपीन	1.31	9.9	10.0
पाकिस्तान	1.31	4.9	120.0
इन्डोनेशिया	0.92	0.5	49.0
श्रीलंका	0.9	>10	15.0

स्रोत : विश्व दूरसंचार संकेतक, 1994-96

भारत ने इस क्षेत्र की महत्ता को पहले ही पहचान कर इसमें अपनी क्षमता बढ़ाने के लिए निजी क्षेत्र को इसमें भागीदारी के लिए आमंत्रित किया है। यद्यपि निजी क्षेत्र के संचालकों द्वारा दूरसंचार सेवा प्रदान करने का कार्य अभी प्रारम्भ किया जाना है किन्तु राष्ट्रीय दूरसंचार नीति और इसके दिशा-निर्देशों में निजी क्षेत्र के आविर्भाव की घोषणा 1994 में कर दी गयी थी। आंतरिक संयोजन के संबंध में कोई अंतिम निर्णय न लेना, लाइसेंस संबंधी समझौते, उचित लाइसेंस फीस और अन्य लगने वाले व्यय के संबंध में कोई प्रस्ताव न लाना तथा पर्याप्त धन उपलब्ध न होना आदि इस क्षेत्र की मुख्य समस्याएं कही जा सकती हैं।

विनियमन की सफलता या असफलता मुख्यत: भारतीय दूरसंचार नियमन प्राधिकरण (टी.आर.ए.आई.) की कार्यप्रणाली पर निर्भर करेगी। इसके प्रभावी रूप से कार्य करने के लिए इसे पूर्णतया स्वायत्ता प्रदत्त एवं स्व-वित्त पोषक बनाया जाना जरूरी है। इस प्राधिकरण को बहुत से जटिल और बहु-अनुशासनात्मक मुद्दे सुलझाने पड़ेंगे इसीलिए इसको विभिन्न क्षेत्रों जैसे अर्थशास्त्र, विधि, प्रौद्योगिकी, व्यापार प्रशासन और वित्त आदि क्षेत्र के उच्च योग्यता प्राप्त, प्रवीण लोगों की टीम की सहायता प्रदान की जानी चाहिए।

मूलभूत सेवाओं के क्षेत्र में बढ़ती हुई प्रतियोगिता से बदलते हुए समय को देखते हुए क्या दूरसंचार विभाग निजी कम्पनियों की तुलना में प्रभावी तौर पर प्रतियोगी हो पाएगा। क्योंकि ये कम्पनियां तो पूरी तरह व्यावसायिक तौर पर चलाई जाती हैं। इसीलिए इस नए संस्थान को कार्य करने के लिए पूरी स्वतंत्रता दी जानी चाहिए। क्या कार्यप्रणाली की स्वायत्तता यथार्थ में हो सकती है।

विभिन्न मूल्यवर्धित परियोजनाओं और आधारभूत सेवाओं के वित्तपोषण के लिए निजी क्षेत्र को विपुल निधियों की आवश्यकता होगी। परियोजनाओं के प्रारंभिक चरणों में निवेश के लिए नकद धनराशि उपलब्ध करा पाने की संभावना बहुत कम है, इसलिए इनमें अधिकांश निवेश हेतु इक्विटी और ऋणों के द्वारा वित्त जुटाना होगा।

राष्ट्रीय दूरसंचार नीति में यह परिकल्पित है कि भारत को दूरसंचार उपकरणों के एक प्रमुख विनिर्माण आधार और एक प्रमुख निर्यातकर्त्ता के रूप में उभरना होगा। विश्व के अन्य प्रमुख आपरेटरों की तुलना में हमारे स्वदेशी उद्योग की विनिर्माण क्षमता कम है और इसके कुल उत्पादन का बहुत कम भाग निर्यात होता है। क्या हम इस क्षेत्र में भारतीय बहुराष्ट्रीय कम्पनियां स्थापित कर सकते हैं? मुख्यत: आधुनिकतम प्रौद्योगिकी की अनुपलब्धता, अवस्तरीय अनुसंधान विकास आधार, निर्यात को संवृद्धि की एक नीति के रूप में न अपनाना और कम ब्याज दर पर ऋण लेने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय वित्त बाजारों में सीमित पहुंच होने के कारण इस लक्ष्य की प्राप्ति में बाधा आ रही है।

भविष्य

संवृद्धि और आधुनिकीकरण के लिए दूरसंचार क्षेत्र अत्यंत महत्वपूर्ण क्षेत्र है। भारत में सर्वाधिक तीव्र गति से विकसित हो रहे क्षेत्रों में दूरसंचार क्षेत्र भी है और इसमें भावी विकास की असीम संभावनाएं विद्यमान हैं। अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों के त्वरित विकास और आधुनिकीकरण के लिए जिन प्रमुख समर्थक सेवाओं की आवश्यकता होती है, दूरसंचार सेवा उनमें से एक है। इस तथ्य को ध्यान में रखकर इस क्षेत्र को बुनियादी सुविधाएं प्रदान करने वाले आधारभूत क्षेत्र के रूप में विकसित किये जाने की आवश्यकता है।

ग्रामीण क्षेत्रों को दूरसंचार व्यवस्था से जोड़ने को जो विशेष महत्व दिया जाता रहा है, उसे जारी रखना चाहिए। जैसाकि पहले भी बताया जा चुका है लगभग 6 लाख गांवों में से अब तक लगभग 3 लाख गांवों को दूरसंचार व्यवस्था से जोड़ा जा चुका है। क्या शेष गांवों को सरकारी क्षेत्र और निजी क्षेत्र के आपरेटरों के संयुक्त प्रयासों द्वारा सन् 2000 तक दूरसंचार व्यवस्था से जोड़ा जा सकता है?

क्या हम इतनी विशाल आबादी के इतने अधिक जनवर्गों को दूरसंचार से जोड़ने के कार्य में यह उल्लेखनीय वृद्धि कर सकते हैं। क्या हम व्यापारिक समुदाय की दृश्य, श्रवण और सूचना प्रसारण संबंधी जरूरतों को पूरा कर सकते हैं? क्या स्वदेशी उत्पादन और निर्यात हेतु उत्पादन बढ़ाने में सहयोग देने के लिए हम विदेशी कम्पनियों को भारत में विनिर्माण आधार स्थापित करने के लिए आकर्षित कर सकते हैं।

(पांच)

यहां से आगे कहां?

हमारे सामने आधारभूत सुविधाओं की जो सामान्य तस्वीर उभरकर आती है, वह यह है कि आधारभूत सुविधाओं और सेवाओं की मांग और उनकी आपूर्ति के बीच न केवल व्यापक अन्तर बना हुआ है बल्कि मौजूदा आपूर्ति की गुणवत्ता भी घटिया है। क्षमता में आई गिरावट और अकुशलताओं के प्रत्यक्ष संकेत विद्युत आपूर्ति में रुकावट, सड़कों पर भीड़-भाड़, हवाई अड्डे पर अपर्याप्त आधारभूत सुविधाएं, पत्तनों पर अत्यधिक भीड़भाड़ और टेलीफोन कनेक्शन लेने के लिए लम्बी प्रतीक्षा सूची आदि से देखे जा सकते हैं। आधारभूत सुविधाओं की मांग और आपूर्ति के बीच बढ़ता हुआ अंतराल भविष्य में हमारे टिकाऊ आर्थिक विकास के प्रति प्रश्न चिन्ह लगा देता है।

सकल घरेलू उत्पाद की 7 प्रतिशत विकास दर को बनाए रखने के लिए आधारभूत सुविधा के क्षेत्र में निवेश दर में वृद्धि करना अनिवार्य हो गया है। यह सुस्पष्ट है कि आधारभूत सुविधाओं के क्षेत्र में भारी निवेश की आवश्यकता की पूर्ति प्राथमिकता प्राप्त अन्य सामाजिक और आर्थिक कार्यक्रमों में कमी लाए बिना, केवल सरकारी वित्तीय संसाधनों द्वारा ही नहीं की जा सकती है। सकल घरेलू उत्पाद के अनुपात के रूप में, आधारभूत सुविधा के क्षेत्र में किया गया कुल निवेश लगभग 4.5 प्रतिशत से 6 प्रतिशत के बीच रहा है लेकिन 1980 के दशक के उत्तरार्ध और 1990 के दशक के प्रारम्भ में मोटे तौर पर यह औसतन सकल घरेलू उत्पाद का लगभग 5.5 प्रतिशत रहा है।

अर्थव्यवस्था का लगातार विकास, मूलत: गुणवत्तायुक्त आधारभूत सुविधाओं जैसे विद्युत, परिवहन और संप्रेषण की पर्याप्त उपलब्धता पर निर्भर करता है। आठवीं योजना इन क्षेत्रों में न केवल अपने निर्धारित लक्ष्यों अपितु सातवीं योजना से भी काफी पीछे रही है इसका मुख्य कारण सोच से कम किया गया निवेश है। हालांकि वर्तमान सुविधाओं की विकसित क्षमता उपयोगिता के कारण इसके नकारात्मक प्रभावों का अभी पता नहीं चला है फिर भी इन विकल्पों का भी दोहन एक सीमा तक ही किया जा सकता है। भविष्य में आवश्यक क्षमता सृजन के लिए हमारे पास कोई और विकल्प नहीं है। सरकार द्वारा वित्तीय घाटे को रोकने के लिए किए गए प्रयासों का असर सार्वजनिक निवेश विशेष रूप से ज्यादातर बजटीय सहायता पर निर्भर रहने वाले क्षेत्रों पर असंगत रूप से पड़ा है। सरकार के व्यय में पूंजीगत व्यय का भाग तेजी से लगभग 30 प्रतिशत से घटकर आठवीं योजना के प्रारम्भ में 24 प्रतिशत रह गया है। जिन क्षेत्रों के पास अपने स्वयं के निवेश योग्य संसाधनों को जुटाने की क्षमता है उनका कार्यनिष्पादन मिश्रित रहा है। पेट्रोलियम और दूरसंचार क्षेत्रों का निष्पादन बेहतर रहा है और इन्होंने अपने लक्ष्य से अधिक संसाधन जुटाए हैं। दूसरी ओर जहां तक उत्पादनकारी निवेश योग्य अधिशेष संसाधनों का संबंध है, विद्युत, परिवहन और सिंचाई क्षेत्र का निष्पादन आशा से काफी कम रहा है।

तेजी से हुए शहरीकरण के कारण पैदा हुई मांगों और पहले किए गए अपर्याप्त निवेश की भरपाई करने की आवश्यकता के कारण भविष्य में हमें काफी अधिक निवेश करने की आवश्यकता होगी। ऐसा अपरिहार्य प्रतीत होता है कि अत्यधिक बढ़ती हुई मांग को पूरा करने के लिए एक संगठनात्मक ढांचा स्थापित किया जाये जिसमें किसी क्षेत्र का विकास सरकारी धन पर कम निर्भर हो और निवेश का वित्तपोषण पूंजी बाजार और स्वपोषी आधार पर आन्तरिक संसाधनों से किया जा सके।

आधारभूत ढांचे के विकास में निजी क्षेत्र की भागदारी की प्रभावोत्पादकता इन परियोजना के वाणिज्यीकरण की उनकी क्षमता पर निर्भर होगी जिसके द्वारा निवेश की वसूली, प्रयोगकर्ता प्रभार प्रणाली के माध्यम से की जा सकती है। वास्तव में, आधारभूत ढांचे के क्षेत्र में वाणिज्यीकरण की संभावनाएं और प्रतियोगिता जितनी आंकी गई हैं उससे कहीं अधिक हैं। यह भी साफ दिखाई देता है कि विद्युत उत्पादन और वितरण अथवा लम्बी दूरी के दूरसंचार जैसे क्रियाकलाप तब तक बाजार के प्रावधान के उपयुक्त नहीं हो सकते हैं, जब तक कि उन्हें संबंधित क्रियाकलापों से मुक्त न किया जाए।

आधारभूत ढांचे की सुविधाओं की उपलब्धता में वृद्धि करने के लिए पहली प्राथमिकता चालू परियोजनाओं को पूरा करने को दी जानी चाहिए ताकि वे यथासंभव शीघ्र अपना लाभार्जन शुरू कर दें। तथापि यह प्रयास स्वयं में काफी नहीं होगा एवं आधारभूत सुविधा के क्षेत्र में नए निवेश शुरू करने के लिए और अधिक प्रयास करने होंगे।

वित्त मंत्रालय द्वारा 1994 में आधारभूत ढांचे संबंधी सुविधाओं की परियोजनाओं के वाणिज्यीकरण के बारे में गठित विशेषज्ञ दल ने यह अनुमान लगाया था कि अगले पांच वर्षों में आधारभूत सुविधा के क्षेत्र में लगभग 40,000 करोड़ रुपए से 450,000 करोड़ रुपए (115 से 130 बिलियन अमरीकी डालर) के कुल निवेश की आवश्यकता होगी और 2001-02 से 2005-06 के दौरान लगभग 7,500,00 करोड़ रुपए (215 बिलियन अमरीकी डालर) के निवेश की आवश्यकता होगी। विशेषज्ञ दल ने नीतिगत सुधारों के लिए निवेश प्रदान किए हैं जो सरकारी-निजी सहभागिताओं के संवर्धन के साथ-साथ आधारभूत सुविधाओं के अधिकाधिक वाणिज्यीकरण में सहायक सिद्ध हो सकता है।

आधारभूत ढांचे के क्षेत्र में सरकारी और निजी, दोनों तरह के निवेश के वांछित स्तरों को प्राप्त करने के लिए यह बहुत ही महत्वपूर्ण है कि समुचित मूल्य निर्धारण और लागत की वसूली के मुद्दों का निपटान शीघ्रातिशीघ्र किया जाए। समुचित मूल्य निर्धारण नीति से एक तरफ सरकारी अधिकारियों के पास संसाधनों की उपलब्धता में वृद्धि होगी जिससे न केवल मौजूदा सुविधाओं के पर्याप्त अनुरक्षण और उन्नयन कार्य के लिए आवश्यक धन उपलब्ध रहेगा, बल्कि नए निवेश करने के लिए निवेश योग्य

संसाधनों को जुटाने के लिए भी यह उपलब्ध रहेगा। दूसरी ओर, मूल्यों में संशोधन, आधारभूत ढांचे संबंधी परियोजनाओं को अर्थक्षम और निजी क्षेत्र के लिए आकर्षक बनाने हेतु एक आवश्यक माध्यम है। इसके साथ ही प्रेषण हानियों, बिजली की चोरी आदि को कम करने के लिए कदम उठाने होंगे जो ऊर्जा की औसत लागत में वृद्धि करने के लिए स्वयं में ही महत्वपूर्ण कारक हैं। इस तरह की परिहार्य हानियों में कमी उपभोक्ताओं के भार को हल्का करने में महत्वपूर्ण सिद्ध होगी और निवेश की व्यवहार्यता भी सुनिश्चित होगी।

यद्यपि निजी क्षेत्र भविष्य में अतिरिक्त क्षमता सृजन करने में अपनी बढ़ती हुई भूमिका निभाएगा फिर भी सरकारी क्षेत्र के उद्यमों को जारी रखा जाना चाहिए ताकि आधारभूत ढांचे संबंधी महत्वपूर्ण सेवाओं को उपलब्ध कराने के प्रमुख भार को बांटा जा सके।

ऐसा प्रतीत होता है कि सरकारी क्षेत्र के प्रबन्ध को व्यापक आधार देने, प्रौद्योगिक प्रोन्नयन करने, उनके कार्य-निष्पादन और सेवाओं की गुणवत्ता में सुधार करने और सेवा प्रभारों को युक्तिसंगत बनाकर उसके जरिए पर्याप्त निवेश योग्य संसाधनों को जुटाने तथा लागत की बेहतर वसूली के लिए सरकारी क्षेत्र में विश्वसनीय सुधार करना अनिवार्य हो गया है। आधारभूत ढांचे संबंधी सेवाओं के विनियमन और निजीकरण की प्रक्रिया को सांविधिक नियामक प्राधिकरण की स्थापना द्वारा संपूरित किये जाने की भी आवश्यकता है ताकि सरकारी और निजी संचालकों के बीच स्वस्थ प्रतिस्पर्द्धा सुनिश्चित की जा सके और उपभोक्ता हितों की रक्षा, सार्वजनिक सुरक्षा, आंतरिक और बाहरी सुरक्षा, तथा कमजोर वर्गों की आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके। जब तक उपलब्ध करायी जाने वाली सेवाओं की कार्यकुशलता में उल्लेखनीय सुधार नहीं किया जाता तब तक अन्तर्राष्ट्रीय एकीकरण और लगातार त्वरित निर्यात वृद्धि हासिल करने में बहुत सी मूलभूत रुकावटें पैदा होती रहेंगी। क्या हम वाकई इन वास्तविकताओं से अवगत हैं? क्या हम व्यावहारिक नीतिगत परिवर्तनों के लिए तैयार हैं?

4

विज्ञान और प्रौद्योगिकी

प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू के समय से ही विज्ञान एवम् प्रौद्योगिकी का राष्ट्रीय एजेन्डों में उच्च स्थान रहा है। पण्डित नेहरू द्वारा तैयार किया गया वैज्ञानिक नीति संकल्प, भारत में नियोजन और विकास प्रक्रिया का आधार-स्तम्भ रहा है। पण्डित नेहरू के समय से ही अपने वृहत विज्ञान एवम् प्रौद्योगिकी का मूलभूत ढांचा जो कृषि प्रौद्योगिकी से परमाणु ऊर्जा, सागर विकास से अन्तरिक्ष विज्ञान तक कई क्षेत्रों में फैला है, खड़ा किया है। हमने अनुसंधान संस्थानों, राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं, संस्थाओं और विश्वविद्यालयों का एक वृहत तन्त्र गठित किया है। आज हमारे देश में 3.5 मिलियन वैज्ञानिक और तकनीकी विशेषज्ञ हैं। हमारे विज्ञान और प्रौद्योगिकी के पाठ्यक्रमों की समूची दुनिया में ऊंची साख है और वास्तव में विज्ञान और प्रौद्योगिकी क्षेत्र के हमारे प्रतिष्ठित वैज्ञानिक विकसित राष्ट्रों में भी महत्वपूर्ण वैज्ञानिक अनुसंधान कार्य को अंजाम दे रहे हैं। लेकिन अनुसंधान और विकास में अल्प निवेश, वैज्ञानिक एवम् प्रौद्योगिकी मानव शक्ति का कम उपयोग, निजी क्षेत्र में अनुसंधान और विकास पर अत्यन्त कम व्यय और पूर्णत: सरकार नियंत्रित-अनुसंधान और विकास कार्य हमारी कुछ विशेष कमियां है। हमें वैज्ञानिक नौकरशाही से भिन्न मौलिक एवम् नए अनुसंधान कार्यो में रुचि रखने वाले वैज्ञानिकों की जरूरत है।

इतिहास

वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकी अनुसंधान का विकास में मौलिक योगदान होता है। भारत में सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन के माध्यम के रूप में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की महत्वपूर्ण भूमिका और इसके उपयोग को आयोजना के प्रमुख लक्ष्य के रूप में स्वीकार किया गया है। विज्ञान में इस विश्वास को भारत सरकार द्वारा 1958 में अपनाई गई ऐतिहासिक वैज्ञानिक नीति संकल्प में शामिल किया गया है। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय, भारत का औद्योगिक एवं प्रौद्योगिकीय आधार अत्यन्त कम था। तभी से विभिन्न क्षेत्रों के व्यापक पक्षों को शामिल करते हुए वैज्ञानिक और प्रौद्योगिकीय अवसंरचना का निर्माण किया गया है। महत्वपूर्ण. वैज्ञानिक और प्रौद्योगिकीय उपलब्धियों को परमाणु ऊर्जा, अन्तरिक्ष और इलेक्ट्रोनिकी जैसे उच्च प्रौद्योगिकी क्षेत्रों में देखा जा सकता है जबकि आम जनता के जीवन से जुड़ी आनुवंशिकी इंजीनियरिंग पर आधारित खाद्यान्न उत्पादन में आत्म-निर्भरता प्राप्त करने में सफलता स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है।

भारत 1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति के समय से ही अपने आर्थिक विकास के लिए विज्ञान और प्रौद्योगिकी के उपयोग के लिए कृतसंकल्प है। प्रधानमंत्री, पंडित जवाहर लाल नेहरू ने विज्ञान और प्रौद्योगिकी को भारत के सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए आधार माना। उनके नेतृत्व में भारत सरकार के वैज्ञानिक नीति संकल्प ने भारतीय आयोजना और विकास में विज्ञान की एक निश्चित भूमिका निर्धारित की। यह महत्ता उनके बाद भी कायम रही। भारत सरकार ने विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विभिन्न क्षेत्रों में राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं और उच्च शिक्षा संस्थानों की स्थापना का व्यापक कार्यक्रम शुरू किया। लगभग 150,000 योग्य वैज्ञानिक और तकनीकी शिक्षा प्राप्त व्यक्ति प्रतिवर्ष इन संस्थानों से निकलते हैं। आज वैज्ञानिक और तकनीकी दक्षता प्राप्त व्यक्तियों की अनुमानित संख्या 3.5 मिलियन है जिससे भारत का स्थान इस दृष्टि से विश्व में तीसरा है तथा विकासशील देशों में इसकी स्थिति अत्यंत महत्वपूर्ण है।

भारत विश्व का पहला विकासशील देश था जिसने राष्ट्रीय विकास के लिए वैज्ञानिक अनुसंधान आयोजित करने और उसे एक दिशा प्रदान करने के लिए 1951 में वैज्ञानिक अनुसंधान और प्राकृतिक संसाधन नामक अलग मंत्रालय का गठन किया था। तथापि, विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में नए विभागों ने सातवें दशक के बाद ही काम करना आरम्भ किया जिनमें विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग (डी.एस.टी.) और इलेक्ट्रोनिकी, गैर-परम्परागत ऊर्जा स्रोत मंत्रालय, जैव प्रौद्योगिकी विभाग तथा महासागर विकास जो डी.एस.टी. विभाग के कार्यकलापों से बने। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् (आई.सी.ए.आर.) वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद् (सी.एस.आई.आर.) भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद् (आई.सी.एम.आर.) परमाणु ऊर्जा, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी, अन्तरिक्ष तथा रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन आदि विभागों

के तत्वावधान में अब तक लगभग 150 विशिष्ट अनुसंधान प्रयोगशालाओं और संस्थानों की स्थापना की गई है।

हाल के वर्षों में, आर्थिक प्रोत्साहनों की सहायता से सरकारी और गैर-सरकारी क्षेत्र के संगठनों और उपक्रमों ने मुख्यतया अपनी आन्तरिक प्रौद्योगिकीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए 600 से अधिक अनुसंधान एवं विकास प्रयोगशालाओं की स्थापना की है। गत पन्द्रह वर्षों में जो अपेक्षाकृत नया परन्तु महत्वपूर्ण विकास हुआ है वह है डिजाइन और कन्सल्टेंसी सेवाएं प्रदान करने तथा अनुसंधान संस्थाओं और उद्योग के बीच सेतु का कार्य करने हेतु इंजीनियरिंग और कन्सल्टेंसी संगठनों की तेजी से वृद्धि। इस समय विभिन्न आकार-प्रकार और क्षमता वाली ऐसी 150 से अधिक फर्में हैं जिनमें 20,000 से अधिक प्रौद्योगिकी विशेषज्ञ कार्यरत हैं। इस समय विज्ञान और प्रौद्योगिकी पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद का लगभग 0.6 प्रतिशत धन खर्च किया जा रहा है।

बड़ी संख्या में छोटे तथा अत्याधुनिक उद्योगों की स्थापना की गई है जो उपयोगिताओं, सेवाओं और वस्तुओं के क्षेत्र में है और बड़ी संख्या में तकनीकी विशेषज्ञ अब उनके संचालन के बारे में जानते हैं। इस समय, मौलिक और व्यावहारिक क्षेत्रों में अत्याधुनिक प्रगति से भलीभांति परिचित दक्षता का भण्डार उपलब्ध है और उपलब्ध प्रौद्योगिकियों में से विकल्प ढूंढने तथा नई प्रौद्योगिकियों को आत्मसात करने एवं भविष्य के राष्ट्रीय विकास के लिए ढांचा उपलब्ध करा सकने में यह सक्षम है। भारतीय वैज्ञानिकों और प्रौद्योगिकीविदों ने न केवल कक्षाओं और प्रयोगशालाओं में अपितु कारखानों और खेतों में भी अवधारणात्मक आयोजना और नीति निर्धारण तथा उनके क्रियान्वयन में अपनी विशिष्ट पहचान बनाई है।

1958 का वैज्ञानिक नीति संकल्प

संसद ने 1958 को वैज्ञानिक नीति संकल्प स्वीकार किया। इस नीति के उद्देश्य निम्न हैं:—

- सभी उपयुक्त साधनों द्वारा विज्ञान के विकास और वैज्ञानिक अनुसंधान के सभी पक्षों यथा विशुद्ध, व्यावहारिक और शैक्षणिक का विकास, प्रोत्साहन और पोषण;
- देश में उच्च श्रेणी के अनुसंधान वैज्ञानिकों की उपलब्धता सुनिश्चित करना और उनके कार्य को राष्ट्र शक्ति के महत्वपूर्ण घटक के रूप में मान्यता प्रदान करना;
- देश की विज्ञान, शिक्षा, कृषि, उद्योग और रक्षा संबंधी आवश्यकताओं की पर्याप्त पूर्ति हेतु सभी संभव गति से वैज्ञानिक और तकनीकी दक्षता प्राप्त व्यक्तियों के प्रशिक्षण हेतु कार्यक्रम आरम्भ करना और उसे प्रोत्साहन देना;
- यह सुनिश्चित करना कि पुरुषों और महिलाओं की रचनात्मक प्रतिभा को प्रोत्साहन मिले और वैज्ञानिक क्रियाकलाप में उनका पूर्ण उपयोग हो;
- शैक्षिक स्वतंत्रता के परिवेश में ज्ञान की प्राप्ति एवं इसके प्रसार तथा नये ज्ञान की खोज के लिए व्यक्तिगत पहल को प्रोत्साहन देना और सामान्यतया;
- वैज्ञानिक ज्ञान के अर्जन एवं उपयोग से प्राप्त हो सकने वाले सभी लाभों को देश की जनता के लिए सुनिश्चित करना।

योजनावधि के दौरान विज्ञान और प्रौद्योगिकी हेतु संसाधनों का आवंटन

प्रथम पंचवर्षीय योजना के दौरान राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं एवं अन्य अनुसंधान संस्थानों के निर्माण पर मुख्य रूप से ध्यान दिया गया था। बाद की योजनाओं में उपलब्ध सुविधाओं का विकास किया गया, अनुसंधान को और अधिक व्यापक बनाया गया और विश्वविद्यालयों एवं अन्य अनुसंधान केन्द्रों में अनुसंधान सुविधाओं का और विस्तार किया गया। अनुगामी योजनाओं में बढ़ते हुए निधियों के आवंटन से विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी को दी गई प्राथमिकता देखी जा सकती है।

तालिका-4.1

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी परिव्यय

(करोड़ रुपये में)

पंचवर्षीय योजनावधि	योजना परिव्यय
प्रथम योजना (1951–56)	14
दूसरी योजना (1956–61)	33
तीसरी योजना (1961–66)	71
योजनावकाश (1966–69)	47
चौथी योजना (1969–74)	142
पांचवीं योजना (1974–79)	693
वार्षिक योजना (1979–80)	208
छठी योजना (1980–85)	2016
सातवीं योजना (1985–90)	5087
वार्षिक योजनाएं (1990–92)	1416
आठवीं योजना (1992–97)	5169

स्रोत : योजना आयोग

निम्नलिखित तीन क्षेत्रों में स्वतंत्र रूप से योजनाएं बनाकर मुख्यत: विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी हेतु योजना बनायी जा सकी हैं:-

- वैज्ञानिक विभागों हेतु अर्थात विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग, वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान विभाग, जैव प्रौद्योगिकी विभाग, महासागर विकास विभाग, अंतरिक्ष विभाग, परमाणु ऊर्जा विभाग, इलैक्ट्रोनिकी विभाग, पर्यावरण एवं वन मंत्रालय;

- भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, केन्द्रीय सिंचाई तथा बिजली बोर्ड आदि जैसे संगठनों सहित लगभग 30 सामाजिक आर्थिक मंत्रालयों/विभागों के विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संघटकों हेतु; और
- राज्यों एवं संघ राज्य क्षेत्रों की योजनाओं में एक अलग विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी क्षेत्र हेतु।

गत आठ योजनाओं के दौरान उत्पन्न घटनाक्रमों के परिणाम-स्वरूप वैज्ञानिक अनुसंधान में संलग्न संस्थाओं के व्यापक नेटवर्क का प्रादुर्भाव हुआ है और अधिकतर केन्द्रों में विशुद्ध अनुसंधान, प्रयुक्त अनुसंधान और विशिष्ट क्षेत्रों में अनुसंधान को अपनाया जा रहा है।

बाक्स 4.1 : अनुसंधान : क्या और कहां

अनुसंधान की श्रेणी	जहां अनुसंधान हो रहा है
विशुद्ध विज्ञान अनुसंधान	विश्वविद्यालय, वैज्ञानिक समितियां एवं एसोसियेशनों की प्रयोगशालाएं, वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद्, परमाणु ऊर्जा विभाग की अपनी प्रयोगशालाओं में।
प्रयुक्त और औद्योगिक अनुसंधान	राष्ट्रीय प्रयोगशालाएं, सहकारी औद्योगिक अनुसंधान एसोशिएशन, औद्योगिक उपक्रम।
अभियांत्रिक अनुसंधान	राष्ट्र प्रयोगशालाएं, प्रौद्योगिकी संस्थान, इंजीनियरिंग कालेज एवं विश्व-विद्यालय, रेल, जल-भूतल परिवहन, बिजली आदि अवसंरचना मंत्रालयों के अनुसंधान अभिकरण।
खनिज विज्ञान अनुसंधान	भारतीय भूविज्ञान सर्वेक्षण, राष्ट्रीय धातुकर्मीय प्रयोगशाला, केन्द्रीय ईंधन अनुसंधान संस्थान, केन्द्रीय खनन अनुसंधान केन्द्र, तेल एवं प्राकृतिक गैस निगम।
चिकित्सा अनुसंधान	भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद।
कृषि अनुसंधान	भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद एवं परिषद के अधीन अनुसंधान संस्थान, कृषि विश्वविद्यालय।
परमाणु अनुसंधान	एटॉमिक एनर्जी एस्टैब्लिशमेंट, ट्राम्बे।

अनुसंधान एवं विकास व्यय

वैज्ञानिक अनुसंधान में निवेश का देश की समृद्धि में भारी योगदान है। विविध सामाजिक-आर्थिक क्षेत्रों में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के महत्वपूर्ण आदानों तथा संबंधित उद्योगों में अनुसंधान एवं विकास कार्य को सम्पादित करने तथा संवर्धित करने की आवश्यकता है। गत पांच दशकों के दौरान उद्योग की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अनुसंधान एवं विकास संस्थाओं के निर्माण में भारी निवेश किया गया है। समय-समय पर विभिन्न प्रकार की कर-रियायतों के माध्यम से प्रोत्साहन प्रदान करके एक मजबूत अनुसंधान एवं विकास आधार स्थापित करने में उद्योगों की सहायता की गई है। इस समय 214 विश्वविद्यालय, 400 राष्ट्रीय प्रयोगशालाएं एवं औद्योगिक क्षेत्र में 1300 आन्तरिक अनुसंधान एवं विकास केन्द्र विद्यमान हैं। पर्यावरण, अपारम्परिक ऊर्जा स्रोत, जैव-प्रौद्योगिकी, महासागर विकास, औद्योगिक अनुसंधान, अन्तरिक्ष, परमाणु ऊर्जा, रक्षा, स्वास्थ्य, कृषि एवं इलैक्ट्रोनिकी के क्षेत्र में अनेक विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग स्थापित किये गये हैं।

अनुसंधान एवं विकास में हुए निवेश में महत्वपूर्ण वृद्धि हुई है। वर्ष 1950-51 में 4.68 करोड़ रुपए से बढ़कर यह 1992-93 में 5141.64 करोड़ रुपए हो गया है। अनुसंधान एवं विकास व्यय की दर, जो सकल घरेलू उत्पाद के प्रतिशत के रूप में मापी जाती है, वर्ष 1950-51 में 0.05 प्रतिशत की अल्प-राशि से बढ़कर 1987-88 में 0.95 प्रतिशत हो गई है। लेकिन इसके बाद कम होकर यह 0.73 प्रतिशत हो गई है जैसाकि तालिका 4.2 में दर्शाया गया है।

तालिका-4.2

अनुसंधान एवं विकास पर व्यय : 1950-51 से 1992-93

	करोड़ रुपयों में				अनुसंधान एवं विकास के कुल व्यय का %			अनुसंधान एवं विकास पर कुल व्यय
	केन्द्रीय सरकार	राज्य सरकार	निजी क्षेत्र	कुल	केन्द्रीय सरकार	राज्य सरकार	निजी क्षेत्र	बाजार मूल्यों पर सकल घरेलू उत्पाद के % के रूप में
1950-51	4.68	अनुपलब्ध	अनुपलब्ध	4.68	100.00	—	—	0.05
1955-56	12.14	अनुपलब्ध	अनुपलब्ध	12.14	100.00	—	—	0.12
1965-66	62.45	3.51	2.43	68.39	91.31	5.13	3.55	0.26
1970-71	112.47	12.58	14.59	139.64	80.54	9.01	10.45	0.32
1971-72	125.93	9.53	16.18	151.64	83.05	6.28	10.67	0.33
1972-73	149.67	22.10	22.89	194.66	76.89	11.35	11.76	0.38
1973-74	161.53	24.13	30.35	216.01	74.78	11.17	14.05	0.35
1974-75	231.14	24.00	36.46	291.60	79.27	8.23	12.50	0.40
1975-76	287.63	26.73	42.35	356.71	80.63	7.49	11.87	0.45
1976-77	300.54	25.20	48.42	374.16	80.32	6.74	12.94	0.44
1977-78	343.92	28.50	58.20	430.62	79.87	6.62	13.52	0.45
1978-79	412.49	40.24	75.87	528.60	78.03	7.61	14.35	0.51
1979-80	500.36	46.04	92.14	638.54	78.36	7.21	14.43	0.56
1980-81	580.49	59.34	120.69	760.52	76.33	7.80	15.87	0.56
1981-82	721.94	71.79	147.00	940.73	76.74	7.63	15.63	0.59
1982-83	912.00	97.05	196.98	1,206.03	75.62	8.05	16.33	0.68
1983-84	1,053,37	119.90	207.83	1,381.10	76.27	8.68	15.05	0.67
1984-85	1,422.25	126.11	233.19	1,781.55	79.83	7.08	13.09	0.77
1985-86	1,654.06	162.78	251.94	2,068.78	79.95	7.87	12.18	0.79
1986-87	1,979.21	164.56	291.63	2,435.40	81.27	6.76	11.97	0.83
1987-88	2,358.88	183.92	310.27	2,853.07	82.68	6.45	10.87	0.86
1988-89	2,675.59	254.05	417.62	3,347.26	79.93	7.59	12.48	0.84
1989-90	2,933.92	301.23	490.59	3,725.74	78.75	8.09	13.17	0.82
1990-91	3,116.01	308.18	549.98	3,974.17	78.41	7.75	13.84	0.75
1991-92	3,527.04	348.83	636.94	4,512.81	78.16	7.73	14.11	0.73
1992-93	3,976.58	393.29	771.77	5,141.64	77.34	7.65	15.01	0.73

स्रोत: सेन्टर फॉर मॉनिटरिंग इंडियन इकॉनामी; बेसिक स्टैटिस्टिक्स भारत, अगस्त, 1994

तालिका 4.3 के आंकड़ों से स्पष्ट होता है कि 1950-90 की अवधि में वैज्ञानिकों और तकनीकी कर्मियों की संख्या में तेजी से वृद्धि हुई है। जैसाकि बताया गया है कि तकनीकी जनशक्ति के क्षेत्र में भारत विश्व में सबसे बड़ा तीसरा देश है।

तालिका-4.3

वैज्ञानिक और तकनीकी कर्मियों की अनुमानित संख्या : 1950 से 1990

	इन्जीनियरिंग		मेडीकल		कृषि		विज्ञान		
	डिग्री	डिप्लोमा	डिग्री	प्रमाणपत्रधारी	स्नातकोत्तर	स्नातक	स्नातकोत्तर	स्नातक	कुल योग
1950	21.6	31.5	18.0	33.0	1.0	6.9	16.0	60.0	**168.0**
1955	37.5	46.8	29.0	35.0	2.0	11.5	28.0	102.9	**292.7**
1960	62.2	75.0	41.6	34.0	3.7	20.2	47.7	165.6	**450.0**
1965	106.7	138.9	60.6	31.0	3.7	39.4	85.7	261.5	**731.5**
1970	185.4	244.4	97.8	27.0	135.0	47.2	139.2	420.0	**1174.5**
1980 (अनुमानत:)	221.4	329.4	167.6	167.6	96.5	96.5	217.5	750.3	**1782.7**
1985 के शुरू में (अनुमानत:)	372.6	564.2	268.2	3.7	161.6		350.3	1138,3	**2658.9**
1990 (अनुमानत:)	454.5	734.8	314.4	5.5	196.2		419.7	1139.4	**3464.4**

टिप्पण: 1985 और 1990 के आंकड़े सातवीं पंचवर्षीय योजना से एकत्रित किए गये हैं। 1985-90 के आंकड़ों की तुलना पूर्व वर्षों के उन आंकड़ों से नहीं की जा सकती है जो सी.एस.आई.आर. के संकलन पर आधारित हैं। इन दोनों एजेंसियों की परिभाषाएं और इनके संकलन के क्षेत्र में अन्तर होने के कारण इनमें भी अन्तर हो सकता है।
स्रोत : सेंटर फॉर मॉनीटरिंग इंडियन इकॉनामी बेसिक स्टैटिस्टिक्स इंडिया, अगस्त, 1994

विज्ञान और प्रौद्योगिकी का विकास — क्षेत्र परिदृश्य

परमाणु ऊर्जा

पचास वर्ष पूर्व 1948 में परमाणु ऊर्जा अधिनियम के निर्माण के साथ ही भारत ने शांतिपूर्ण कार्यों के लिए परमाणु ऊर्जा के उपयोग के क्षेत्र में तेजी से प्रगति की है। इस अधिनियम में देश में उपलब्ध यूरेनियम और थोरियम के खनिज संसाधनों का प्रयोग करके नाभिकीय ऊर्जा के उत्पादन और उपयुक्त प्रौद्योगिकी के विकास तथा उसके उपयोग के लिए एक सशक्त अनुसंधान और विकास संगठन के निर्माण की व्यवस्था की गई है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रेशराइज्ड हैवी वाटर रिएक्टर्स, फास्ट ब्रीडर रिएक्टर्स तथा एडवांस्ड थोरियम रिएक्टर्स तथा एसोशिएटेड फ्यूल साइकिल प्रणालियों का विकास हुआ है। इस विभाग के कार्यों में रिसर्च रिएक्टरों की स्थापना के माध्यम से नाभिकीय ऊर्जा के गैर-विद्युत (नॉन-इलैक्ट्रिसिटी) उपयोग को बढ़ावा देना, चिकित्सा, कृषि और उद्योग जैसे क्षेत्रों में उपयोग के लिए रेडियो आइसोटॉप्स का उत्पादन, अक्सीलरेटर्स, लैसर्स, मैटेरियल टैक्नोलॉजी, बायोटैक्नोलॉजी जैसी विकसित प्रौद्योगिकियों का विकास करना, नाभिकीय ऊर्जा तथा विज्ञान आदि के क्षेत्र में बुनियादी अनुसंधान को सहायता प्रदान करना शामिल है।

आधारभूत सुविधाओं के विकास की दृष्टि से 10 अगस्त, 1948 को परमाणु ऊर्जा आयोग का गठन किया गया जिसके प्रथम अध्यक्ष डा. होमी जे. भाभा थे। इस आयोग को परमाणु ऊर्जा से संबंधित सभी मामलों में सरकार की नीति निर्धारण और उसके कार्यान्वयन का कार्य सौंपा गया। इसके बाद 1956 में परमाणु ऊर्जा आयोग की कार्यकारी शाखा परमाणु ऊर्जा विभाग का सृजन किया गया। इस प्रकार परमाणु ऊर्जा कार्यक्रम की सहायता के लिए नाभिकीय संघटकों तथा इलैक्ट्रोनिक उपकरणों के निर्माण के लिए विविध आधारभूत अनुसंधान सुविधाओं, प्रशिक्षित वैज्ञानिकों तथा तकनीकी जनशक्ति, सामग्री संसाधित केन्द्र और तकनीकी संभावनाओं का सृजन किया गया।

आज परमाणु ऊर्जा विभाग के तत्वावधान में निम्नलिखित संगठन कार्यरत हैं:

(एक) पांच अनुसंधान संगठन अर्थात् भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र, मुम्बई, इंदिरा गांधी परमाणु अनुसंधान केन्द्र, कलपक्कम; उन्नत प्रौद्योगिकी केन्द्र, इंदौर; वैरिएबल साइक्लोट्रोन सेंटर, कलकत्ता और परमाणु खनिज प्रभाग, हैदराबाद; (दो) तीन औद्योगिक उपक्रम अर्थात् भारी जल बोर्ड, मुम्बई; नाभिकीय ईंधन कॉम्पलेक्स, हैदराबाद तथा विकिरण तथा समस्थानिक प्रौद्योगिकी बोर्ड, मुम्बई; और (तीन) चार सरकारी क्षेत्र के उपक्रम अर्थात् भारतीय नाभिकीय ऊर्जा निगम लिमिटेड; भारतीय यूरेनियम निगम लिमिटेड; इंडियन रेअर अर्थस एण्ड इलेक्ट्रोनिक्स कोरपोरेशन ऑफ इंडिया लिमिटेड।

यह विभाग छः राष्ट्रीय संस्थाओं अर्थात् टाटा इन्स्टीट्यूट ऑफ फंडामेंटल रिसर्च-मुम्बई, टाटा मैमोरियल सेंटर - मुम्बई, शाह इन्स्टीट्यूट ऑफ न्यूक्लिअर फिजिक्स-कलकत्ता, इन्स्टीट्यूट ऑफ फिजिक्स-भुवनेश्वर, मेहता रिसर्च इन्स्टीट्यूट - इलाहाबाद और गणित विज्ञान संस्थान-चेन्नई को पूरी सहायता दे रहा है।

नाभिकीय ऊर्जा कार्यक्रम

1954 में जब डा. होमी जे. भाभा ने यूरेनियम, थोरियम और प्लूटोनियम के प्राकृतिक संसाधनों का प्रयोग करने के लिए तीन चरणों में व्यापक नाभिकीय कार्यक्रम का प्रारूप तैयार किया था उस समय देश की दीर्घकालिक ऊर्जा आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए नाभिकीय ऊर्जा के महत्व को समझा गया था। इसमें ऊर्जा उत्पादन के लिए दाबानुकूलित भारी जल रिएक्टर, फास्ट ब्रीडर रिएक्टर्स, थोरियम आधारित रिएक्टर का निर्माण शामिल है। वर्षों से हमने स्वदेशी ऊर्जा संयंत्रों की स्थापना और उनके संचालन की क्षमता को विकसित कर लिया है। नाभिकीय ऊर्जा संबंधी आधारभूत सुविधाओं का विकास भारत के विभिन्न भागों में किया गया है।

बाक्स 4.2 : विद्युत उत्पादन के लिए नाभिकीय ऊर्जा का उपयोग : प्रगति

1969 :	तारापुर परमाणु विद्युत केन्द्र की स्थापना।
1972 और 1980 :	केंडु डिजायन और कनाडा के सहयोग से रावतभाटा (राजस्थान) में दाबानुकूलित भारी जल रिएक्टर (प्रेशराइज्ड हैवी वाटर रिएक्टर्स) स्थापित किए गये।
1984 और 1986 :	पूरी तरह स्वदेशी प्रौद्योगिकी का प्रयोग करके कलपक्कम और चेन्नई में दो और केन्डु रिएक्टरों का वाणिज्यिक उत्पादन शुरू किया गया।
1987:	नाभिकीय विद्युत बोर्ड को नाभिकीय विद्युत निगम में परिवर्तित किया गया।
1989:	नरौरा परमाणु विद्युत केन्द्र में 220 मेगावाट क्षमता के दो केन्डु डिजायन के रिएक्टर शुरू किए गये।
1992 और 1995 :	काकड़पारा (गुजरात) में दो और परमाणु विद्युत रिएक्टर शुरू किए गये।
आज की स्थिति के अनुसार :	नाभिकीय विद्युत संयंत्रों ने एक लाख मिलियन यूनिट से अधिक विद्युत का उत्पादन किया है। इस समय इंदिरा गांधी परमाणु अनुसंधान केन्द्र फास्ट ब्रीडर रिएक्टरों और सम्बद्ध प्रौद्योगिकियों का विकास कर रहा है।

अन्तरिक्ष कार्यक्रम

उच्च तकनीक का अन्य क्षेत्र जिसमें निरन्तर तथा उल्लेखनीय प्रगति हुई, वह अन्तरिक्ष कार्यक्रम है। भारत में अन्तरिक्ष कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य रॉकेट और उपग्रह तैयार करने तथा संचार मौसम विज्ञान तथा पृथ्वी के संसाधन सुदृढ़ करने के लिए स्वदेशी क्षमता प्राप्त करना है तथा अन्तरिक्ष विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में गतिविधियां प्रारम्भ में परमाणु ऊर्जा विभाग में आरम्भ की गईं। जब विक्रम साराभाई ने होमी भाभा के पश्चात् परमाणु ऊर्जा आयोग के अध्यक्ष के रूप में पद-भार संभाला तो उन्होंने अपना अधिकांश समय व ऊर्जा अन्तरिक्ष के क्षेत्र में योजना व कार्यक्रमों को लागू करने में लगाया। भारतीय अन्तरिक्ष कार्यक्रम 1972 में, अन्तरिक्ष आयोग तथा अलग से अन्तरिक्ष विभाग (डी.ओ.एल.) की स्थापना करके औपचारिक रूप में प्रारम्भ किया गया। ताकि अन्तरिक्ष प्रौद्योगिकी का विवाद तथा विशेषरूप से दूरसंचार, टेलीविजन प्रसारण, मौसम विज्ञान, संसाधनों सम्बन्धी सर्वेक्षण तथा प्रबन्धन में इसका उपयोग हो सके। उपग्रहों का विकास उपग्रह छोड़ने के लिए प्रयोग में आने वाले वाहन (लांच व्हीकल्स) तथा ग्राउन्ड प्रणाली अन्तरिक्ष कार्यक्रम के उद्देश्यों का अभिन्न अंग है। सोवियत संघ के सहयोग से 1975 में आर्यभट्ट तथा 1979 में भास्कर के सफल प्रक्षेपण के पश्चात् भारतीय अन्तरिक्ष कार्यक्रम ने गत $2^1/_2$ दशकों में एक अत्यन्त समेकित आत्मनिर्भर कार्यक्रम से महत्वपूर्ण उन्नति प्राप्त की है।

भारत का प्रथम, घरेलू रूप से निर्मित व डिजाइन किया गया, प्रयोगात्मक संचार उपग्रह एकल का प्रक्षेपण यूरोपियन ऐरियनस लांचर से जून 1981 में प्रक्षेपण किया गया जिसने अपना कार्य सफलतापूर्वक अक्तूबर 1983 में पूर्ण किया। उसी वर्ष, अर्थात् 1983 में भारतीय राष्ट्रीय उपग्रह प्रणाली (इनसेट) की स्थापना इनसेट-1 बी के साथ की गई।

इनसेट दूरसंचार मौसम सम्बन्धी पूर्वानुमान तथा डाटा रिले, टेलीविजन प्रसारण तथा रेडियो व टेलीविजन कार्यक्रम वितरण के लिए एक बहुद्देश्यीय उपग्रह प्रणाली है। यह अन्तरिक्ष विभाग (डी.ओ.एस.), दूरसंचार विभाग (डी.ओ.टी.), भारतीय मौसम विभाग (आई.एम.डी.), ऑल इंडिया रेडियो (ए.आई.आर.) तथा दूरदर्शन का संयुक्त उपक्रम है। अन्तरिक्ष विभाग, इनसेट अन्तरिक्ष सैगमैंट की स्थापना और परिचालन के लिए सीधे ही जिम्मेदार है। इस समय इस प्रणाली में प्रथम चरण का अन्तिम इनसेट-1 डी, जो कि 1991 में छोड़ा गया था तथा तीन इसरो द्वारा निर्मित द्वितीय चरण के उपग्रह, इनसेट-2-ए, इनसेट-2 बी तथा इनसेट 2-सी जिनका प्रक्षेपण क्रमशः जुलाई 1992, जुलाई 1993 तथा दिसम्बर 1995 में किया गया था, कार्यरत हैं। इनसेट-2 सीरीज में दो और उपग्रह, इनसेट-2 डी तथा 2-ई निर्माणाधीन हैं।

आज देश में विभिन्न किस्म के 210 दूरसंचार टर्मिनल हैं जिनमें 50 टर्मिनल देश के पूर्वोत्तर भाग के ग्रामीण टैलीग्राफी के लिए हैं जो कि इनसेट नेटवर्क पर लगभग 4410 द्विमार्गी स्पीड सर्किट और 162 से भी अधिक रूटों पर कार्यरत हैं। 700 से भी अधिक माइक्रो टर्मिनल राष्ट्रीय सूचना केन्द्र के अन्तर्गत स्थापित किए गए हैं जो कि जिले व राज्य की राजधानियों के बीच राष्ट्रव्यापी आंकड़ों का सम्पर्क स्थापित करते हैं।

मौसम से संबंधित आंकड़े इनसेट पर तथा इसके विप्रथन पर 'वेरी हाई रेजोल्यूशन रेटियोमीटर' (वी. एच. आर. आर.) यन्त्र से एकत्र किये जाते हैं जिसमें दूरस्थ क्षेत्रों के आंकड़े, आरक्षित प्लेटफार्म से प्राप्त किये जाते हैं जिनसे कि देश में मौसम सम्बन्धी अग्रिम जानकारी में सुधार आया है। उपग्रह पर आधारित, स्थानीय विशिष्ट आपदा चेतावनी प्रणाली स्थापना के अन्तर्गत सौ से अधिक आपदा चेतावनी रिसीवर चक्रवात प्रभावित तटीय क्षेत्रों में लगाए गए हैं।

इनसेट ने टेलीविजन सेवा की व्यापकता को बढ़ाने में मदद की है। 700 से अधिक टी. वी. ट्रांसमीटर इनसेट से जुड़े हैं। इनसेट टेलीविजन नेटवर्क भारत की 80 प्रतिशत से अधिक जनता तक पहुंचता है। अब इनसेट-2 सी के प्रक्षेपण से भारतीय टेलीविजन की पहुंच भारतीय सीमा से भी पार हो गई है तथा अब दक्षिण-पूर्व एशिया से मध्य-पूर्व तक की जनता तक पहुंच रखता है। इनसेट के माध्यम से शैक्षिक टेलीविजन सेवा, विभिन्न राज्यों में विश्वविद्यालय स्तर पर राष्ट्रीय नेटवर्क पर तथा प्राथमिक स्कूल स्तर पर आन्ध्र प्रदेश, उड़ीसा, महाराष्ट्र, गुजरात और उत्तर प्रदेश आदि राज्यों में प्रारम्भ की गई है। इनसेट पर एक चैनल, शैक्षिक और प्रशिक्षण विकास के लिए समर्पित है। उपग्रह आधारित विकास, संचार और प्रशिक्षण तथा दो वर्षीय प्रायोगिक परियोजना मध्य प्रदेश के झबुआ जिले में प्रारम्भ की गई है।

भारतीय दूर-संवेदी उपग्रह प्रणाली

भारतीय दूर संवेदी उपग्रह प्रणाली (आई. आर. एस.) नेशनल रिसोरसिज मैनेजमेंट सिस्टम (एन. एन. आर. एम. एस.) जिसका अन्तरिक्ष विभाग (डी. ओ. एस.)एक नोडल एजेन्सी है तथा जो कि दूर-संवेदी आंकड़ा सेवा प्रदान करती है का मुख्य आधार है। भारतीय दूर-संवेदी उपग्रह प्रणाली, आई. आर. एस.-। ए जो कि मार्च 1988 में प्रारम्भ किया गया, द्वारा परिचालित की गई। एन. एन. आर. एम. एस. के अन्तर्गत दूर-संवेदी उपग्रह प्रणाली अनेक क्षेत्रों, जैसे कि फसल (एकड़ों में) पैदावार आकलन, सूखा चेतावनी और मूल्यांकन, बाढ़ नियंत्रण और क्षति मूल्यांकन, भूमि प्रयोग/भूमि सूचना, कृषि जलवायु योजना, बंजर भूमि प्रबन्धन, जल संसाधन प्रबन्धन, भूमिगत जल दोहन, बर्फ पिघलने की भविष्यवाणी अपवाह, जलविभाजक और कमांड क्षेत्र प्रबन्धन, मत्स्य विकास, शहरी विकास, खनिज उपलब्धता, वन स्रोत सर्वेक्षण आदि को कवर करती है। अन्तरिक्ष आधारित दूर संवेदन क्षमता के प्रभावी दोहन के लिए प्रयोगकर्ता मंत्रालय विभाग ने सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित की है।

आई.आर.एस. आंकड़ों का एक महत्वपूर्ण प्रयोग निरंतर विकास समेकित मिशन (आई.एम.एस.डी.) के लिए किया जाता है जिसे 1992 में आरम्भ किया गया था। आई.एम.एस.डी. जिसके अन्तर्गत 174 जिलों की पहचान की गई है, का उद्देश्य निरंतर विकास के लिए स्थान विशेष हेतु कार्य योजनाएं बनाना है।

प्रक्षेपण-यान प्रौद्योगिकी

रॉकेट इंजनों की बनावट और विकास को अंतरिक्ष कार्यक्रम के पूर्व वर्षों से लिया गया था, आरम्भ में ठोस "प्रोपिलेट" इंजनों के विकास पर बल दिया गया था भारतीय उद्योग इन इंजनों का उत्पादन करता रहा है उच्च शक्ति इंजनों का निर्माण और परीक्षण किया गया है।

भारत ने एस.एल.वी.-3 के माध्यम से अगस्त, 1980 में लांच-यान विकास कार्यक्रम साधारण तरीके से शुरू किया था जो 40 कि.ग्रा. वर्ग के उपग्रहों को पृथ्वी की कक्षा के नजदीक भेज सकता था। क्षमता को "आग्यूमेंटेड सेटलाइल जांच व्हीकल" - ए.एस.एल.वी. के जरिए और बढ़ाया गया - इसने मई, 1992 और मई, 1994 में दो सफल उड़ान भरी - जब इसने एस.आर.ओ.एस.एस. (स्ट्रच्ड रोहिनी सेटलाइट सीरिज, उपग्रहों को पृथ्वी की निचली कक्षा में छोड़ा, जिसके साथ "ग्रामा के बर्स्ट एक्सपेरिमेंट और रिटार्डिंग पोटेनशियल एनलाइजर" था। दूसरा उपग्रह एस.आर.ओ.एस.एस. सी-2 अभी भी महत्वपूर्ण वैज्ञानिक आंकड़े भेज रहा है।

भारत ने आपरेशनल व्हीकल और पोलर सेटलाइल लांच व्हीकल (पी.एस.एल.वी.) का विकास किया है जो 1,000-1,200 कि.ग्रा. के भारतीय दूर संवेदी (आई.आर.एस.) वर्ग के दूर संवेदी उपग्रहों को "पोलर स्नसिंक्रोनस" कक्षा में प्रक्षेपण करने में समर्थ है। अंतरिक्ष विभाग अब सक्रियता से "जियोस्टेशनरी" उपग्रह प्रक्षेपण यान और (जी.एस.एल.वी.) का निर्माण करने में लगा हुआ है और इसकी प्रथम विकास परीक्षण उड़ान 1997-98 में निर्धारित है।

इलैक्ट्रोनिकी

इलैक्ट्रोनिकी को विभिन्न क्षेत्रों में समस्याओं के समाधान करने के एक महत्वपूर्ण साधन के रूप में जाना जाने लगा है। इलैक्ट्रोनिकी का प्रयोग रोजगार-सृजन, साक्षरता और शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि अवसंरचना और जनसंख्या नियंत्रण के रूप में देखा जाता है। इलैक्ट्रोनिकी विभाग बदलते आर्थिक वातावरण के अनुरूप नीतियों को अपना रहा है और अपनी योजना प्राथमिकताओं को बदल रहा है। विभाग इलैक्ट्रोनिकी के लाभों को जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पहुंचाने की कोशिश कर रहा है और भारतीय इलैक्ट्रोनिकी उद्योग को अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा में लाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहा है। इसे तीन-सूत्रीय रणनीति के तहत प्राप्त किया जा रहा है अर्थात् प्रौद्योगिकी विकास के लिए सहायता करना, महत्वपूर्ण अवसंरचना की स्थापना करना और औद्योगिक विकास के अनुरूप नीतियां बनाना।

भारत में इलैक्ट्रोनिकी उद्योग के समग्र उत्पादन का वितरण बहुत विस्तृत है। इस समय 3,600 से अधिक इकाइयां हैं जिनमें 11 केंद्रीय सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयां हैं (29 विनिर्माण संस्थानों सहित), 65 इकाइयां राज्य के सार्वजनिक क्षेत्र में हैं, 565 से अधिक इकाइयां संगठित निजी क्षेत्र में और 2,800 से अधिक इकाइयां लघु उद्योग क्षेत्र में हैं। सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयां और लघु उद्योग क्षेत्र की इकाइयां का इलैक्ट्रोनिकी उत्पादन में क्रमशः 19 और 40 प्रतिशत योगदान है। संगठित निजी क्षेत्र का उत्पादन में योगदान 41 प्रतिशत है।

महासागर विकास

भारत की तट-रेखा 7,500 कि.मी. से अधिक लम्बी है और इसके भू-भाग में 1,256 द्वीपसमूह हैं, इसका अनन्य आर्थिक क्षेत्र लगभग 20 लाख वर्ग कि.मी. है और (कोंटिनेन्टल शैल्फ) महाद्वीपीय भू-भाग से 350 समुद्री मील है। वस्तुतः महासागरीय संसाधनों के विकास और समुद्री पर्यावरण के संरक्षण का क्षेत्र तटीय भू-भाग और द्वीपसमूह से बृहत हिन्द महासागर तक फैला हुआ है। महासागर विकास विभाग की स्थापना 1981 में की गई थी जिसका उद्देश्य कार्य को पूरा करने के लिए आवश्यक बहुरूपीय प्रयास को बढ़ावा देना और समन्वित करना था इसके अलावा अंटार्कटिका अनुसंधान के नए उभरते क्षेत्र का विकास और गहरे समुद्र के तल में खनन कार्य था।

अंटार्कटिका अनुसंधान कार्यक्रम

अंटार्कटिका समस्त मानवजाति के लाभ के लिए वैज्ञानिक अनुसंधान करते हेतु उत्कृष्ट अवसर प्रदान करता है। यह विश्वव्यापी महत्व की एक पुरातन प्रयोगशाला है इसके अनुसंधानकर्ताओं को भूमंडलीय वातावरण की विलक्षण घटनाओं को खोजने और उनका निरीक्षण करने जैसे वातावरणीय ओजोन का कम होना, भूमंडल का गरम होना और समुद्र के स्तर में परिवर्तन का मौका दिया। अंटार्कटिका संधि दल जिसमें भारत भी शामिल है, अंटार्कटिका में वैज्ञानिक अनुसंधान के लिए पूरी तरह कटिबद्ध हैं। इन दलों ने अंटार्कटिका की महत्वपूर्ण भूमिका को बहुत पहले मान्यता दे दी थी जो कि अंटार्कटिका भूमंडलीय पर्यावरणीय प्रक्रियाओं को समझने में अदा करता है और अनुसंधान के लिए विशिष्ट अवसर प्रदान करता है। भारतीय अंटार्कटिका अनुसंधान की शुरूआत, विकास और समन्वय जो 1981 में प्रथम अभियान को शुरू करने के साथ प्रारम्भ हुआ था, वैज्ञानिक गतिविधियों के बहुत विस्तृत दायरे में अभी भी जारी है।

1981 से अंटार्कटिका अनुसंधान गतिविधियां एक नियमित खास बात बन गई है। हर वर्ष वैज्ञानिक अनुसंधान अभियान भेजे जाते हैं। 1983-84 में स्थापित प्रथम केन्द्र दक्षिण गंगोत्री

से लगभग 70 कि.मी. दूर बर्फ से मुक्त क्षेत्र में एक दूसरा स्थायी स्टेशन (देश में ही तैयार किया गया) स्थापित किया गया है।

भारतीय अंटार्कटिका अनुसंधान कार्यक्रमों को अंटार्कटिका के विलक्षण और वातावरण का लाभ उठाने जो हमारी भावी कल्याण को नियंत्रित करने की भूमंडलीय प्रक्रियाओं को समझने में महत्वपूर्ण है, के उद्देश्य से तैयार किया जाता है। 20 से अधिक अनुसंधान संस्थाओं, विश्वविद्यालयों और सरकारी विभागों ने अंटार्कटिका अनुसंधान कार्यक्रम की सफलता में योगदान किया है। इन गतिविधियों के लिए अमूल्य साजो-सामान सहायता तीन सेवाओं — सेना, नौ सेना, वायुसेना और रक्षा अनुसंधान और विकास संगठन ने प्रदान की है। भारतीय अंटार्कटिक कार्यक्रमों ने विभिन्न संस्थानों और एजेंसियों के 1,000 से अधिक व्यक्तियों को अनुसंधान और मूल जानकारी प्राप्त करने के अवसर प्रदान किए जिनमें वैज्ञानिक और रक्षा सेवाओं के कर्मी भी शामिल हैं। उन्होंने विशिष्ट क्षेत्रों में स्वदेशी प्रौद्योगिकी को प्रोत्साहन दिया है।

वर्ष 1981 से प्रारम्भ किए गये अंटार्कटिका के वार्षिक अभियानों ने आधारभूत तथा पर्यावरणीय विज्ञान में अग्रिम दर्जे के अनुसंधान प्रयासों के लिए स्पष्ट भूमिका तैयार करने में सहायता की है तथा अंटार्कटिका सन्धि राष्ट्रों में भारत के लिए सुपात्र मान्यता दिलवायी है। अंटार्कटिका संधि प्रणाली में भारत का परामर्शदात्री दर्जा है। यह अंटार्कटिका अनुसंधान संबंधी वैज्ञानिक समिति का सदस्य और अंटार्कटिका समुद्री जीव संसाधनों के संरक्षण संबंधी सम्मेलन में भागीदार हैं। वातावरण विज्ञान, मौसम विज्ञान, जीव विज्ञान, समुद्र विज्ञान, भू-विज्ञान आदि से संबंधित वैज्ञानिक अनुसंधान कार्यक्रमों की निरन्तरता में अब तक अन्टार्कटिका को पन्द्रह वैज्ञानिक अभियान भेजे गये हैं।

गहरे समुद्र तल में अन्वेषण

गहरे समुद्र में अन्वेषण के क्षेत्र, ''पोलिमेटलिक नोड्यूलस'' की अवस्थिति तथा नमूने लेने पर विशेष बल सहित, में किए गये अग्रगामी कार्य के परिणामस्वरूप भारत को वर्ष 1982 में अग्रगामी निवेशक के रूप में मान्यता दी गई थी। अगस्त 1987 में अन्तर्राष्ट्रीय समुद्र तल प्राधिकरण के लिए प्रारम्भिक आयोग द्वारा मध्य हिन्द महासागर में 1.5 लाख वर्ग कि.मी. का एक खान स्थल आबंटित किया गया था।

तीन लाख वर्ग किलोमीटर संभावित क्षेत्र के रेखांकन के आधार पर अगस्त, 1987 में एक अग्रगामी निवेशक के रूप में दर्ज होने वाला भारत विश्व का प्रथम देश था। अब तक सर्वेक्षण तथा अन्वेषण प्रयास मुख्यतया ''नोड्यूलस'' की सापेक्ष गहनता तथा गुणवत्ता संबंधी विशेषताओं तथा मोटे तौर पर समुद्र तल की स्थलाकृति के आकलन के लिए किए जाते रहे हैं। 1.5 लाख वर्ग कि.मी. के समस्त अग्रगामी क्षेत्र का सर्वेक्षण ''हाइड्रो स्वीप'' का प्रयोग करके पूरा किया गया है। पर्यावरणीय आंकड़े, भौतिक, रासायनिक तथा जैविक पैरामीटरों से संबंधित समुद्र संबंधी आधार रेखा आंकड़ें भी एकत्रित किए गये हैं। दोहक धातु विज्ञान परियोजना के अन्तर्गत पदार्थ तथा ऊर्जा सन्तुलन पाने के लिए राष्ट्रीय धातु विज्ञान प्रयोगशाला, जमशेदपुर तथा क्षेत्रीय अनुसंधान प्रयोगशाला, भुवनेश्वर में उन्नीस पायलट प्लांट अभियान पूरे किये गये हैं।

जैव प्रौद्योगिकी

जैव प्रौद्योगिकी का मुख्य उद्देश्य ऐसे उत्पादों तथा प्रक्रियाओं/प्रौद्योगिकियों का विकास करना है जिनके व्यापक स्तर पर प्रयोग से स्वास्थ्य, कृषि, पशु संसाधन विकास, मत्स्य पालन, ऊर्जा, पर्यावरण तथा वन और उद्योग क्षेत्रों में समाज को लाभ होता है। प्रौद्योगिकी के इस विषय को भारत में आयोजना में उस समय विशेष ध्यान दिया गया जब भारत सरकार ने वर्ष 1986 में एक अलग जैव प्रौद्योगिकी विभाग की स्थापना की जिसने तब से इस क्षेत्र की प्रोन्नति तथा आधुनिक जीव विज्ञान के लिए एक सुदृढ़, स्वदेशी तथा आत्मनिर्भर आधार बनाने हेतु क्रियाकलापों का एक दशक पूरा किया है। विभाग ने देश में विभिन्न जैव प्रौद्योगिकी अनुसंधान, शिक्षण तथा औद्योगिक गतिविधियों के लिए सुप्रशिक्षित वैज्ञानिक कार्मिकों को तैयार करने के लिए एक समन्वित जन-शक्ति विकास कार्यक्रम तैयार किया है। इनमें जैव प्रौद्योगिकी का शिक्षण, प्रशिक्षण तथा इसे लोकप्रिय बनाना शामिल है। देश में विभिन्न वैज्ञानिक संस्थाओं में अब संरचनात्मक सुविधाएं उत्पन्न की गई हैं जिनमें ''जर्म प्लाज्म'' एकत्रित करना, पशु आवास सुविधाएं, ''एनजाइम्स'' तथा जैव रसायनों के आयात तथा वितरण के लिए केन्द्रीयकृत सुविधा जैव इंजीनियरिंग इकाइयां तथा जैव आसूचना प्रणाली का नेटवर्क आदि शामिल हैं।

संक्रामक तथा असंक्रामक बीमारियों का शीघ्र पता लगाने के लिए प्रयोग करने में आसान, कम खर्च वाले तथा संवेदनशील रोग निदान किट का विकास करने के लिए कई कार्यक्रम प्रारम्भ किए गये हैं। फसल जैव प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में प्रतिस्रोत क्षेत्र में अनुसंधान के लिए वनस्पति आणविक जीव विज्ञान (प्लांट मोलिक्यूलर बायोलोजी) के कई केन्द्रों (सी. पी. एम. बी.) की अब तक स्थापना की गई है। बागवानी तथा रोपण फसलों के क्षेत्र में, कई अनुसंधान तथा विकास परियोजनाओं को, वांछित विशेषताओं वाली उन्नत रोपण सामग्री की व्यापक स्तरीय वृद्धि हेतु पूर्ण ''टिशू कल्चर रिजनरेशन प्रोटोकॉल्स'' विकसित करने के लिए प्रारम्भ किया गया है। जहां तक पशु जैव प्रौद्योगिकी का संबंध है, इन प्रमुख क्षेत्रों में अनुसंधान किया जा रहा है—भ्रूण अन्तरण प्रौद्योगिकी (ई.टी.टी.), स्वास्थ्य देखभाल, रोग निदान, पोषण, जैव संसाधन संरक्षण, चमड़ा जैव प्रौद्योगिकी तथा जैव उत्पादों का विकास।

यह उल्लेखनीय है कि पर्यावरण की सुरक्षा के लिए जैव प्रौद्योगिकी के विशिष्ट प्रयोग तथा अनुसंधान तथा विकास प्रयासों के माध्यम से जैव विविधता का संरक्षण करने के महत्वपूर्ण

परिणाम निकले हैं। इसमें शामिल क्षेत्र हैं–पर्यावरणीय प्रदूषण, पर्यावरणीय गुणवत्ता की निगरानी तथा पुन:स्थापना, गैर-नवीकरणीय स्रोतों के स्थान पर नवीकरणीय स्रोतों का प्रतिस्थापन जैव उपचार, विषैले औद्योगिक अपशिष्ट/एकसीनो बायोरिक्स के जैव अपक्ष्य संबंधी विकार में सुधार, साफ प्रौद्योगिकियों का विकास तथा खतरे में पड़ी पौधों की किस्मों का संरक्षण, जिनका राष्ट्र के लिए अधिक महत्व है।

इस समय, गम्भीर कीटों तथा कपास, गन्ना, दालों, तिलहन तथा सब्जियों को प्रभावित करने वाली बीमारियों को नियन्त्रित करने के लिए देश भर में विभिन्न संस्थाओं/विश्वविद्यालयों में 48 अनुसंधान तथा विकास परियोजनाओं के साथ जैव नियन्त्रण नेटवर्क कार्यक्रम क्रियान्वयनाधीन हैं।

औद्योगिक जैव-प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में, विशेष आवश्यकता आधारित आदानों के साथ उत्पादों तथा प्रक्रियाओं का विकास करने के लिए प्रयास किए जा रहे हैं ताकि अर्ध तैयार अनुसंधान तथा विकास परिणामों को औद्योगिक उपयोगी उत्पादों में परिवर्तित किया जा सके।

औद्योगिक अनुसंधान

उद्योग राष्ट्रीय घरेलू उत्पाद की वृद्धि में प्रमुख योगदान करते हैं। देश में वैज्ञानिक गतिविधि के विभिन्न क्षेत्रों में औद्योगिक अनुसंधान का कार्य वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान परिषद (सी.एम.आई.आर.) द्वारा देश भर में स्थापित की गई 40 प्रयोगशालाओं तथा 81 फील्ड स्टेशन, विस्तार केन्द्र/क्षेत्रीय केन्द्रों के नेटवर्क के माध्यम से किया जा रहा है। वर्ष 1942 में स्थापित सी. एस. आई. आर. एक स्वायत्त निकाय है जिसके पास विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के विकास के लिए एक व्यापक चार्टर है।

अनुसंधान के क्षेत्र में अणु संबंधी जीव विज्ञान से चमड़े, भूकम्प संबंधी विज्ञान से कम्प्यूटर मॉडलिंग, अंतरिक्ष से महासागर-विज्ञान, कांच से इस्पात, माइक्रो-इलैक्ट्रानिक से विभिन्न परीक्षण सुविधाओं आदि में परिवर्तित हो सकते हैं।

सी.एस.आई.आर. की प्रयोगशालाओं ने मूलभूत परिवर्तनों पर और विश्व अर्थव्यवस्था के साथ भारतीय अर्थव्यवस्था को जोड़ने के लिए सरकार द्वारा लागू की गई औद्योगिक, आर्थिक और व्यापारिक नीतियों पर प्रतिक्रिया व्यक्त की है। स्वतंत्रता प्राप्ति से लेकर अब तक औषधियों, कृषि-रसायनों, रसायनों तथा पैट्रोरसायनों, पेट्रोलियम शोधन, खाद्य तथा खाद्य-प्रसंस्करण, सामग्री मशीनरी और उपस्कर तथा अपशिष्ट पदार्थों का संसाधन सहित अनेक क्षेत्रों में सफलतापूर्वक प्रौद्योगिकी का हस्तांतरण हुआ है।

सी.एस.आई.आर. द्वारा उद्योगों की नई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अनुसंधान तथा विकास कार्यक्रमों को पुन: अनुकूल बनाने तथा प्राथमिकताओं को पुन: निर्धारित करने हेतु प्रत्येक योजनावधि के दौरान पहल की गई थी। सी.एस.आई.आर. ने फैलोशिप/एसोसिएटशिप प्रदान करने की योजनाओं के माध्यम से तथा विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों में पाठ्यक्रम से बाहर की अनुसंधान तथा विकास योजनाओं को सहायता देकर भारत में उच्च प्रतिभा प्राप्त अनुसंधान तथा विकास संबंधी मानव शक्ति के विकास में काफी महत्वपूर्ण योगदान दिया है। अब तक सी.एस.आई.आर. द्वारा 45,000 अनुसंधान फैलोशिप/ एसोसिएटशिप प्रदान की गई हैं।

कृषि अनुसंधान

पिछले पचास वर्षों में उत्पादन तथा फसल-कटाई उपरान्त के विभिन्न आयामों में विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के परिणामस्वरूप ग्रामीण परिवेश में व्यापक परिवर्तन हुए हैं।

भारत में कृषि अनुसंधान को बढ़ावा देने, इसका मार्ग-दर्शन कराने तथा समन्वयन करने के लिए 1929 में इम्पीरियल काउंसिल ऑफ एग्रीकल्चरल रिसर्च की स्थापना हुई। वर्ष 1947 में इसका नाम भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (आई.सी.ए.आर.) रखा गया। कुछ समय बाद कृषि अनुसंधान तथा शिक्षण विभाग (डी.ए.आर.ई.) की स्थापना की गई थी और आई.सी.ए.आर. के महानिदेशक डी.ए.आर.ई. के सचिव भी बने। अब आई.सी.ए.आर. के अन्तर्गत 46 केन्द्रीय अनुसंधान संस्थान (जिसमें 4 राष्ट्रीय संस्थान हैं) और 26 राष्ट्रीय अनुसंधान केन्द्र कार्य कर रहे हैं। आई.सी.ए.आर. ने 29 कृषि विश्वविद्यालयों (पूर्वोत्तर क्षेत्र के लिए इम्फाल में केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय सहित) की स्थापना से सहायता प्रदान की है। पिछले पांच दशकों में आई.सी.ए.आर. ने विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी को व्यापक रूप से अपनाकर भारत के कृषि उत्पादन में महान योगदान दिया है। अनुसंधान द्वारा पैदा की गई उन्नत किस्मों तथा तत्संबंधी उत्पादन, प्रौद्योगिकियों के फलस्वरूप ही भारतीय कृषि में ''हरित क्रांति'' आई। आई.सी.ए.आर. द्वारा किए जा रहे अनुसंधान तथा विकास कार्यों का प्रभाव स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् उत्पादन में हुई प्रगति से स्पष्ट रूप से प्रतिबिम्बित होता है। हाल में एकल उत्पाद अनुसंधान के बजाय कृषि प्रणाली अनुसंधान और संसाधन संरक्षण और प्रबंध अनुसंधान पर जोर दिया जा रहा है। व्यापक वैज्ञानिक आधारभूत ढांचे ने निश्चय ही पिछले अनेक दशकों में खाद्यान्न, दूध, गन्ने, फल, सब्जियों, प्याज, आलू, अण्डे, कपास, तिलहन आदि का उत्पादन बढ़ा दिया है।

स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले भारत समय-समय पर अकाल का सामना करता रहा जिसमें अनेक लोग मृत्यु के शिकार हुए। यहां तक कि तीस वर्ष पहले, हमें आयात द्वारा खाद्यान्न के आन्तरिक उत्पादन को पूरा करना पड़ा था। अब हमारा देश खाद्यान्न सहित अनेक किस्मों के कृषि उत्पादों का निर्यात करने में समर्थ है। खेतों में विज्ञान को तीव्रता से अपनाने और कृषकों द्वारा नई किस्मों को उपयोग में लाने तथा उनके द्वारा की गई कड़ी मेहनत के परिणामस्वरूप लगभग दो दशक पहले हम खाद्यान्न के क्षेत्र में आत्मनिर्भर हो गए। निश्चय ही साठ के दशक में दूरदर्शी राजनीतिक तथा प्रशासनिक नेतृत्व ने इस उपलब्धि में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

चिकित्सा अनुसंधान

भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद (आई.सी.एम.आर.) की स्थापना वर्ष 1949 में हुई थी लेकिन यह मूलत: इंडियन रिसर्च फंड एसोसिएशन (आई.आर.एफ.ए.) था। जिसकी स्थापना सन् 1911 में हुई थी। आई.आर.एफ.ए. का मुख्य उद्देश्य देश में चिकित्सा अनुसंधान को प्रायोजित तथा समन्वित करना था। अब भारत के विभिन्न भागों में आई.सी.एम.आर. के अन्तर्गत 21 राष्ट्रीय अनुसंधान संस्थान/केन्द्र हैं जिनके अपने निर्धारित मिशन हैं। ये संस्थान/केन्द्र विशेष क्षेत्रों, जैसे क्षय रोग, कुष्ठ रोग, हैजा, दस्त रोग, एड्स सहित वायरल रोग, मलेरिया, कालाज़ार, रोग-वाहक, नियंत्रण पोषण, खाद्य तथा औषध विष विज्ञान, प्रजनन, रक्त रोग, प्रतिरक्षा विज्ञान (इम्यूनोहेमाटोलोजी), कैंसर संबंधी विज्ञान इत्यादि।

इसके साथ ही, वहां 6 क्षेत्रीय चिकित्सा केन्द्र भी हैं जो क्षेत्रीय स्वास्थ्य समस्याओं पर ध्यान रखते हैं। सीमित संसाधनों को देखते हुए भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद प्रतिस्पर्धात्मक क्षेत्रों के बीच अनुसंधान कार्यों में संतुलन बनाये रखने की कोशिश कर रहा है। संक्रामक बीमारियों, कुपोषण और जनसंख्या में भारी वृद्धि चिकित्सा अनुसंधान की मुख्य प्राथमिकतायें हैं। रिसर्च ग्रुपों द्वारा हृदय संबंधी बीमारियां, उपापचयो विकार, (डायबिटीज, मेल्लीटस सहित), तंत्रिका संबंधी विकार, कैंसर मनोरोग, अंधता आदि जैसी स्वास्थ्य समस्याओं पर ध्यान दिया जा रहा है। जड़ी-बूटियों पर आधारित परंपरागत औषधियों पर भी अनुसंधान कार्य किए जा रहे हैं। भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद एक ओर स्वास्थ्य संबंधी, विभिन्न समस्याओं और बीमारियों को नियंत्रित करने की दिशा में उपलब्ध ज्ञान का उपयोग कर रहा है तथा दूसरी ओर बीमारियों के कारणों का अध्ययन करने, उनके शीघ्र निदान करने और उपचारात्मक विधि द्वारा उन पर नियंत्रण करने के लिए आधुनिक जीव विज्ञान के उपकरणों का प्रयोग कर रहा है, बीमारियों की रोकथाम हेतु टीका विकसित करना भी उनकी गतिविधियों का मुख्य क्षेत्र है।

भविष्य

अनुसंधान और विकास में कम निवेश

अनुसंधान और विकास में निवेश सकल घरेलू उत्पाद का 0.73 प्रतिशत है। अनुसंधान और विकास में कम निवेश के फलस्वरूप न केवल अनुसंधान का विस्तार असंभव है अपितु विद्यमान सुविधाओं का पूरा दोहन भी नहीं हो पाता है। उन्नत उपकरणों और जानकारी के अभाव में विद्यमान संस्थानों को अप्रचलित उपकरणों और प्रक्रियाओं से काम चलाने पर मजबूर होना पड़ता है जिससे यह निम्न स्तर का अनुसंधान हो जाता है।

अपर्याप्त वैज्ञानिक और प्रौद्योगिक जनशक्ति

औद्योगिक देशों में, शिक्षा के दूसरे और तीसरे स्तर पर अनुसंधान और विकास पूर्व अध्ययन करने वाले वैज्ञानिकों और तकनीशियनों की संख्या लगभग 85 प्रतिशत है। भारत में, व्यावसायिक और तकनीकी शिक्षा के लिए प्रति वर्ष 7.74 लाख व्यक्ति दाखिला लेते हैं। तकनीकी शिक्षा पर बजट की मात्र 4.5 प्रतिशत राशि व्यय होती है। ऐसी परिस्थिति में न केवल विद्यमान और आयातित प्रौद्योगिकी को अपनाने में कठिनाई होती है अपितु नई प्रौद्योगिकियों का विकास भी नहीं हो पाता।

निजी क्षेत्र द्वारा अनुसंधान और विकास में कम योगदान

देश में अनुसंधान और विकास कार्य मुख्यत: सरकारी क्षेत्र में ही हुआ है। अनुसंधान और विकास पर होने वाले कुल व्यय का 85 प्रतिशत भाग केन्द्र और राज्य सरकारें वहन करती हैं जबकि निजी क्षेत्र द्वारा 15 प्रतिशत भार वहन किया जाता है। निजी अनुसंधान, विशेषकर उद्योग संगत अनुसंधान, को प्रोत्साहन देने के लिए आयकर अधिनियम—समस्त अनुसंधान संबंधी व्यय या अनुसंधान संस्थाओं को दिये जाने वाले चंदे को कटौती योग्य माना जाता है—की धारा 35 के अंतर्गत करों में छूट दी गयी है। एक समय तो यह कटौती 135 प्रतिशत तक उपलब्ध थी। इसके बावजूद, निजी क्षेत्र में निवेश जो 1965-66 में 3.55 प्रतिशत था, 1982-83 में मात्र 16.33 प्रतिशत तक बढ़ा। तत्पश्चात् यह 10 प्रतिशत से 15 प्रतिशत के बीच रहा है। इसका मुख्य कारण सुनिश्चित घरेलू बाजार के वातावरण में घरेलू औद्योगिक संरक्षण और औद्योगिक एकाधिकार और अल्पाधिकार संबंधी हमारी विगत नीतियां रही हैं।

सरकारी संस्थानों द्वारा अनुसंधान और विकास : परिवर्तन की आवश्यकता

मुख्यत: सरकारी संस्थानों द्वारा किये गए अनुसंधान कार्य जो उद्योग तथा लोगों की दैनिक आवश्यकताओं से संबंधित नहीं होते हैं तथा सरकारी प्रक्रियाओं के मानदंडों के अंतर्गत और संसाधनों की कमी की अवस्था में किये जाते हैं। अन्य प्रयोक्ताओं के लिए यह अधिक लाभप्रद नहीं होते हैं। ऐसे अनुसंधान प्रयोगशालाओं तक ही सीमित रह जाते हैं। प्रयोगशालाओं से प्रयोक्ताओं तक प्रौद्योगिकियों के हस्तांतरण के लिए विस्तार, स्थल परीक्षण और अनुप्रयोग हेतु अतिरिक्त निवेश की भी आवश्यकता है। आज देश को उत्पादन करने वाले उद्यमियों के अभिन्न अंग के रूप में अनुभवी वैज्ञानिकों तथा प्रौद्योगिकी अविष्कारकों की आवश्यकता है न कि विज्ञान और प्रौद्योगिकी नौकरशाहों की।

क्या हम एक ऐसी अनुसंधान संस्कृति विकसित कर सकते हैं, जिसमें उत्पादन करने वाले उद्यमी अपने ही उद्योग में ऐसी क्षमताएं विकसित करें जिससे तेजी से बदलती प्रौद्योगिकियों के साथ प्रतिस्पर्धा कर सकें। सरकारी बजट पर अतिरिक्त बोझ डाले बिना हम अनुसंधान और विकास में निवेश को कैसे बढ़ा सकते हैं? सरकारी एजेंसियों की अनुसंधान संबंधी गतिविधियों को कैसे अधिक से अधिक प्रयोक्तान्मुख बना सकते हैं? हम उन्हें विशिष्ट लक्ष्य और समय-सीमा के अंदर पूर्ण होने वाले गतिविधियां किस प्रकार बना पायेंगे?

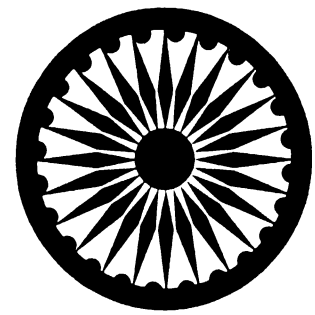

मानव विकास

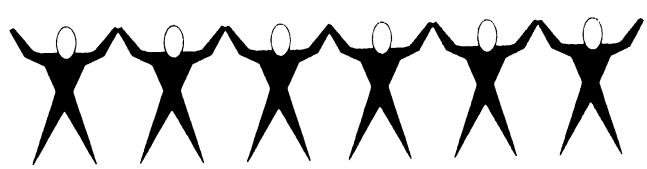

5

जनसंख्या

वर्ष 2001 में अगली दशवार्षिक जनगणना तक भारत की जनसंख्या के एक अरब तक पहुंच जाने की संभावना है और इस प्रकार जनसंख्या के मामले में भारत विश्व के सर्वाधिक जनसंख्या वाले देश चीन को दूसरे नम्बर पर धकेल देगा। परिवार नियोजन के पचास वर्षों में भारत मात्र लगभग 20 करोड़ व्यक्तियों के जन्म को टालने, जीवन प्रत्याशा में 20 वर्ष की वृद्धि करने, शिशु मृत्यु संख्या को आधा करने में ही सफल हुआ है, जबकि दक्षिण पूर्व एशिया के अन्य देश काफी आगे निकल गए हैं। उच्च जननक्षमता दर और माताओं की मृत्यु संख्या, महिलाओं के अनुपात में कमी, शहरीकरण में निरन्तर वृद्धि, प्रति व्यक्ति आय के लगातार कम रहने तथा अमीर और गरीब के बीच बढ़ता हुआ अन्तर चिन्ताजनक पहलू है। चार राज्यों—बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान और उत्तर प्रदेश में जनसंख्या वृद्धि को रोकने के लिए अपनाई गई नीतियों पर अत्यधिक निगाह रखने के बावजूद अभी तक किये गये प्रयासों के नतीजे निराशाजनक रहे हैं और देश की जनसंख्या में 42% वृद्धि हो गई है, जिस पर सर्वाधिक प्राथमिकता के आधार पर ध्यान दिया जाना चाहिए।

जनसंख्या का परिमाण

वर्ष 1951-61 के दौरान 36 करोड़ 10 लाख की तुलना में आज हमारी जनसंख्या 96 करोड़ है। इन वर्षों के दौरान हमारी जनसंख्या में चीन की आधी जनसंख्या के बराबर वृद्धि हुई है। विश्व की समूची जनसंख्या का 16 प्रतिशत भारत की जनसंख्या है। हमारे जनसांख्यिकीय आकार और ढांचे का, खाद्य सुरक्षा, पोषण, स्वास्थ्य, शिक्षा, रोजगार, निर्भरता अनुपातों, प्रजनन, आधारभूत मानव विकास, जीवन-स्तर, आर्थिक विकास तथा अनुपाती न्याय पर बहुत अनिवार्य प्रभाव पड़ता है।

हमारी जनसंख्या (1981-91) की वार्षिक वृद्धि दर 2.14 प्रतिशत है। वर्ष 2001 (अगला दशकीय जनगणना वर्ष) के लिए जनसंख्या का अनुमान लगभग एक अरब है।

नीति तथा उपलब्धियां

इसमें कोई सन्देह नहीं कि हम अपनी जनसंख्या समस्या के समाधान के लिए निरन्तर प्रयास करते आ रहे हैं। विगत वर्षों में इस कार्य हेतु नीतिगत वक्तव्य दिये गये हैं, समय-समय पर अध्ययन किए गए हैं तथा कार्यक्रम बनाकर उन्हें कार्यान्वित किया गया है। परिणामस्वरूप हमें कुछ सफलता मिली है। जनन-आयु समूह के दम्पत्तियों को गर्भ-निरोध के आधुनिक तरीकों द्वारा तथा शिक्षा एवम् जागरूकता पैदा करके सार्थक रूप से गर्भ-धारण को रोकने के लिए सुरक्षा प्रदान की गई है। गत पचास वर्षों के दौरान इस प्रकार की सुरक्षा में लगभग पांच गुणा वृद्धि हुई है। शिशु मृत्यु दर आधी रह गई है। जन्म दर में एक-तिहाई कमी हुई है। जीवन आयु सम्भावना में 20 वर्ष की वृद्धि हुई है।

बाक्स 5.1 : जनसंख्या नीति की गतिविधियों का कलेंडर

1951	परिवार-नियोजन कार्यक्रम का आरम्भ
1976	राष्ट्रीय जनसंख्या नीति संबंधी नीति वक्तव्य
1977	परिवार कल्याण कार्यक्रम संबंधी नीति वक्तव्य
1983	राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति
1993	राष्ट्रीय विकास परिषद (एन. डी. सी.) समिति की जनसंख्या संबंधी रिपोर्ट
1994	(जनसंख्या नीति पर डा. स्वामीनाथन की अध्यक्षता में) विशेषज्ञ दल की रिपोर्ट

तालिका 5.1

जनसंख्या के मोर्चे पर उपलब्धियाँ

प्राचल	1951-61	अधुनातन (आंकड़ों का स्रोत एवं वर्ष)
जन्म-दर प्रति हजार	41.7	**28.3 एस आर एस 1995**
मृत्यु-दर प्रति हजार	22.8	**9.0 एस आर एस 1995**
जीवन आयु सम्भावना	41 साल	**61 वर्ष**
शिशु मृत्यु दर (प्रति 1000 जीवित जन्म)	146	**74**
दम्पति सुरक्षा दर (प्रतिशतता)		**46.5 पी डी 1996**
कुल जनन-क्षमता दर (जनन आयु के दौरान जन्मों की संख्या)	5.9%	**3.5 एस आर एस 1993**
रोके गए जन्मों की संचयी संख्या (10 लाख में)	0.04	**197.39 पी डी 1996**

एस.आर.एस. : सेम्पल रजिस्ट्रेशन सिस्टम (प्रति दर्ज रजिस्ट्रीकरण प्रणाली) पी.डी. : प्रोग्राम डाटा (कार्यक्रम के आंकड़े)
स्रोत : वार्षिक रिपोर्ट (1996-97) स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार।

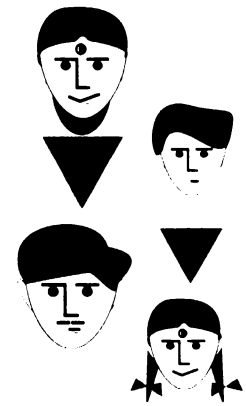

लिंग अनुपात तथा निहितार्थ

लेकिन हमारे कार्य-निष्पादन के तुलन पत्र का एक दूसरा पहलू भी है। हमारी जनसंख्या में लिंग अनुपात प्रति 1000 पुरुषों की तुलना में 927 महिलाएं हैं। वर्ष 1981 में यह आंकड़ा 1000 की तुलना में 934 था। घटता हुआ लिंग अनुपात वास्तव में खतरे का सूचक है और इन आंकड़ों के पीछे एक घृणित सामाजिक तस्वीर छिपी है।

उच्च मातृक मृत्यु दर

यहां पर मातृक मृत्यु दर एक अविश्वसनीय स्तर पर है—उन्नत देशों में यह दर 7 से 9 प्रति 1,00,000 कुशल जन्म है जिसके मुकाबले यहां पर दर 400 प्रति 1,00,000 कुशल जन्म है। यह स्थिति, अस्वास्थ्यकर घरेलू परिस्थितियों में अप्रशिक्षित नर्सों द्वारा प्रसूति करवाने के अतिरिक्त प्रजनन आयु वर्ग की महिलाओं में अपर्याप्त पोषण, कुपोषण और रक्त की कमी के कारण पैदा हुई है। प्रसव पूर्व बच्चों के लिंग का पता लगाने (एमिनियोसेंटसिस) जैसी अनैतिक प्रथा के कारण भी बालिका-भ्रूण हत्या और शिशु हत्या होती है। इसमें कोई संदेह नहीं कि हमने प्रसव पूर्व निदान तकनीक (दुरुपयोग का विनियमन और निवारण) अधिनियम, 1994 पारित किया है परन्तु समस्या कानून को प्रभावी ढंग से लागू करने की है।

उच्च गर्भधारण दर

करीब 60 प्रतिशत शिशुओं की मौत समय से पूर्व बच्चों के जन्म लेने के कारण होती है, ऐसा गंदे पानी के पीने से होने वाले अतिसार रोग के अतिरिक्त माताओं के स्वास्थ्य में कमजोरी के कारण होता है जिसके कारण शिशुओं की मृत्यु दर बढ़ जाती है। यह स्थिति वास्तव में मुख्य कारण है जो गर्भधारण और जन्म दर को कम करने के सभी प्रयासों में रुकावट पैदा करता है। माता-पिता उच्च शिशु और बाल मृत्यु दर होने के कारण बच्चों के मर जाने के भय से और अधिक बच्चे पैदा करते हैं।

माताओं का स्वास्थ्य, शिशुओं को बचाना और पति-पत्नी की सुरक्षा—ये ऐसे कारण हैं जो गर्भधारण और जन्म दरों को प्रत्यक्ष तौर पर प्रभावित करते हैं। इन सभी कारणों पर एक साथ ध्यान देना ही हमारी जनसंख्या की समस्या को सुलझाने का एक मात्र उपाय है। क्या यह हमारी रणनीति रही है? यदि हां, तो उस दिशा में हम क्या प्रगति कर पाए हैं?

अंतर्राष्ट्रीय तुलना

आगे दी गई तालिका में संसार के उन्नत देशों तथा एक दर्जन चुने हुए देशों की तुलना में भारत की स्थिति दर्शायी गई है। यह तालिका संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या कोष (यू.एम.एफ.पी.ए.) द्वारा जनसंख्या और विकास पर अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन (आई.सी.पी.डी.) 1994 के लक्ष्यों की निगरानी के लिए उपयोग किये गये चुने हुए निर्देशकों पर आधारित है। ये देश जो चुने गए हैं इनमें अधिक जनसंख्या वाले तथा दक्षिण और दक्षिण पूर्व एशिया के देश शामिल किये गये हैं।

तालिका 5.2

संसार के उन्नत क्षेत्रों और 12 अन्य अधिक जनसंख्या वाले देशों की तुलना में भारत की स्थिति

(आई.सी.पी.डी. 1994 के लक्ष्यों की निगरानी के लिए यू.एन.एफ.पी.ए. के निर्देशकों के अनुसार)

क्षेत्र/देश	जनसंख्या (मिलियन)	कुल गर्भाधान दर	मूल चिकित्सा सुविधाओं तक पहुँच का प्रतिशत	प्रशिक्षित सहायकों की सहायता से जन्म का प्रतिशत	सुरक्षित पेयजल की पहुँच	शिशु मृत्यु दर	मातृक मृत्यु दर
विश्व	5848.7	2.79	NA	57	---	57	
उन्नत क्षेत्र	1178.4	1.59	--	99	---	9	---
भारत	960.2	3.07	85	35	81	72	570
पाकिस्तान	143.8	5.02	55	18	60	74	340
बंगलादेश	122.0	3.14	45	14	97	78	850
श्रीलंका	18.3	2.10	93	94	46	15	140
चीन	1243.7	1.80	92	85	--	38	95
फिलीपींस	70.7	3.62	85	53	85	35	580
इंडोनेशिया	203.5	2.63	80	36	62	48	650
मलेशिया	21.0	3.24	NA	98	NA	11	80
थाईलैंड	59.2	1.74	90	71	NA	30	200
मिस्र	64.5	3.40	99	46	64	54	170
नाईजीरिया	118.4	5.97	66	31	39	77	1000
ब्राजील	163.1	2.17	NA	73	72	42	220

	गर्भ निरोधक उपायों का प्रचलन					अनपढ़ता		औसत आयु	
क्षेत्र/देश	ऐसे उपाय जानने वालों का प्रतिशत	जानने के स्रोतों का प्रतिशत	जो कोई उपाय अपना रहे हैं	जो आधुनिक उपाय अपना रहे हैं	15-19 वर्ष की आयु वर्ग की महिलाएं प्रति 1000 जन्म	कुल	महिला	कुल	महिला
विश्व	NA	NA	57	49	66	16	29	63.4	67.7
उन्नत क्षेत्र	--	--	70	51	33	1	2	70.6	78.4
भारत	95	NA	41	37	116	35	62	62.1	62.7
पाकिस्तान	78	46	12	9	93	50	76	62.9	65.1
बंगलादेश	100	98	47	39	138	51	74	58.1	58.2
श्रीलंका	99	98	66	44	34	7	13	70.9	75.4
चीन	NA	NA	83	80	5	10	27	68.2	71.7
फिलीपींस	97	93	40	25	48	5	6	69.9	74.3
इंडोनेशिया	95	93	55	52	62	10	22	63.3	67.0
मेलेशिया	99	94	48	31	29	11	22	69.9	74.3
थाईलैंड	100	99	74	72	51	4	8	66.3	72.3
मिस्र	100	93	47	46	62	36	61	64.3	67.3
नाईजीरिया	46	34	6	4	150	33	53	50.8	54.0
ब्राजील	100	95	66	57	73	17	17	63.2	71.2

स्रोत : विश्व जनसंख्या की स्थिति, 1997 : संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या कोष (यू.एन.एफ.पी.ए.)

उपरोक्त आंकड़े बताते हैं कुछ प्रमाणिक मापदंडों के आधार पर शिशु मृत्यु दर, मातृक मृत्यु दर (मलेशिया और थाइलैंड की तुलना में), 15-19 वर्ष की आयु वर्ग में जन्म देने का प्रतिशत, औसत आयु और अनपढ़ता की स्थिति कि दक्षिण पूर्व एशिया देशों की तुलना में भारत की स्थिति बहुत खराब है।

देश के अन्दर असमानताएं

यदि हम अपने कुछ मुख्य राज्यों की स्थिति का अलग-अलग मूल्यांकन करें तो भारत की स्थिति जो उभरेगी वह और अधिक निराशाजनक होगी जैसे कि आगे दी गई तालिका से स्पष्ट जाहिर है।

तालिका 5.3

जनसंख्या मापदंड : कुछ राज्यों की उपलब्धि के आंकड़े जो राष्ट्रीय औसत से काफी कम हैं

राज्य	कुल गर्भधारण दर 1991	अप्रशिक्षित सहायकों द्वारा जन्म का प्रतिशत	शिशु मृत्यु दर 1993		जन्म दर 1995	मृत्यु दर	औसत आयु 1989-93	साक्षरता दर 1991	
			बालक	बालिका				पुरुष	महिला
भारत	3.64	52.7	73	75	28.3	9.0	59.4	52.19	39.19
केरल	1.80	2.2	16	10	17.7	6.0	72.0	89.81	86.17
असम	3.50	68.6	81	81	29.3	9.6	54.9	—	
बिहार	4.40	72.1	68	72	32.1	10.5	58.5	38.48	22.89
उड़ीसा	3.30	68.6	118	101	28.0	10.8	55.5	49.09	34.68
उत्तर प्रदेश	5.10	65.3	87	100	35.4	10.4	55.9	41.60	25.31
मध्य प्रदेश	4.60	71.9	106	106	33.0	11.1	54.0	44.20	28.85
राजस्थान	4.60	75.4	82	81	33.7	9.1	58.0	38.55	20.44

स्रोत : विवैन इन इंडिया, ए स्टेटिस्टिकल प्रोफाइल (मानव संसाधन विकास मंत्रालय, महिलाएं और बाल विकास विभाग)

केरल के आंकड़े भी दिए गए हैं जो राष्ट्रीय औसत से बहुत अधिक हैं ताकि यह दिखाया जा सके कि इसके आंकड़ों और अन्य राज्यों के आंकड़ों में कितना अधिक अन्तर है।

जनसंख्या संबंधी डा. स्वामीनाथन ग्रुप ने इस बात का विशेष रूप से उल्लेख किया कि 1981 और 1991 के बीच चार राज्य (बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान और उत्तर प्रदेश) देश की जनसंख्या में 42% निवल वृद्धि के लिए जिम्मेदार हैं।

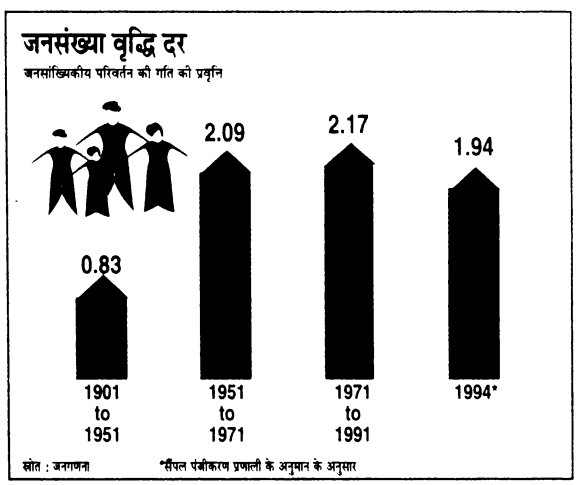

जनांकिकीय परिवर्तन : एक स्थिति

मृत्यु दर में गिरावट की गति जो साठवें दशक के आरम्भ में शुरू हुई थी, धीमी पड़ रही है और प्रजनन दर में गिरावट की गति नौवें दशक के आरम्भ से तेज हो रही है। इन कारणों से जनसंख्या की वृद्धि की दर में कमी आयी है। यह प्रवृत्ति इस प्रकार है:

तालिका 5.4

जनांकिकीय परिवर्तन की गति दर्शाने वाली जनसंख्या वृद्धि दर की प्रवृत्ति

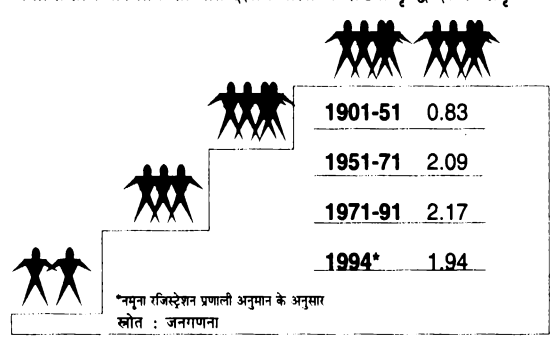

वर्ष 1951 से पूर्व की निम्न वृद्धि दर का कारण जन्म और मृत्यु दर के बीच अन्तर था। 1951 से सरकार द्वारा आरम्भ किये गये जन स्वास्थ्य कार्यक्रमों के कारण मृत्यु दर में कमी आयी है। किन्तु प्रथम पंचवर्षीय योजना से ही जागरूकता पैदा करने और गर्भधारण रोकने संबंधी नीतियों पर योजनाबद्ध सरकारी निवेश के बावजूद प्रजनन दर में कमी में गति नहीं आयी है। इसलिए, 1991 तक चार दशकों के दौरान जन्म दर में वृद्धि हुई है। दूसरे शब्दों में उच्च जन्म और मृत्यु दर की स्थिति से निम्न जन्म और मृत्यु, दर में जनांकिकीय परिवर्तन की गति पर्याप्त नहीं रही है। इस स्थिति से निर्भरता अनुपात आर्थिक वृद्धि में अड़चनें उत्पन्न हुई हैं।

निर्भरता अनुपात

तालिका 5.5

निर्भरता अनुपात 1951–91

वर्ष	कुल जनसंख्या (दस लाख)	जनसंख्या का आयु वर्गीकरण (प्रतिशत)			निर्भरता अनुपात		
		0—14	15—59	60	युवा	वृद्ध	योग
1951	361.1	38.42	56.09	5.49	68.49	9.80	78.29
1961	439.2	41.03	53.30	5.67	76.96	10.64	87.60
1971	548.2	42.02	51.99	5.99	80.82	11.51	92.33
1981	683.3	39.55	53.96	6.49	73.29	12.02	85.31
1991	846.3	36.18	57.25	6.57	63.20	11.49	74.69

(1) युवकों का निर्भरता अनुपात = 0-14 आयु वर्ग में जनसंख्या को 15-59 आयु वर्ग के साथ विभक्त करना
(2) वृद्ध आयु निर्भरता अनुपात = 60+आयु वर्ग में जनसंख्या को 15-59 आयु वर्ग से विभक्त करना।
(3) कुल निर्भरता अनुपात = 0-14 आयु वर्ग और 60+ आयु वर्ग में जनसंख्या को 15-59 आयु वर्ग में जनसंख्या से विभक्त करना।
स्रोत : के. श्रीनिवासन, एक्जक्यूटिव डाइरेक्टर, पापुलेशन फाउंडेशन इन इंडिया द्वारा एन ओवरव्यू आफ डेमोग्राफिक ट्रांजिशन इन इंडिया। (लेखक ने सरकारी आंकड़ों पर निर्भर किया है।)

इस तालिका से यह निष्कर्ष निकलता है कि हमारी जनसंख्या युवा है और कुल जनसंख्या का लगभग 36 प्रतिशत 15 वर्ष से कम आयु का है। साठ वर्ष से अधिक आयु वर्ग वालों को मिलाकर हमारी जनसंख्या का 42.75% है। कुल निर्भरता अनुपात 1951 से काफी बढ़कर 1981 से गिरना आरम्भ हुआ है। फिर भी 74.69 का अनुपात अभी भी अधिक है। अर्थात आर्थिक रूप से प्रत्येक सक्रिय व्यक्ति को अपने तथा तीन चौथाई अन्य व्यक्ति के लिए कमाना होगा। जिसके परिणामस्वरूप दोनों का ही आर्थिक स्तर अपेक्षाकृत रूप से नीचा रहेगा। उच्च निर्भरता अनुपात, आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों, विशेष रूप से गरीबी की रेखा से नीचे जीवन यापन करने वालों के लिए और भी विषम है जिससे 14 वर्ष और कम आयु वर्ग में जनसंख्या पर विपरीत निर्भरता में वृद्धि हुई है जिसके परिणामस्वरूप बालश्रम जैसी अवांछनीय सामाजिक प्रथा उत्पन्न हुई है। हमारे देश के वर्तमान संदर्भ में 15 से 59 आयु वर्ग के लोगों में व्याप्त बेरोजगारी और अल्प रोजगार के उच्च स्तर के कारण यह निर्भरता और भी अनिश्चित है।

शहरी जमघट

शहरीकरण में लगातार वृद्धि हो रही है। कुल जनसंख्या के अनुपात के रूप में शहरी जनसंख्या 1951 में 17.29% से बढ़कर 1991 में 25.72% हो गई है। अब 22 ऐसे शहर हैं जिनकी जनसंख्या 10 लाख और अधिक है। जैसा कि तालिका 5.6 से पता चलता है इन शहरों का जनसंख्या वृद्धि अनुपात भी स्थिर नहीं है।

तालिका 5.6

दस लाख से अधिक जनसंख्या वाले शहरों की जनसंख्या

शहर	जनसंख्या 10 लाख में		वृद्धि दर 1991/1951
	1991	1951	
वृहत मुम्बई	12.60	2.97	4.24
कलकत्ता	11.02	4.70	2.34
दिल्ली	8.42	1.44	5.85
चेन्नई	5.42	1.54	3.52
हैदराबाद	4.34	1.13	3.84
बंगलौर	4.13	0.79	5.22
अहमदाबाद	3.31	0.88	3.76
पुणे	2.49	0.61	4.08
कानपुर	2.63	0.71	2.86
लखनऊ	1.67	0.50	3.34
नागपुर	1.66	0.49	3.39
सूरत	1.52	0.24	6.90
जयपुर	1.52	0.30	5.07
कोचीन	1.14	0.21	5.42
वडोदरा	1.23	0.21	5.86
इन्दौर	1.11	0.31	3.58
कोयम्बतूर	1.10	0.29	3.79
पटना	1.10	0.33	3.33
मदुरै	1.09	0.37	2.95
भोपाल	1.06	0.10	10.00
विशाखापत्तनम	1.06	0.11	9.64
लुधियाना नगर निगम	1.04	0.15	6.93
वाराणसी	1.03	0.37	2.78

स्रोत : जनगणना

शहरीकरण के परिणामस्वरूप अन्य बातों के अलावा गांवों से शहरों की ओर पलायन, शहरों और महानगरों में भूमि और जल की धारण क्षमता के बाहर जनसंख्या की उच्च सघनता, अस्वास्थ्यकर वातावरण, आधारभूत चिकित्सा का अभाव और जनसंख्या में वृद्धि करने वाली समस्त प्रतिकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न हुई हैं।

आर्थिक परिणाम

निराशाजनक शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद

जनसंख्या में वृद्धि के कारण काफी हद तक हमारा आर्थिक विकास रुक गया है। जैसा कि निम्नलिखित सारणी में वर्ष 1951 से 1994 के आंकड़े दर्शाये गये हैं, जहां हमारे शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद में स्थिर मूल्यों पर पांच गुना वृद्धि हुई है, वहां प्रतिव्यक्ति शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद केवल दुगना हो पाया है।

निवल राष्ट्रीय उत्पाद और प्रति व्यक्ति निवल राष्ट्रीय उत्पाद

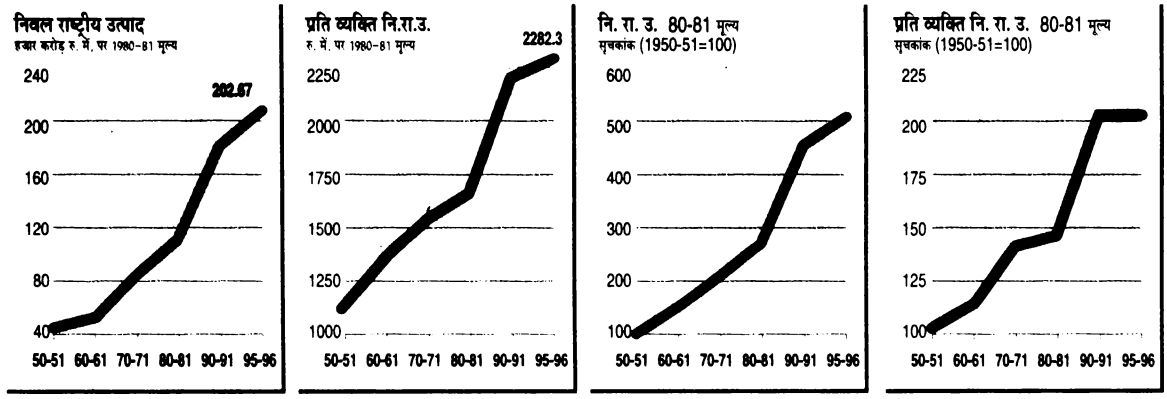

स्रोत : भारत सरकार, आर्थिक सर्वेक्षण, 1994-95

तालिका 5.7

भारत का शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद और प्रति व्यक्ति शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (1951–1994)

वर्ष	वर्ष 1980-81 के मूल्यों पर (करोड़ रुपयों कारक लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद)	वर्ष 1980-81 के मूल्यों पर (रुपये में) प्रति व्यक्ति शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद	सूचकांक (1950-51 100) वर्ष 1980-81 के मूल्यों पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद	सूचकांक (1950-51 100) वर्ष 1980-81 के मूल्यों पर प्रति व्यक्ति शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद
1950-51	40454	1126.9	100.0	100.0
1960-61	58602	1350.3	144.9	119.8
1970-71	82211	1519.3	203.2	134.8
1980-81	110685	1630.1	273.6	144.7
1990-91	186469	2222.5	460.9	202.5
1993-94	202670	2282.3	501.0	202.5

स्रोत : भारत सरकार, आर्थिक सर्वेक्षण, 1994 95

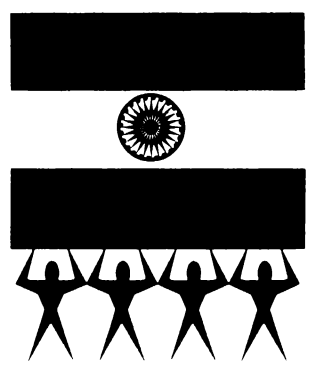

जोतों का विखंडन

राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन के वर्ष 1988 के निष्कर्ष के अनुसार वर्ष 1953-54 और 1981-82 के बीच जनसंख्या में वृद्धि के कारण जोतों के विखंडन के परिणामस्वरूप हल चलाने वाली भूमि की जोतों की संख्या 4.4 करोड़ से बढ़कर 7.1 करोड़ हो गई। हल चलाने वाली भूमि की जोतों का औसत आकार 3.05 हैक्टर से घटकर 1.67 हैक्टर हो गया। उप लघु जोतों में आधुनिक कृषि प्रौद्योगिकी का प्रयोग करना कठिन होगा। इससे कृषि उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है।

खाद्य सुरक्षा : प्रति व्यक्ति कम खाद्यान्न

वर्ष 1951 से 1996 तक खाद्यान्नों के उत्पादन में लगभग 4 गुना वृद्धि हुई—5 करोड़ टन से 19.8 करोड़ टन। परन्तु खाद्यान्नों की प्रति व्यक्ति उपलब्धता में मात्र 25 प्रतिशत (1951-85) की ही वृद्धि हुई ।

अन्य परिणाम—भविष्य का दृश्य

जहां जनसंख्या वृद्धि की वार्षिक दर 2.1 प्रतिशत है, वहां श्रमिक बल में 2.5 प्रतिशत (1981-91) की वृद्धि होती है। जनसंख्या संबंधी विशेषज्ञों की स्थायी समिति की रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2011 के अन्त तक हमारी जनसंख्या 116.4 करोड़

तक पहुंच जायेगी और हम 21वीं सदी के अन्त तक ही शून्य जनसंख्या वृद्धि प्राप्त कर सकते हैं।

जनसंख्या के वर्तमान ढांचे और रुझान की पृष्ठभूमि में भावी प्राक्कलन इस प्रकार हैं:

• खाद्य एवं कृषि संगठन द्वारा निर्धारित 2250 कैलोरी प्रति व्यक्ति प्रतिदिन के मानदंड पर खरा उतरने के लिए वर्ष 2021 तक अतिरिक्त खाद्यान्नों की आवश्यकता	43 मिलियन टन
• वर्ष 2021 तक मिडिल स्कूल स्तर तक शिक्षा हेतु अतिरिक्त मांग	78 मिलियन बालकों के लिए
• उपलब्ध किये जाने वाले अतिरिक्त आवास (वर्ष 2002 तक बैकलाग सहित)	70 मिलियन
• अतिरिक्त रोजगार (वर्ष 2002 तक बैकलाग सहित)	94 मिलियन

धनी और निर्धन : अन्तर

हमारे यहां जनसंख्या में हुई वृद्धि के सन्दर्भ में, यह सोचा जा सकता था कि बचत तथा निवेश की दरें कम हो जायेंगी। परन्तु हमारे देश में ऐसा नहीं हुआ है। वास्तव में, विभिन्न पंचवर्षीय योजनावधियों के दौरान ये दरें क्रमश: 10.28 प्रतिशत तथा 10.66 प्रतिशत थीं। ये आंकड़े बढ़कर 24 प्रतिशत तथा 25 प्रतिशत हो गये हैं तथा बचतों और निवेश के मामले में भारत विकासशील देशों के प्रमुखतम एक-चौथाई देशों में एक है। इस स्थिति का कारण यह है कि हमारे यहां जनसंख्या के उस हिस्से में काफी वृद्धि होती जा रही है जिसकी बचत और निवेश करने की क्षमता संयुक्त राज्य अमरीका के बराबर है। तथापि इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता है कि हमारी जनसंख्या का 38 प्रतिशत भाग अभी तक गरीबी की रेखा से नीचे जीवन यापन कर रहा है और उनकी स्थिति तभी बेहतर बनाई जा सकती है जब इसे सर्वोच्च राष्ट्रीय प्राथमिकता मानकर इस ओर निरंतर और विशेष ध्यान दिया जाए।

डा. स्वामीनाथन दल (ग्रुप) की रिपोर्ट

डा. स्वामीनाथन दल (ग्रुप) द्वारा प्रस्तुत किये गये प्रारूप नीतिगत वक्तव्य तथा उसकी रिपोर्ट जो जनसंख्या संबंधी नीति पर अब तक प्रस्तुत की गई रिपोर्टों में नवीनतम हैं, में प्रकृति, गरीबों तथा महिलाओं के अनुकूल नीति अपनाने की आवश्यकता बताई गई है।

बाक्स 5.2 : डा. स्वामीनाथन ग्रुप की सिफारिशें

- राष्ट्रीय जनसंख्या संबंधी लक्ष्य की एकता परन्तु क्रियान्वयन संबंधी नीतियों में विविधता।
- स्थानीय स्तर पर विचारण, योजना बनाना तथा इसे कार्यरूप देना तथा राष्ट्रीय स्तर पर समर्थन देना।
- न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम का त्वरित तथा प्रभावी क्रियान्वयन।
- समर्थनकार पारिस्थितिकी की मानव वाहक क्षमता की सीमाओं की पहचान।
- स्वास्थ्य और परिवार कल्याण के लिये योजनाओं में लैंगिक-समता का समाकलन तथा गिरते हुए स्त्री-पुरुष अनुपात को रोकना और इस प्रक्रिया को उलटना।
- जनसंख्या को स्थिर करने हेतु वर्ष 2010 तक कुल 2.1 जनक्षमता दर (टी.एफ.आर.) को प्राप्त कर सामर्थ्यकारी पर्यावरण तथा शक्ति-सम्पन्न करने के साधनों का सृजन।
- परिवार को सीमित करना पति-पत्नी का संयुक्त दायित्व हो।
- पंचायती राज संस्थाओं द्वारा सामाजिक-जनसांख्यिकीय चार्टर तैयार किया जाना; विभागीय, निर्वाचित निकायों, गैर-सरकारी संगठनों तथा सामाजिक कार्यकर्ताओं का नेटवर्क बना कर जिला-स्तर पर व्यापक आधार वाले प्रशासनिक तंत्रों का निर्माण; राज्य स्तर पर जीवन स्तर में सुधार संबंधी उपायों की समेकित गुणवत्ता का संवर्द्धन; राष्ट्रीय जनसंख्या नीति के क्रियान्वयन पर निगरानी रखने हेतु जनसंख्या तथा विकास संबंधी केबिनेट समिति का गठन जो राजनैतिक समर्थन तथा नीतिगत मार्गनिर्देशन प्रदान कर सके।
- वर्ष 2011 तक के लिए संसद में सीटों की संख्या के परिवर्तन पर रोक लगाना (फ्रीजिंग) तथा छोटा परिवार संबंधी मानदंड का पालन न करने वाले व्यक्तियों को भविष्य प्रभावी तिथि से निर्वाचित पदों से वंचित करना।
- तेजी से हो रहे शहरीकरण के कारण नागर (सिविक) सुख-सुविधाओं तथा पर्यावरण पर पड़े दबावों से निपटने के लिए जनसंख्या का संतुलित एवं स्थानिक वितरण।
- (आई.सी.पी.डी.) 1994 द्वारा निर्धारित लक्ष्यों में परिकल्पित सामाजिक-जनसांख्यिकीय तथा प्रजनन स्वास्थ्य संबंधी संकेतकों को उपलब्ध करना।

स्वामीनाथन ग्रुप ने प्राथमिक स्वास्थ्य रक्षा; प्रजनन संबंधी स्वास्थ्य रक्षा; सेवा प्रदान करने वालों का प्रशिक्षण; गर्भ-निरोधक उपाय; प्रोत्साहन; संगठित क्षेत्र की भूमिका; स्वास्थ्य संबंधी बीमा; लैंगिक मुद्दे; जनता की भागीदारी; सूचना, शिक्षा और संचार; राजनैतिक समर्थन; पंचायती राज संस्थाओं को प्रक्रिया में सम्मिलित करना; युवजन तथा गैर-सरकारी संगठन; और संसाधन के संबंध में एक क्रियान्वयन योजना की सिफारिश भी की है।

यद्यपि स्वामीनाथन समिति का प्रत्यावेदन मई, 1994 में प्राप्त हुआ था, वह अभी तक विचाराधीन अवस्था में ही है। इस प्रत्यावेदन पर सर्वोच्च प्राथमिकता के आधार पर ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है।

6

खाद्य सुरक्षा और पोषण

भारत को अपनी खाद्य सुरक्षा पर गर्व है। खाद्य पदार्थों का उत्पादन वर्ष 1951 में 5 करोड़ टन की न्यून मात्रा से बढ़ कर 19.5 करोड़ टन तक पहुंच गया है। कुपोषण के विरुद्ध लम्बे अभियान के बावजूद यह देश अधिकांशत: कुपोषण के कारण होने वाले रोगों के कारण 11% पांच वर्ष से कम आयु के बच्चों को और 3 से 4% प्रजनन आयु वर्ग की महिलाओं को खो देता है। यह सच है कि देश के अधिकांश भागों से भीषण कुपोषण को प्राय: समाप्त कर दिया गया है परन्तु फिर भी बिहार में 25% से अधिक बच्चे भारी कुपोषण के शिकार हैं, जबकि समूचे देश में पांच वर्ष से कम आयु के सामान्य और भीषण रूप से कुपोषित बच्चों की संख्या 52.5% है। भारत में अभी भी 28.2% नवजात शिशु कम वजन के होते हैं, 50% जनसंख्या में लौह की कमी है, 20% महिलाओं की खून की कमी के कारण प्रसूति के दौरान मृत्यु हो जाती है। नमक को व्यापक रूप से आयोडीनयुक्त बनाया जा रहा है तथा विटामिन ए और लौह की कमी को दूर करने के लिए आई. सी. डी. एस. और चाइल्ड सर्वाइवल तथा सुरक्षित मातृत्व कार्यक्रमों के माध्यम से विशेष कार्यक्रम चलाये गये हैं। जनसंख्या में सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी अभी भी लोगों की रुग्णता का कारण बनती है जोकि अर्थव्यवस्था में कम उत्पादकता के लिए उत्तरदायी होती है।

अतीत

खाद्य की कमी दूर करना

स्वतंत्रता-प्राप्ति से पूर्व भारत में अकाल पड़ते रहते थे और खाद्यान्नों की भारी कमी रहती थी। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से खाद्य सुरक्षा देश की कार्य सूची में शीर्ष पर है। देश द्वारा अर्जित विदेशी मुद्रा का काफी बड़ा हिस्सा खाद्य पदार्थों के आयात पर व्यय करना पड़ता था। विदेशी सहायता के एक भाग के रूप में खाद्यान्न भी प्राप्त किये जाते थे। पहली तीन पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान कृषि और इसके आदानों, तथा खाद्य उत्पादन को प्राथमिकता दी गई थी। साठ और सत्तर के दशकों में सिंचाई के अतिरिक्त गेहूं और चावल की अतिरिक्त पैदावार वाली किस्मों और उर्वरकों का उपयोग शुरू करने से हरित क्रान्ति आई जिसके परिणामस्वरूप उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि हुई।

1980 के दशक में कई बार सूखा पड़ने के बावजूद खाद्यान्न उत्पादन स्थिर रहा। तिलहनों के उत्पादन पर ध्यान दिया गया क्योंकि देश में उनकी कमी को पूरा करने हेतु प्रौद्योगिकी मिशन के माध्यम से उनका आयात किया जा रहा था। आधे दशक में आत्म निर्भरता प्राप्त कर ली गई। चालू दशक में दलहन के उत्पादन पर ध्यान केन्द्रित किया जा रहा है ताकि प्रोटीन पोषण की मांग पूरी की जा सके। आशा है कि इस शताब्दी के अन्त तक हम इन लक्ष्यों को प्राप्त कर लेंगे।

निरन्तर कुपोषण और रुग्णता के अतिरिक्त खाद्यान्न की कमी और महामारी के कारण अनेक जानें चली जाती थीं। सम्भावित औसत आयु कम थी, बीमारियां फैलती रहती थी और चारों तरफ मृत्यु का साम्राज्य था। प्रथम पंचवर्षीय योजना के शुरू में व्यक्ति की औसत आयु 41 वर्ष से अधिक नहीं थी तथा मृत्यु दर 27.4 और शिशु मृत्यु दर 146 थी।

भारत को अब अपनी खाद्य सुरक्षा पर गर्व है लगभग 50 वर्षों में इसने अपना खाद्यान्न उत्पादन लगभग 50 मिलियन टन (1951) से 195 मिलियन टन (1996) तक बढ़ा कर लगभग चार गुणा कर लिया है। फिर भी देश में कुपोषण की स्थिति ने विभिन्न क्षेत्रों में किये गये विकास के प्रयासों को निष्प्रभावी बना दिया है। उच्च जन्म दर राष्ट्रीय चिन्ता का विषय है जबकि उच्च मृत्यु दर के साथ-साथ मानव संसाधन का अविवेकपूर्ण ढंग से नष्ट किया जाना हमारे समाज पर एक कलंक है। एक तरफ जहां हमारी जनसंख्या में प्रतिवर्ष 18 मिलियन से भी अधिक की वृद्धि हो जाती है वहीं पांच वर्ष से कम आयु के 11 प्रतिशत बच्चे और सन्तानोत्पत्ति आयु वर्ग की 4 प्रतिशत महिलाएं मृत्यु का शिकार हो जाती हैं तथा पांच वर्ष से कम आयु के 50 प्रतिशत से अधिक बच्चे कुपोषण के कारण रुग्णता का शिकार हो जाते हैं।

पोषण में प्रगति

1930 के दशक में पोषण संबंधी कार्य मुख्यत: प्रयोगशालाओं पर आधारित था। देश के जन स्वास्थ्य संस्थानों में बेरी-बेरी, पेलेग्रा, स्कर्वी आदि जैसे अत्यधिक कुपोषण के कारण होने वाले

रोगों के निदान, कोर्स और इलाज के बारे में चिकित्सीय अध्ययन किये गये। इन वर्षों में देश में कुपोषण के विभिन्न प्रभावों को प्रत्यक्ष रूप से देखा गया। प्रथम दो पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान खाद्य कमी को दूर करने तथा खाद्यान्न उत्पादन बढ़ाने पर दिये गये ध्यान का तथ्यत: यह अर्थ नहीं है कि कुपोषण समाप्त हो गया है। पचास के दशक में "आसन्न प्रोटीन संकट" देश में छाया रहा। इस दौरान गेहूं के अपक्षय दूर करने, दूध छुड़ाने वाला प्रोटीनयुक्त भोजन, पत्तों, शैवाल आदि से प्रोटीन की प्राप्ति जैसे उपायों को प्रमुखता मिली। बढ़े हुए खाद्यान्न उत्पादन एवं तकनीकी प्रगति के बावजूद कुपोषण की स्थिति में कोई अंतर न आने के कारण आर्थिक रूप से गरीब वर्गों को पोषक आहार उपलब्ध कराने पर अत्यधिक जोर दिया गया।

सन् 1951 में शुरू किए गए सामुदायिक विकास कार्यक्रम (सी. डी.) में कृषि, उद्योगों आदि के अलावा, सामाजिक विकास हेतु एक समग्र एवं बहुमुखी नीति के हिस्से के रूप में पोषक आहारों के विस्तार पर ध्यान केन्द्रित किया गया। 1960 के दशक में एक बहुक्षेत्रीय समन्वित कार्यक्रम—व्यावहारिक पोषक आहार कार्यक्रम के अंतर्गत स्कूल गार्डन, किचन गार्डन और बैकयार्ड पोल्ट्री आदि के द्वारा पोषक आहार के आदानों के उत्पादन को प्रोत्साहन दिया गया। इस चरण के दौरान किये गये प्रयासों का एक सकारात्मक परिणाम यह रहा है लोगों में इस तथ्य के प्रति जागरूकता बढ़ी कि कुपोषण की समस्या से निपटने के लिए, एक समन्वित प्रयास हेतु समाज की भागीदारी के साथ-साथ सरकार का सहयोग भी आवश्यक है। कृषि मंत्रालय के अंतर्गत सन् 1964 में इसकी भोजन एवं पोषक आहार विस्तार सचल सेवा के साथ भोजन और पोषक आहार बोर्ड की स्थापना की गई ताकि लोगों को विविध आहारों के बारे में जानकारी दी जा सके। बच्चों को बड़ी संख्या में स्कूल आने के लिए प्रेरित करने तथा वे स्कूल से न भागें इसलिए और ऊर्जा-प्रोटीन में अंतर को दूर करने हेतु कुछ राज्यों में मध्याह्न भोजन कार्यक्रम शुरू किये गये। देश के उप-हिमालय क्षेत्र में फैले घेघा रोग से लड़ने के लिए नमक को आयोडीनयुक्त करना एक और महत्वपूर्ण शुरूआत थी।

सत्तर के दशक में, स्कूल जाने की आयु से पूर्व के बच्चों के आहार में कैलोरी-प्रोटीन अंतर को समाप्त करने के लिए विशेष पोषक आहार कार्यक्रम, महिलाओं में पोषक आहारों की कमी से होने वाली रक्ताल्पता के लिए निरोधक कार्यक्रम तथा बच्चों में पोषक आहारों की कमी से होने वाली अंधता आदि कार्यक्रमों के अंतर्गत पोषक आहारों की विशिष्ट कमियों के बारे में विविध पोषक आहार कार्यक्रम शुरू किए गए। जल्दी ही यह बात स्पष्ट हो गई कि स्वास्थ्य संबंधी उपायों के अभाव में पोषाहार संबंधी प्रयास ठीक वैसे ही होंगे जैसे कि किसी छेद वाले बर्तन में पानी भरने का प्रयास। सन् 1975 में बहुक्षेत्रीय चरण की शुरूआत हुई, जिसके दौरान स्वास्थ्य, पोषाहार और शिक्षा के समन्वय हेतु समेकित बाल विकास सेवा परियोजना शुरू की गई। इसके साथ-साथ सब के लिए टीकाकरण कार्यक्रम, ओरल रीहाइड्रेशन थेरापी और गरीबी दूर करना, खाद्यान्नों का सार्वजनिक वितरण, स्वास्थ्य परिवार कल्याण और प्रौढ़ शिक्षा जैसे अप्रत्यक्ष पोषाहार सहायक कार्यक्रमों की एक शृंखला भी शुरू की गई।

योजना आयोग ने पोषाहार के महत्व को समझते हुए इस संबंध में छठी पंचवर्षीय योजना में एक विशिष्ट अध्याय इसके लिए रखा जिसे बहुक्षेत्रीय समन्वय पर जोर देते हुए बाद की योजनाओं में भी रखा जाना था। देश में स्थिति की समीक्षा के लिए योजना आयोग द्वारा सन् 1980 में एक कार्यदल की स्थापना की गई। इस कार्यदल ने पोषाहार की समस्या के समाधान के लिए एक राष्ट्रीय नीति बनाये जाने की सिफारिश की।

राष्ट्रीय पोषाहार नीति और पोषाहार के बारे में कार्य योजना क्रमश: 1993 और 1995 में स्वीकृत की गई थीं। इस कार्य योजना में 14 विभिन्न क्षेत्रों को शामिल किया गया था जो नीति के लक्ष्यों को प्राप्त करने में सहायक थे। अन्य बातों के साथ-साथ इस नीति के मुख्य लक्ष्य निम्नलिखित थे:-

- विटामिन ए की कमी के कारण होने वाले अंधेपन का वर्ष 2000 तक पूरी तरह निवारण;
- गर्भवती महिलाओं में रक्ताल्पता के स्तर में वर्ष 2000 तक 25 प्रतिशत की कमी लाना;
- आयोडीन संबंधी विकारों पर नियंत्रण;
- संबंधित क्षेत्रों से आवश्यक समन्वय और आदान उपलब्ध कराने के लिए ढांचागत वातावरण तैयार करना;
- विशिष्ट ग्रुपों की समस्याओं पर ध्यान देना।

बाक्स 6.1 : पोषाहार विकास तालिका

1951	: सामुदायिक विकास कार्यक्रम के अंग के रूप में पोषाहार विस्तार का आरम्भ
1960 दशक में	: के अनुप्रयुक्त पोषाहार कार्यक्रम की शुरूआत और उसका कार्यान्वयन
1964	: कृषि मंत्रालय के अधीन खाद्य और पोषाहार बोर्ड (इसकी सचल पोषाहार विस्तार सेवा सहित) की स्थापना
1970 दशक में	: के विशिष्ट पोषाहार संबंधी कमियों को लक्ष्य बनाकर विभिन्न पोषाहार कार्यक्रमों की शुरूआत और उनका कार्यान्वयन
1975	: समेकित बाल विकास सेवाएं शुरू करना
1993	: राष्ट्रीय पोषाहार नीति स्वीकृत करना
1995	: पोषाहार के बारे में कार्य योजना स्वीकार करना।

सतत विद्यमान कुपोषण और रुग्णता

कारण

हमारे पिछले सभी प्रयासों के बावजूद भारत में विभिन्न स्तर का कुपोषण अभी भी विद्यमान है जो एक गम्भीर चिन्ता का विषय है। इसका प्रमुख कारण राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा के अनुरूप पारिवारिक खाद्य सुरक्षा का अभाव होना है। पोषाहार विशेषज्ञों के आकलन के अनुसार प्रतिदिन प्रतिव्यक्ति औसत कैलोरी की जरूरत 2400 किलो कैलोरी है जबकि वास्तविक औसत 2280 किलो कैलोरी और इससे भी कम है। अभी भी ग्रामीण क्षेत्रों में 7 प्रतिशत परिवारों और शहरी क्षेत्रों में 3 प्रतिशत परिवारों को दो जून की रोटी नसीब नहीं होती। यह पारिवारिक खाद्य असुरक्षा और कुछ परिवारों की अत्यन्त निर्धनता का द्योतक है। पारिवारिक स्तर पर इस असुरक्षा का एक अन्य कारण सार्वजनिक वितरण प्रणाली की अपर्याप्तता भी है।

बढ़ते कुपोषण का एक अन्य कारण परिवार में खाद्य संबंधी असुरक्षा है जो परिवार में पुरुषों और महिलाओं तथा लड़कियों और लड़कों में भोजन के असमान वितरण के रूप में परिलक्षित होती है। हमारी सांस्कृतिक मान्यताओं का पुरुषों का पक्षधर होने से घरों में उपलब्ध भोजन के वितरण के मामले में परिवार में पुरुषों और लड़कों को महिलाओं और लड़कियों से तरजीह दी जाती है। यदि भोजन कम होता है तो महिलाओं को ज्यादातर वंचित रखा जाता है।

सांस्कृतिक आचार-व्यवहार और पोषण संबंधी जागरूकता का अभाव भी कुपोषण के प्रबल कारण हैं। इनमें खाना पकाने का गलत ढंग जिससे पोषक तत्वों की भारी क्षति होती है, उपलब्ध स्थानीय खाद्य पदार्थों में से अधिकांश की पूर्वाग्रहवश उपेक्षा करना और उनमें कुछ का अज्ञानतावश उपयोग न करना शामिल है। पोषण के मामले में सबसे बड़ी चूक शिशुओं को अपर्याप्त और अनुपयुक्त ढंग से आहार देना है। शिशुओं को चार महीने के बाद स्तन-पान के साथ-साथ ठोस आहार देने से उनका वजन बढ़ने के साथ-साथ उनका विकास भी होता है। साथ ही गर्भवती महिलाओं को प्रचुर मात्रा में भोजन की आवश्यकता होती है। परन्तु कई तरह की गलत धारणाओं के कारण गर्भवती महिलाओं को पोषाहार से ऐसे समय में वंचित रखा जाता है जबकि उन्हें इसकी सर्वाधिक आवश्यकता होती है। इससे होने वाले बच्चे का ठीक से पोषण नहीं होता है और मां रक्ताल्पता और कुपोषण का शिकार हो जाती है। पोषण और खान-पान संबंधी आदतों के बारे में जागरूकता पैदा करने के उपाय कुपोषण, कम-पोषण और शिशु तथा बाल मृत्यु दर पर नियंत्रण पाने में बड़े महत्वपूर्ण कारक रहे हैं इस बात का अन्दाजा कतिपय अन्य राज्यों के मुकाबले केरल राज्य के कार्य निष्पादन से हो जाता है। केरल में महिला साक्षरता की दर अधिक होने से शिशु और बाल मृत्यु दर सबसे कम है। मध्य प्रदेश, उड़ीसा, पंजाब और तमिलनाडु में हालांकि खाद्य की उपलब्धता उच्च कैलोरी ग्रहण होते हुए भी राज्यों में शिशु और बाल मृत्यु दर केरल से बहुत अधिक है क्योंकि वहां महिला साक्षरता दर बहुत कम है जैसा कि निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट है:

तालिका 6.1

साक्षरता-जागरुकता-पोषण-शिशु और बाल मृत्यु दर संबंध
पोषण संबंधी कुछ संकेतक

संकेतक	केरल	मध्य प्रदेश	उड़ीसा	पंजाब	तमिलनाडु	भारत
गरीबी रेखा से नीचे रह रही जनसंख्या का प्रतिशत	17.00	36.70	44.70	7.20	32.80	29.90
महिला साक्षरता दर	86.13	28.85	34.68	50.41	51.33	39.29
**खाद्य पदार्थ उपलब्ध (आर)	86.50	92.80	76.20	99.10	92.60	92.30
स्थिति (यू)	96.00	95.90	92.70	98.50	98.70	97.30
@खाद्य पर एम.पी.सी. ई. (आर.)	206.60	148.80	149.10	226.60	151.70	160.60
आर.एस.यू.	228.20	216.60	247.10	243.70	218.9	223.6
कैलोरी ग्रहण (कैलोरी/क्यू./डे)	2140.00	2614.00	2700.00	2760.00	1871.00	2280.00
महिला कार्य भागीदारी दर (कुल जनसंख्या का प्रतिशत)	15.85	32.68	20.79	4.40	29.89	22.25
कुल प्रजनन दर (15-49)	2.00	3.90	2.92	2.91	2.48	3.39
जीविता 1981-88 (पु.)	65.90	50.60	53.60	63.00	57.40	55.90
(म.)	72.20	51.80	53.10	64.70	58.50	55.90
उन बच्चों (12-23 महीने के) का प्रतिशत जिनका पूरी तरह से टीकाकरण हो चुका है	54.40	29.20	36.10	61.90	64.90	35.40
शिशु मृत्यु दर (आई. एम. आर.)	17.00	122.00	126.00	53.00	57.00	80.00
5 से कम आयु के बच्चों का मृत्यु दर (यू.एस.एम.आर.)	32.00	130.30	131.00	68.00	86.50	109.30

** ऐसे परिवारों का प्रतिशत जो 2 जून की रोटी खा सकते हैं।

@मासिक प्रति व्यक्ति व्यय।

स्रोत : महिलाओं और बच्चों के लिए बेहतर पोषण-समस्याएं और कार्यक्रम (डा. सरला गोपालन, सचिव, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, महिला और बाल विकास विभाग।

इसके अलावा, पर्यावरणीय पहलू अर्थात् पानी की खराब किस्म और अपर्याप्त स्वच्छता के कारण अस्वस्थता और रुग्णता होती है तथा पोषण आहार के अवशोषण में कमी आती है। अतिसार के कारण, जोकि खराब पानी तथा अन्य संक्रमणों से होता है, शरीर में पोषण की विद्यमानता बनाए रखना कठिन होता है।

हम दावा करते हैं कि 1990 में अखिल भारतीय स्तर पर अत्यधिक कुपोषण को 9% से कम स्तर तक लाया जाना महत्वपूर्ण है और 1990 से 1993 की लगभग तीन वर्ष की अवधि में कुपोषण के मामलों में 10% तक कमी आई है, एक महत्वपूर्ण बात है। अभी भी बिहार जैसे कुछ ऐसे भाग हैं जहां अत्यधिक कुपोषण लगभग 25% है। स्कूल जाने की आयु से पूर्व वाले बच्चों में अत्यधिक कुपोषण की स्थिति अभी भी शोचनीय है। बड़ी संख्या में बच्चे अल्प से मध्यम स्तर के कुपोषण से पीड़ित हैं। इसे "जीवित बच्चों का युग" भी कहा जाता है, हालांकि बच्चे अत्यधिक कुपोषण के शिकार नहीं होते फिर भी वे कुपोषण की विभिन्न स्थितियों से पीड़ित रहते हैं।

सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमियां

संवेदनशील श्रेणियों को सूक्ष्मपोषक तत्वों विशेष रूप से लौह तत्व, विटामिन "सी" और विटामिन "ए" प्रमुख सूक्ष्मपोषक तत्वों की पूर्ति/उपलब्धता के संबंध में अभी भी पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जा रहा है।

पिछले दो दशकों में विटामिन ए की कमी 1976-79 और 1988-89 के बीच (0.3% से 0.4%) के कारण अन्धेपन में, समुदाय में सभी प्रकार के अन्धेपन के रूप में नि:सन्देह काफी कमी आई है। इससे एक वर्ष से कम आयु के शिशुओं में विटामिन 'ए' की भारी मात्राओं के सेवन से कुपोषण और खसरे के मामलों में गिरावट आई है। इस तरह का सुधार बड़े बच्चों में "बिटाट्स स्पाट" की कमी के रूप में नहीं दिखाई देता क्योंकि उन्हें बाद में विटामिन ए की मात्रा उसी स्तर पर नहीं दी गई। "बिटाट्स स्पॉट" 1975-79 और 1988-90 के बीच 1.8% से घटकर 0.7% रह गया।

लौह तत्वों की कमी से रक्ताल्पता की समस्या विकासशील देशों के लिए प्रमुख चिन्ता का विषय है, रक्ताल्पता दरिद्रता का द्योतक नहीं है, यह रोग आर्थिक रूप से सभी वर्ग के लोगों में होता है, यह गर्भवती महिलाओं में सबसे अधिक, स्तनपान कराने वाली माताओं में थोड़ा कम होता है और अन्य सभी आयु वर्ग के लोगों को भी प्रभावित करता है। लौह तत्वों की कमी से रक्ताल्पता रोग अस्वस्थता के जरिए उत्पादकता को प्रभावित करता है इसलिए इसका अर्थव्यवस्था पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। दुर्भाग्यवश, इस कमी की सबसे अधिक उपेक्षा की जाती है क्योंकि इसकी नैदानिक सुस्पष्टताएं प्रभावशाली नहीं हैं।

आयोडीन की कमी से होने वाले विकारों से गर्भपात, मृत-प्रसव, जन्मजात गड़बड़ियां, आई.एम.आर. में वृद्धि, भेंगापन, मूक बधिरता, मानसिक विकार और बौनापन होता है। इसके परिणामस्वरूप बच्चों और युवाओं में घेंघा, बाधित मानसिक कार्यकरण और मंदता वाला शारीरिक विकास होता है। आयोडीन की कमी एक पर्यावरणीय कमी है, इसका मुकाबला केवल दैनिक आहार की मदों का पुष्टिकरण सुनिश्चित करके किया जा सकता है। इस प्रकार आयोडीन युक्त नमक सर्वाधिक व्यावहारिक निम्न लागत का समाधान है और इसे भारत में अपनाया गया है, आयोडीनयुक्त नमक को पूरे भारत में व्यापक रूप से अपनाया गया है। यह एक बहुत बड़ा कदम है। जिससे आने वाले वर्षों में स्थिति में परिवर्तन होना चाहिए। देश में अभी भी कुछ हिस्से ऐसे हैं जहां अधिकतर वाणिज्यिक कारणों से आयोडीनयुक्त नमक को स्वीकार नहीं किया है।

नि:संदेह पिछले 20 वर्षों से समेकित बाल विकास सेवाओं (आई.सी.डी.एस.) के क्रियान्वयन का जोर कार्यक्रम को लागू किये जाने वाले क्षेत्रों में सूक्ष्म पोषक पदार्थों—विशेषत: विटामिन "ए" और लौह तत्व पर रहा है। परन्तु देश के अधिकांश क्षेत्रों में आई.सी.डी.एस. लागू नहीं किया गया है। आई.सी.डी.एस. के अंतर्गत स्वास्थ्य, पोषण और शिक्षा सेवाओं के पैकेज के बावजूद कतिपय अन्य कारणों से कुपोषण की समस्या को पूरी तरह से हल नहीं किया जा सका है। इसका एक कारण यह है कि पूरक पोषण कुछ निर्धन बच्चों के लिए पर्याप्त "मुख्य भोजन" होता है। दूसरे, जैसा कि पहले बताया जा चुका है, खराब स्वच्छता प्रबंध और पीने के पानी की खराब गुणवत्ता के कारण बच्चों में संक्रमण और अतिसार के मामले अधिक पाये जाते हैं जिसके परिणामस्वरूप पोषण के जो सकारात्मक प्रभाव होने चाहिए वे नहीं हो पाते हैं। निर्जलीकरण को समाप्त करने के लिए ओरल रिहाइड्रेशन थेरेपी (ओ.आर.टी.) को प्रचलित किया गया है। परन्तु ओ.आर.टी. अतिसार के कारण पोषण में आई कमी को रोक नहीं सकता है। स्वस्थ विकास के वातावरण को सुदृढ़ करने के उद्देश्य से आई.सी.डी.एस. और पेयजल स्वच्छता कार्यक्रमों के बीच बेहतर तालमेल नवीनतम रणनीति है। सेवाओं के पैकेज की गुणवत्ता को अनुपूरक पोषण, सूक्ष्म पोषक पदार्थों और टीकों की समुचित आपूर्ति सहित कार्यकर्त्ताओं को नियमित प्रशिक्षण देकर और इन मामलों के संबंध में समुदाय में जागृति पैदा करने को सुनिश्चित करके आई.सी.डी.एस. कार्यक्रम को लागू किये जाने की गुणवत्ता में सुधार लाए जाने की आवश्यकता है।

तालिका 6.2

प्रमुख आवश्यक पोषक तत्वों की कमी के कारण होने वाली विकृतियों की प्रतिशतता

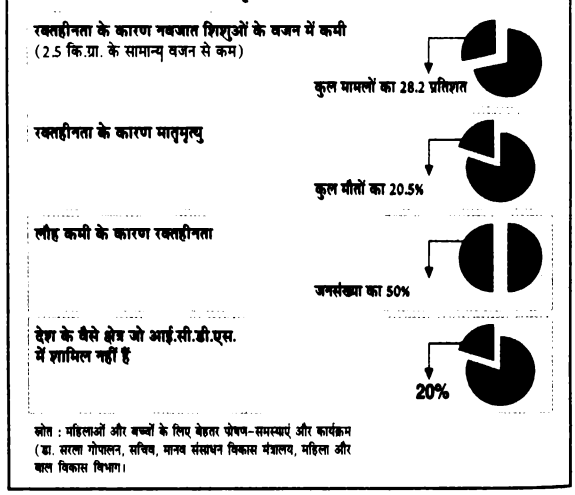

स्रोत : महिलाओं और बच्चों के लिए बेहतर पोषण-समस्याएं और कार्यक्रम (डा. सरला गोपालन, सचिव, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, महिला और बाल विकास विभाग।

जन्म के समय कम वजन के मामले विश्व के कुछ अन्य भागों की अपेक्षा अधिक हैं जैसा कि निम्नलिखित सारणी में दर्शाया गया है:

तालिका 6.3

चुनिंदा एशियाई देशों और अमरीका में जन्म के समय कम वजन

देश	जन्म के समय कम वजन (< 2500 ग्राम) प्रतिशत
अमरीका	
श्वेत	6.0
काले	10.6
थाइलैंड	9.6
इंडोनेशिया	10.5
म्यान्मार	17.8
श्रीलंका	18.4
नेपाल	
ग्रामीण	14.3
शहरी	22.3
भारत	28.2

स्रोत : प्रजनन चक्र के दौरान महिलाओं के लिए मानवमिति के उपयोग तथा नवजात शिशु 1993 के संबंध में विश्व स्वास्थ्य संगठन की विशेषज्ञ समिति की रिपोर्ट।

1 से 5 वर्ष के आयु वर्ग के बच्चों में कुपोषण के मामलों पर नीचे एक चार्ट दिया गया है:

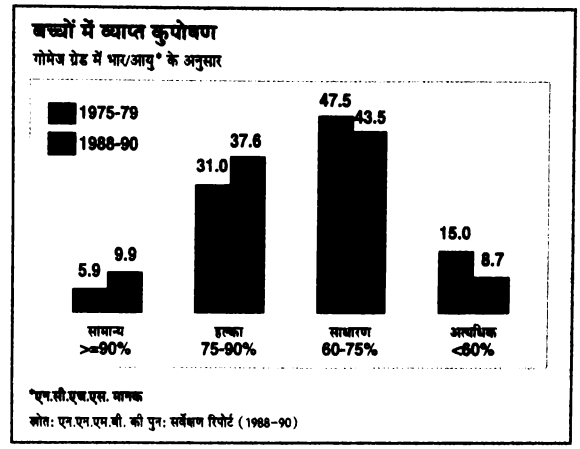

इस आरेख से यह स्पष्ट है कि मध्यम, अत्यधिक कुपोषण के मामलों में कमी आ रही है और सामान्य तथा अल्पपोषण के मामलों में वृद्धि हो रही है। बाद की दो श्रेणियों में कुपोषण के मामलों में वृद्धि प्रथम दो श्रेणियों में हो रही कमी को परिलक्षित करती है।

7

स्वास्थ्य

मृत्यु दर में कमी आई है और यह अब प्रति हजार नौ हो गई है, लेकिन असंक्रामक रोगों में, जिसमें "एड्स" जैसी नई बीमारी शामिल है, जनसंख्या बढ़ने, शहरीकरण, देश में दूसरे स्थानों पर जाकर बसने, और जीवन के बदलते तौर-तरीकों इत्यादि के कारण वृद्धि हुई है। विश्व विकास रिपोर्ट 1993 के अनुसार, भारत में अशक्तता के कारण 29.2 करोड़ जीवन वर्ष हानि आंकी गई है, जो उप अफ्रीकन सहारा के एकदम अगले नम्बर पर है। यह विश्व में कुल ऐसी हानि का 21 प्रतिशत है। स्वास्थ्य से जुड़े ढांचागत क्षेत्र में हो रहे विस्तार के बावजूद चिकित्सा कर्मियों संबंधी योजना असंतोषजनक रही है और स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं, अर्द्ध-चिकित्सा कर्मचारियों, फार्मासिस्टों, तकनीशियनों, नर्सों, दाइयों इत्यादि की उपलब्धता में कमी रही है। स्वास्थ्य क्षेत्र में किये जाने वाले निवेश में लगातार कमी हुई है और योजना व्यय पहली योजना में 3.3 प्रतिशत से घट कर आठवीं योजना में 1.74 प्रतिशत रह गया है। आवश्यक औषधियों की आपूर्ति में कमी है तथा महत्वपूर्ण पदों पर प्रशिक्षित स्वास्थ्य कर्मी उपलब्ध नहीं हैं।

अतीत

पिछले पचास वर्षों में स्वास्थ्य संबंधी मूलभूत सुविधाएं विकसित करने और इनके संचालन हेतु आवश्यक जनशक्ति जुटाने के प्रयास किये गये हैं और पूंजी निवेश किया गया है। अस्वस्थता और मृत्यु का प्रमुख कारण समझे जाने वाले संक्रामक रोगों की रोकथाम के लिए अनेक राष्ट्रीय स्वास्थ्य कार्यक्रम बनाये गये हैं और कार्यान्वित किये गये हैं। यद्यपि स्वास्थ्य राज्य का विषय है, तथापि लोगों के स्वास्थ्य में सुधार करने के लिए केन्द्रीय प्रायोजित अनेक योजनाओं के माध्यम से राष्ट्रीय निदेश भी दिये गये हैं। संक्रामक तथा गैर-संक्रामक रोगों की रोकथाम संबंधी प्रमुख राष्ट्रीय कार्यक्रमों में मलेरिया उन्मूलन/नियंत्रण, तपेदिक नियंत्रण, एड्स नियंत्रण, कुष्ठ रोग उन्मूलन तथा अंधता, कैन्सर, आयोडीन की कमी, डायबिटीज आदि की रोकथाम संबंधी कार्यक्रम शामिल हैं। काला-अजार तथा अन्य रोगाणुवाहक रोग व इसके साथ-साथ व्यवसाय जन्य रोगों के उपचार पर विशेष ध्यान दिया गया है। निवारक स्वास्थ्य रक्षा तथा टीकाकरण के क्षेत्र में किये गये महत्वपूर्ण कार्य का भी विशेष उल्लेख किया जाना चाहिए। वस्तुत: इससे शिशु मृत्यु दर में भारी कमी हुई है।

स्वास्थ्य संबंधी मूलभूत सुविधाओं का विस्तार

विगत वर्षों में स्वास्थ्य संबंधी मूलभूत सुविधाओं में हुए विस्तार को निम्नलिखित तालिका में दर्शाया गया है:

तालिका 7.1

स्वास्थ्य संबंधी मूलभूत सुविधाओं का विस्तार

वर्ष	1951	1961	1971	1981	1991	1996
प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र	725	2,565	5,112	5,740	20,450	21,853
उपकेन्द्र	—	—	28,489	51,406	130,964	132,727
अस्पताल	2,694	3,094	3,862	6,804	11,174	उपलब्ध नहीं
अस्पताल बिस्तर	117,178	230,000	348,665	589,495	810,648	उपलब्ध नहीं
औषधालय	6,515	9,406	12,180	16,751	27,431	उपलब्ध नहीं
सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र	—	—	—	217	2,071	2,424
मेडिकल कालेज	28	60	98	111	128	146 (1993 में)
चिकित्सक	61,840	83,756	151,129	394,068	410,875	उपलब्ध नहीं
दंत चिकित्सक	3,290	3,682	5,512	8,648	10,751	2395 (1995 में)
नर्सें	16,550	36,584	80,620	154,280	340,206	512595 (1995 में)

स्रोत : स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय

स्वास्थ्य क्षेत्र में पूंजी निवेश

स्वास्थ्य क्षेत्र में पूंजी निवेश के स्तर में भी वृद्धि हुई है। प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951-56) में यह 65.20 करोड़ था जो आठवीं पंचवर्षीय योजना (1992-97) में बढ़कर 7575.92 करोड़ रुपये हो गया।

तालिका 7.2

सभी क्षेत्रों में किये गये योजनागत निवेश की तुलना में स्वास्थ्य क्षेत्र में किए गए योजनागत निवेश का अनुपात

अवधि	कुल योजना निवेश	स्वास्थ्य	कालम 2 से कालम 3 की प्रतिशतता
पहली योजना (1951-56)	1960	65.2	3.32
दूसरी योजना (1956-61)	4672	140.8	3.01
तीसरी योजना (1961-66)	8576	225.0	2.62
वार्षिक योजनाएं (1966-69)	6625.4	140.2	2.12
चौथी योजना (1969-74)	15778.8	335.5	2.13
पांचवीं योजना (1974-79)	39322	682.0	1.73
1979-80 परिव्यय	11650	268.2	2.3
छठी योजना (1980-85)	97500	1821.05	1.86
सातवीं योजना (1985-90)	180000	3392.89	1.88
दो वार्षिक योजनाएं (1991-92)	137033.55	2253.86	1.64
आठवीं योजना (1992-97)	434100	7575.92	1.74

स्रोत : योजना आयोग

स्वास्थ्य क्षेत्र की कमियां

एक ओर जहां पिछले वर्षों से स्वास्थ्य क्षेत्र पर होने वाले योजना निवेश में वृद्धि हो रही है, वहीं इसके सभी क्षेत्रों में होने वाले कुल योजना निवेश की तुलना में इसके अनुपात में कमी आई है, जैसा कि निम्नलिखित तालिका में देखा जा सकता है। (स्वास्थ्य क्षेत्र के लिए सकल घरेलू उत्पाद का केवल 1.45 प्रतिशत भाग आवंटित किया जाता है जबकि कुछ विकसित देशों में यह आवंटन 7 से 15 प्रतिशत तक किया जाता है)।

स्वास्थ्य सेवाओं में आज भी बहुत सी कमियां हैं:-

- स्वास्थ्य सेवाओं संबंधी बुनियादी सुविधाओं में शहरी-ग्रामीण असमानताएं।
- प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों और उप-केन्द्रों हेतु भवनों की व्यवस्था संबंधी पिछला बकाया कार्य।
- अनुचित अवस्थिति/विद्यमान भवनों के रखरखाव में कमी।
- आवश्यक औषधियों का उपलब्ध न होना।
- सहायक चिकित्सा स्वास्थ्य केन्द्रों (अस्पतालों) द्वारा प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों के कार्यों का भी निर्वहन किया जाता है।
- शहरी क्षेत्रों में तीसरी श्रेणी की स्वास्थ्य चिकित्सा सुविधाओं की भरमार।
- चिकित्सा कर्मचारियों की आवश्यकता और उपलब्धता के बीच भारी अंतर। 3000 से 5000 की जनसंख्या के लिए प्रति स्वास्थ्य उप-केन्द्र में एक पुरुष और एक महिला बहुउद्देश्यीय कार्यकर्ता के राष्ट्रीय मानदंड की तुलना में अपेक्षित पदों के केवल आधे पद ही स्वीकृत किए गए हैं। लगभग 100,000 स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं की कमी है। परा-चिकित्सा कर्मचारी, फार्मासिस्ट, प्रयोगशाला-तकनीशियन, एक्सरे तकनीशियन, नर्सों, मिडवाईफों आदि की संख्या आवश्यकता से बहुत कम है।
- दस प्रतिशत प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र बिना चिकित्सकों के चलाए जा रहे हैं। चिकित्सकों और नर्सों के बीच अनुपात का सार्वभौमिक मापदंड 1:3 है। देश में इनका वास्तविक अनुपात 1:09 है। हमारे यहां लगभग दस लाख नर्सों की कमी है। वस्तुत: स्वास्थ्य कर्मचारी व्यवस्था में व्यापक सुधार किये जाने की आवश्यकता है।

तालिका 7.3

प्राथमिक स्वास्थ्य रक्षा संबंधी बुनियादी सुविधाओं में अंतर

बुनियादी ढांचे की किस्म	1991 की जनगणना के अनुसार आवश्यकता	1995 में कार्यरत केन्द्र	अंतर*
उपकेन्द्र	134,108	132,730	10,081
प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र	22,349	21,854	2,003
सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र	5,587	2,424	3,183

*अतिरिक्त सुविधाओं वाले राज्यों को नजरअंदाज करके।
स्रोत : आर.एच.एस. बुलेटिन, जून, 1996 (स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय)

वास्तविक स्थिति यह है कि गत वर्षों में यद्यपि मृत्यु दर कम होकर प्रति हजार पर नौ हो गई है किन्तु संक्रमण और कुपोषण से होने वाली रुग्णता में कोई विशेष कमी नहीं हुई है। एड्स जैसे नए रोगों सहित गैर-संक्रामक रोगों के कारण रुग्णता दर बढ़ रही है जिसका कारण जनसंख्या में वृद्धि, शहरीकरण, लोगों का देश में एक स्थान से दूसरे स्थान के लिए पलायन, जीवन शैली में परिवर्तन होना है। एड्स वस्तुत: महामारी का रूप ले रही है। वर्ष 1986 से लगभग 3 मिलियन व्यक्तियों की जांच की गई है जिनमें से 50,000 से भी अधिक व्यक्तियों में एच. आई. वी. पाजिटिव पाया गया है और फरवरी, 1997 में 3000 से भी अधिक व्यक्तियों के एड्स होने का पता चला है। महाराष्ट्र, तमिलनाडु, मणिपुर, गुजरात, पांडिचेरी, मध्य प्रदेश, दिल्ली, केरल और पंजाब ऐसे राज्य हैं जहां पर्याप्त संख्या में एड्स रोगी होने का पता चला है। यह शहरी क्षेत्रों से ग्रामीण क्षेत्रों और परिवार के मुखिया-गृहिणियों तथा बच्चों में फैल रहा है। जीवन साथी के अतिरिक्त अन्यत्र यौन-संबंध रखने के अलावा रक्त संचरण, इंजेक्शन सिरिंज और सुइयां एड्स फैलने के मुख्य कारण हैं।

तालिका 7.4

मुख्य स्वास्थ्य रक्षा संस्थाओं में कर्मचारियों का अंतर

कर्मचारियों की श्रेणी	1991 की जनगणना के अनुसार आवश्यकता	30-6-96 की स्थिति के अनुसार	अंतर (2-3)
विशेषज्ञ	22,348	2,751	19,597
प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों में चिकित्सक	22,349	26,930	-4,581
खंड विस्तार शिक्षक/स्वास्थ्य शिक्षक	27,936	5,621	22,315
फार्मासिस्ट	33,523	20,022	13,501
प्रयोगशाला तकनीशियन	33,523	9,711	23,812
एक्सरे तकनीशियन/रेडियोग्राफर	5,587	1,288	4,299
नर्स मिडवाईफ	61,458	12,683	48,775
स्वास्थ्य सहायक (पुरुष)	22,349	15,745	6,604
स्वास्थ्य सहायक (महिला)	22,349	18,904	3,445
स्वास्थ्य कार्यकर्ता (पुरुष)	134,108	62,229	71,879
स्वास्थ्य कार्यकर्ता (महिला) (उप केन्द्र + प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र)	156,457	133,773	22684

* अतिरिक्त सुविधाओं को नजरअंदाज करने के बाद कुल आवश्यकता का आकलन किया गया है।
स्रोत : आर.एच.एस. बुलेटिन, जून, 1996 (स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय)

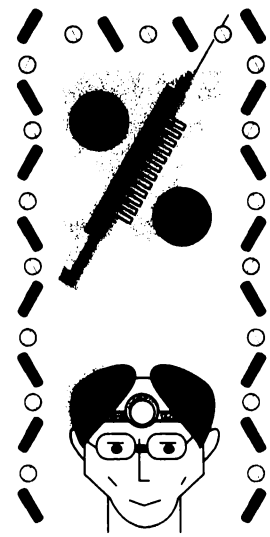

अशक्तता के कारण समयपूर्व मृत्यु

विश्व विकास रिपोर्ट (1993) के अनुसार, भारत में अशक्तता के कारण समयपूर्व मृत्यु के मामलों की संख्या 292 मिलियन है। यह विश्व में इस कारण हुई कुल मौतों का 21% है। यह विशेष रूप से इस बात को मद्देनजर रखते हुए चिंता का विषय है कि हमारे देश की जनसंख्या विश्व की जनसंख्या का 16% है (अशक्तता, समय पूर्व मृत्यु, मृत्यु की वास्तविक आयु और अपेक्षित आयु के बीच के अंतर को दर्शाती है)। यदि किसी व्यक्ति की 60 वर्ष की अपेक्षित आयु के विपरीत 50 वर्ष की आयु में मृत्यु हो जाती है, तो इससे अशक्तता के कारण होने वाली समय-पूर्व मृत्यु की अवधि 10 वर्ष (60-50) बनती है। अशक्तता के कारण होने वाली समय पूर्व मृत्यु के मामले में भारत का स्थान अफ्रीका के उप-सहारा क्षेत्र के बाद आता है।

8

शिक्षा

शैक्षिक मूलभूत ढांचे में व्यापक विस्तार हुआ है। प्रत्येक योजना में शिक्षा के अन्तर्गत निवेश में लगातार वृद्धि हुई है। यह प्रथम योजना में 153 करोड़ रुपये से बढ़कर 8वीं योजना में 19,600 करोड़ रुपये हो गया है। प्रारम्भ में यह योजना व्यय का 1.2 प्रतिशत था जो वर्ष 1986-87 में बढ़कर 3.9 प्रतिशत हो गया। फिर भी, 1991 की जनगणना में अशिक्षितों की संख्या 200 मिलियन थी, जो कि देश की 1951 की कुल जनसंख्या के आधे से भी अधिक थी। शिक्षा में लक्ष्य निर्धारण निरन्तर भ्रामक रहा है। गुणवत्ता में गिरावट आई है। अध्यापक अपर्याप्त हैं। राज्यों के बीच उपलब्धियों में असमानता सुस्पष्ट है। यद्यपि विभिन्न राज्यों में अनेक प्रोत्साहनों की योजना है, किन्तु उन्हें सही ढंग से लागू नहीं किया गया। सकल घरेलू उत्पाद के छः प्रतिशत को लक्षित व्यय के रूप में मानते हुए शिक्षा के लिए अत्यधिक धन की कमी है। विश्व बैंक के अनुसार, भारत प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में सार्वभौमिकता, कोरिया गणराज्य के तीन दशकों बाद तथा मलेशिया और इण्डोनेशिया के दो दशकों बाद प्राप्त करेगा। महिलाओं, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति तक शिक्षा की पहुंच में अनजाने में भेदभाव रहा है। शिक्षा सभी स्तरों पर कार्य और रोजगार बाजार की आवश्यकताओं के अनुरूप नहीं है।

अतीत

शिक्षा नीति ब्रिटिश काल से ही अध्ययन का विषय रही है। कई आयोगों और समितियों ने समय-समय पर इस विषय का अध्ययन किया है और अपनी सिफारिशें प्रस्तुत की हैं, जिनके कार्यान्वयन से शिक्षा नीति के क्रमिक विकास पर प्रभाव पड़ा है।

संवैधानिक उपबंध

हमारे संविधान के निर्माताओं ने शिक्षा से संबंधित मुद्दों पर विशेष ध्यान दिया है। प्रारंभिक शिक्षा का सार्वभौमिकीकरण (बच्चों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा हेतु उपबंध से संबंधित अनुच्छेद 45), मातृभाषा में शिक्षा सुविधाएं (अनुच्छेद 350क) वैज्ञानिक, तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा सहित उच्च शिक्षा हेतु मानकों की स्थापना, विशेष अध्ययन और अनुसंधान को प्रोत्साहन (सातवीं अनुसूची, संघ सूची 1) तथा अल्पसंख्यकों के शिक्षण संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन सम्बन्धी अधिकार (अनुच्छेद 30), ये सभी विषय संविधान में स्पष्ट रूप से उल्लिखित हैं। समानता और सामाजिक न्याय, शिक्षा प्रणाली के निर्माण हेतु व्यापक आधार के सृजन, शिक्षा की गुणवत्ता और अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा हेतु सकारात्मक कार्यवाही सुनिश्चित करने की दृष्टि से ये उपबन्ध बनाए गए हैं। संविधान के 42वें संशोधन (1976) के अन्तर्गत शिक्षा को समवर्ती सूची में सम्मिलित किया गया है। ऐसा देश भर में एक समन्वित ढंग से सभी स्तरों पर शिक्षा के व्यवस्थित विकास हेतु राष्ट्रीय दिशा-निर्देश देने के लिए किया गया था।

शिक्षा का विस्तार

शिक्षा के आधारभूत ढांचे का गत पांच दशकों में सभी स्तरों पर उल्लेखनीय विस्तार हुआ है। लोगों की शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु भारी सार्वजनिक और निजी निवेश हुआ है।

शिक्षा नीति का विकास

1781	गवर्नर जनरल, लार्ड वारेन हेस्टिंग्ज प्रथम शैक्षणिक टिप्पणी	भारत में उदार शिक्षा के विकास और उन्नयन को प्रोत्साहन, कलकत्ता और मद्रास में प्रथम कॉलेज की स्थापना
1813	चार्टर अधिनियम	भारत में अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली का आरम्भ "नेटिव्ज ऑफ इंडिया" द्वारा शिक्षा को प्रोत्साहन, साहित्य को उन्नत और समृद्ध बनाना तथा भारत में वैज्ञानिक ज्ञान को बढ़ावा देना।

1823	गवर्नर जनरल को राजाराम मोहन राय का अभ्यावेदन	विज्ञान विषयों पर विशेष ध्यान सहित शिक्षा प्रणाली को और अधिक उदार बनाने का अनुरोध।
1835	लार्ड मैकाले का टिप्पण	ओरियन्टल शिक्षा के स्थान पर अंग्रेजी पढ़ाने की सिफारिश; विशेष रूप से यह सलाह दी गई कि भारतीयों को "उनकी रूचि के अनुसार शिक्षा न देकर लाभप्रदता की दृष्टि से शिक्षा दी जाए"; हिन्दु और मुस्लिम कानूनों को संहिताबद्ध करने की भी सिफारिश; ब्रिटिश इण्डिया कम्पनी ने लार्ड मैकाले की सिफारिश को स्वीकार करते हुए एक प्रस्ताव पारित किया; यह पहली शैक्षणिक घोषणा थी; पाश्चात्य कला और विज्ञान को नई नीति का मूल उद्देश्य समझा गया।
1854	वुड्स डिस्पेच	भारत में अंग्रेजी शिक्षा को मेगना कार्य के रूप में समझा गया; महिलाओं की शिक्षा के महत्व पर बल दिया गया; प्राथमिक स्तर से विश्वविद्यालय स्तर तक की शिक्षा के लिए स्पष्ट योजना की आवश्यकता; सरकारी विद्यालयों में स्वैच्छिक रूप में धार्मिक और नैतिक अनुदेशों पर बल दिया गया; शिक्षकों के प्रशिक्षण पर बल दिया गया; विश्वविद्यालयों की स्थापना और जन-शिक्षा का विस्तार और व्यावसायिक शिक्षा की सिफारिश की गई जिसके परिणामस्वरूप मद्रास, मुम्बई और कलकत्ता विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई।
1882-83	लार्ड रिपन के कार्यकाल के दौरान प्रथम शिक्षा आयोग (इसे हंटर आयोग के नाम से भी जाना जाता है)	1854 से अर्थात् वुड्स डिस्पेच के समय से शैक्षिक विकास के क्षेत्र में खोजबीन की गई और शिक्षा, विशेषरूप से प्रारम्भिक शिक्षा और स्त्री शिक्षा का विस्तार करने की सिफारिश की गई।
1902	लार्ड कर्जन द्वारा भारतीय विश्वविद्यालय आयोग-रेलीग आयोग की नियुक्ति	उस समय तक स्थापित विश्वविद्यालयों के दर्जे, अध्ययन पाठ्यक्रमों और परीक्षा पद्धतियों के संबंध में जांच की गई; नये विश्वविद्यालयों हेतु प्रस्ताव किए गए; छात्रों के लिए छात्रवृत्तियों और छात्रावास सुविधाओं की सिफारिश की गई।
1910	इम्पीरियल लेजिस्लेटिव काउंसिल में प्राथमिक शिक्षा के संबंध में गोखले का प्रस्ताव	पूरे देश में प्रारंभिक शिक्षा को नि:शुल्क और अनिवार्य बनाने की सिफारिश की गई। (विधेयक अस्वीकृत हुआ)

1913	शिक्षा नीति के संबंध में भारत सरकार का प्रस्ताव	सभी क्षेत्रों में शैक्षणिक संस्थाओं के विस्तार पर विचार किया गया; शिक्षा के क्षेत्र में सुधार; शिक्षकों का प्रशिक्षण; परीक्षा सुधार; पाठ्यक्रम का पुनरावलोकन; शिक्षा का महत्व; विद्यार्थियों के लिये आवासीय सुविधाएं; आदि।
1929	''हार्टोग'' कमेटी	शिक्षकों की गुणवत्ता और स्तर संबंधी सिफारिश शैक्षिक संस्थाओं के जल्दबाजी में विस्तार की आलोचना, समेकन और सुधार करने की सिफारिश।
1935	भारत सरकार अधिनियम	शैक्षिक कार्यकलापों को संघीय और प्रान्तीय विषयों में श्रेणीबद्ध किया गया।
1937	वर्द्धा शिक्षा समिति	अध्ययन प्रक्रिया में बच्चों की भागीदारी; सामाजिक उत्पादक कार्यकलाप के रूप में हस्तशिल्प का चुनाव; विद्यार्थियों और शिल्प कलाओं के बीच परस्पर संबंध, वास्तविक और सामाजिक वातावरण में परस्पर संबंध, आदि की सिफारिश, शिक्षा के माध्यम के रूप में मातृ-भाषा और प्रौढ़ शिक्षा की सिफारिश।
1948-49	डा. राधाकृष्णन की अध्यक्षता में भारतीय शिक्षा आयोग	देश की उस समय की विद्यमान और भावी आवश्यकताओं के अनुरूप विश्वविद्यालय शिक्षा के विस्तार और सुधार की सलाह; विशेष रूप से कृषि, यांत्रिकी, प्रौद्योगिकी और विधि के क्षेत्र में, व्यावसायिक शिक्षा की सिफारिश।
1952-53	डा. ए.एल. मुदालियार की अध्यक्षता में माध्यमिक शिक्षा आयोग	व्यावसायीकरण सहित माध्यमिक शिक्षा प्रणाली को सुदृढ़ बनाने की सिफारिश।
1958-59	महिला शिक्षा संबंधी दुर्गाभाई देशमुख समिति	प्रौढ़ तथा ग्रामीण महिलाओं के लिए विशेष शिक्षा सुविधाओं पर बल।
1964-66	शिक्षा आयोग (कोठारी आयोग)	एक राष्ट्रीय नीति की सिफारिश, सभी राज्यों और क्षेत्रों में शैक्षणिक पुनर्गठन के संबंध में व्यापक सिफारिशें, इनके फलस्वरूप 1968 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति बनी; सिफारिशों में 10+2+3 का एक समान शैक्षिक ढांचा, प्रारंभिक शिक्षा का सार्वभौमिकीकरण, शिक्षा का व्यावसायीकरण आदि भी शामिल था।
1986	राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986	राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली की स्थापना की सिफारिश; प्रारंभिक शिक्षा के सार्वभौमिकीकरण, तथा खुली शिक्षा प्रणाली की स्थापना और नौकरियों को उपाधियों आदि से अलग करने के अतिरिक्त माध्यमिक शिक्षा के व्यावसायीकरण और उच्चतर तथा तकनीकी शिक्षा को सुचारू बनाने पर बल दिया; पहली बार मानव संसाधन विकास पर बल दिया गया।

तालिका 8.1

1951 से मान्यता प्राप्त शैक्षणिक संस्थाओं का विकास

संस्थाएं	वर्ष				
	1950-51	1960-61	1970-71	1980-81	1987-88
प्राथमिक	209671	330399	408378	485538	543677
उच्च प्राथमिक	13596	49663	90621	116447	141014
उच्च/उच्चतर माध्यमिक	7288	17257	36738	51594	66857
सामान्य शिक्षा हेतु महाविद्यालय (स्नातक और स्नातकोत्तर स्तर)	498	1043	2598	3425	4329
व्यावसायिक शिक्षा हेतु महाविद्यालय*	155	696	2398	727+	876+
विश्वविद्यालय	27	45	82	110	142

*इनमें इंजीनियरिंग, प्रौद्योगिकी, वास्तुकला, औषधि, कृषि और वानिकी, पशु चिकित्सा, विज्ञान और शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान शामिल हैं।
+इनमें केवल इंजीनियरिंग, प्रौद्योगिकी, औषधि और शिक्षक प्रशिक्षण शामिल हैं।
स्रोत : शिक्षा और संस्कृति मंत्रालय, ए हैंडबुक ऑफ एजूकेशनल एंड एलाइड स्टेटीस्टिक्स, 1980
शिक्षा मंत्रालय, ए हैंडबुक ऑफ एजूकेशनल एंड एलाइड स्टेटीस्टिक्स, 1983 शिक्षा मंत्रालय, सिलेक्टिड एजूकेशनल स्टेटीस्टिक्स, 1980-81

शिक्षा के क्षेत्र में निवेश

सकल राष्ट्रीय उत्पाद की प्रतिशतता के रूप में वर्ष 1950-51 में शिक्षा पर होने वाला व्यय 1.2% था जो 1986-87 में बढ़कर 3.9% हो गया। अब शिक्षा पर होने वाले इस व्यय को बढ़ाकर सकल घरेलू उत्पाद का 6% करने का निर्णय लिया गया है। पहली योजना में शिक्षा हेतु योजनागत व्यय 153 करोड़ रुपये था जो आठवीं योजना में बढ़कर 19,600 करोड़ रुपये हो गया। (आठवीं योजना के आंकड़े परिव्यय के आंकड़े हैं)

शिक्षा पर व्यय

सकल घरेलू उत्पादन की प्रतिशतता के रूप में

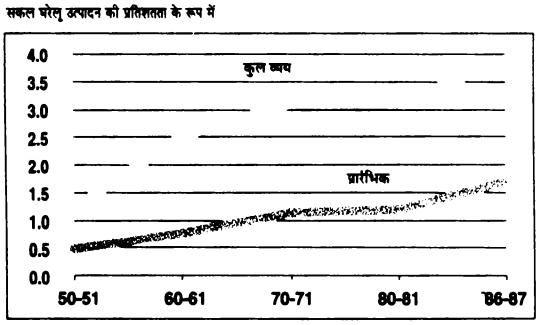

स्रोत: एन.आई.ई.पी.ए, वर्ष 2000 तक सबके लिए शिक्षा, नई दिल्ली मानव संसाधन विकास मंत्रालय, 1990 पी 105

तालिका 8.2

सकल राष्ट्रीय उत्पाद की प्रतिशतता के रूप में शिक्षा पर हुआ व्यय

	प्रारम्भिक	शिक्षा पर हुआ कुल व्यय
1950-51	0.48	1.2
1960-61	0.76	2.5
1970-71	1.12	3.1
1980-81	1.19	3.1
1986-87	1.68	3.9

स्रोत : एन.आई.ई.पी.ए., सन् 2000 तक सभी के लिए शिक्षा, नई दिल्ली। मानव संसाधन विकास मंत्रालय, 1990, पृष्ठ 105

[देखिए तालिका 8.3]

भविष्य के लिए चुनौती

भारत में अधिक जनसंख्या भाषाई और सांस्कृतिक विविधताओं, ग्रामीण शहरी तथा स्त्री-पुरुष भेद, आर्थिक और क्षेत्रीय असमानताओं के कारण शिक्षा के क्षेत्र में गंभीर चुनौती उत्पन्न हो गई है और जटिल समस्याएं आ रही हैं। इन कारणों से शिक्षा के प्रबन्धन में गंभीर कठिनाइयों के साथ-साथ शिक्षा प्राप्ति के क्षेत्र में प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। शैक्षणिक आधारभूत ढांचे के विस्तार मात्र से ही शैक्षिक विकास सुनिश्चित नहीं हो जाता। शिक्षण संस्थाओं की दूर-दूर अवस्थिति के साथ-साथ, गरीबी और लिंग भेद भी शैक्षिक विकास में बाधक हैं। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि रोजगार के क्षेत्र में शिक्षा की असंगतता के कारण भी शैक्षिक विकास पर, तथा जहां कहीं भी शैक्षिक विकास हुआ है उसे कायम रखने में प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। बच्चों द्वारा बड़ी संख्या में बीच में ही पढ़ाई छोड़ देने की प्रवृत्ति शिक्षा के विकास में बाधा को दर्शाती है और इस दिशा में किए गए प्रयास निष्फल हो जाते हैं। 1991 की जनसंख्या के अनुसार साक्षरता दर केवल 52.21 प्रतिशत है। यद्यपि, जनसंख्या में वृद्धि को देखते हुए 1951 में 16.67% की साक्षरता दर में, नि:सन्देह. यह एक उल्लेखनीय सुधार हुआ है। 1991 में हमारे देश में लगभग 20 करोड़ व्यक्ति अशिक्षित थे जो 1951 में देश की कुल जनसंख्या के आधे से भी अधिक थे।

तालिका 8.3

शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों पर पूंजीगत व्यय

योजनागत व्यय	प्रारंभिक शिक्षा	माध्यमिक शिक्षा	प्रौढ़ शिक्षा	उच्च शिक्षा	अन्य	तकनीकी शिक्षा	(प्रतिशतता) कुल
पहली योजना	56	13		9	9	13	100
(1951-56)	(850)	(200)		(140)	(140)	(200)	(1530)
दूसरी योजना	35	19		18	10	18	100
(1956-61)	(950)	(510)		(480)	(300)	(490)	(2730)
तीसरी योजना	34	18		15	12	21	100
(1961-66)	(2010)	(1030)		(870)	(730)	(1250)	(5890)
योजना अवकाश	24	16		24	11	25	100
(1966-69)	(750)	(530)		(770)	(370)	(810)	(3230)
चौथी योजना	30	18		25	14	13	100
(1969-74)	(2390)	(1400)		(1950)	(1060)	(1060)	(7860)
पांचवीं योजना	35	17		22	14	12	100
(1974-79)	(3170)	(1560)		(2050)	(1060)	(1070)	(9120)
छठी योजना	33	21	9	22	4	11	100
(1980-85)	(8360)	(5300)	(2240)	(5590)	(1080)	(2730)	(25300)
सातवीं योजना	37	24	6	16	3	14	100
(1985-90)	(28490)	(18320)	(4700)	(12010)	(1980)	(10830)	(76330)
व्यय	37	22	9	12	2	17	100
(1990-92)	(17290)	(10530)	(4160)	(5880)	(1180)	(8230)	(47270)
आठवीं योजना	47	18	9	8	4	14	100
परिव्यय (1992-97)	(92010)	(34980)	(18480)	(15160)	(7510)	(27860)	(196000)

टिप्पण : कोष्ठक में दिए गए आंकड़े दस लाख रुपये में हैं।

स्रोत : डॉ० आर.वी. वैद्यनाथ अय्यर, एजूकेशनल प्लानिंग एंड एडमिनिस्ट्रेशन इन इंडिया, रेट्रोस्पेक्ट एंड प्रोस्पेक्ट, शिक्षा विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय।

शैक्षणिक उपलब्धियों हेतु लक्ष्य निर्धारण

शैक्षणिक उपलब्धियों की प्राप्ति हेतु निर्धारित लक्ष्य सदैव ही वास्तविकता से दूर रहे हैं। इनके निर्धारण के समय निम्नलिखित बातों पर ध्यान नहीं दिया जाता है:—

- जन्म-मृत्यु सम्बन्धी आंकड़ों की समय पर अनुपलब्धता;
- संसाधनों की उपलब्धता;
- आयोजना के विभिन्न क्षेत्रों से संसाधनों की उपलब्धता के संबंध में प्रतियोगी-दावे;
- सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और क्षेत्रीय विषमताएं।

शिक्षा आयोग (1964-66) और राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के लक्ष्य निर्धारण में यथार्थवाद का अभाव स्पष्ट दिखाई देता था। जब तक कि समाज को जागृत करते हुए पूर्ण राजनैतिक वचनबद्धता के साथ जनसंख्या नियंत्रण के लिये कोई कदम न उठाए जायें और परिवारों के आय-स्तर को बढ़ाने के लिये विवेकपूर्ण आर्थिक प्रबन्धन नहीं कर लिया जाये, लक्ष्य निर्धारण में यथार्थवाद एक चुनौती स्वरूप प्रकट होगा।

बुनियादी शिक्षा

बुनियादी शिक्षा विशेषरूप से प्राथमिक शिक्षा के निवेश के सामाजिक और आर्थिक लाभ पूर्ण रूप से प्रमाणित हो चुके हैं। जननक्षमता दर में कमी शिशु और बच्चों की मृत्यु दर में कमी, श्रमोत्पादकता में वृद्धि, आर्थिक उत्पादन में वृद्धि, सभी का प्राथमिक शिक्षा में निवेश से सीधा संबंध है। योजनाबद्ध तरीके से ध्यान देने के कारण हाल ही के वर्षों में केवल बुनियादी स्तर पर ही नहीं बल्कि सभी स्तरों पर वास्तव में दाखिले में वृद्धि हुई है।

तालिका 8.4

बुनियादी और अन्य स्तरों पर दाखिले (मिलियन में)

	ग्रेड एक-पांच	ग्रेड छह-आठ	ग्रेड नौ-दस	ग्रेड ग्यारह-बारह
1950-51	19.1	3.0	1.4	उपलब्ध नहीं
1990-91	97.3	34.0	19.1	0.03

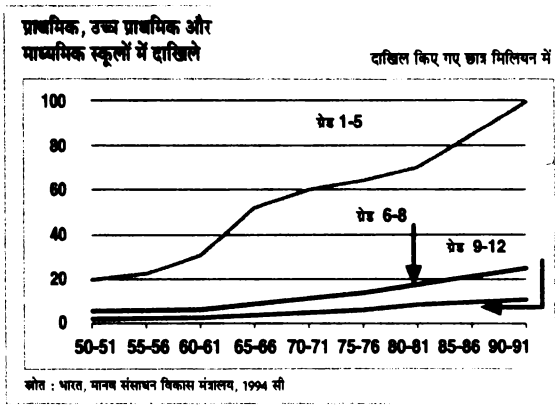

स्रोत : भारत, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, 1994 सी

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 के अनुसरण में, कुछ केन्द्रीय प्रायोजित योजनाएं जैसे कि आप्रेशन ब्लैक बोर्ड, डिस्ट्रिक्ट इंस्टीट्यूट ऑफ एजुकेशन एण्ड ट्रेनिंग (डी.आई.ई.टी.), नॉन फार्मल एजुकेशन (एन.एफ.ई.), मिनिमम लेवल्ज़ आफ लर्निंग (एम.एल.एल.), डिस्ट्रिक्ट प्राइमरी एजुकेशन प्रोग्राम (डी.पी.ई.पी.) आदि कार्यान्वित की जा रही हैं, जिससे कि प्राथमिक शिक्षा की सर्वव्यापकता को एक राष्ट्रीय दिशा प्रदान की जा सके। इन योजनाओं के द्वारा प्राथमिक शिक्षा के परिणात्मक और गुणात्मक पक्षों पर ध्यान दिया जा रहा है। घरेलू संसाधनों की व्यवस्था के अतिरिक्त द्विपक्षीय और बहुपक्षीय साधनों—जैसे कि ओवरसीज़ डेवेलपमेंट एजेन्सी (यू.के.), स्वीडिश इंटरनेशनल डेवेलपमेंट एजेन्सी (एस.आई.डी.ए.), यूनाइटेड नेशन्स चिल्ड्रन्स फण्ड (यूनीसेफ), और इंटरनेशनल डेवेलपमेंट एसोसिएशन (आई.डी.ए.) का भी सहयोग लिया गया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति को और अधिक प्रभावी बनाने के लिये, 73वें और 74वें संविधान संशोधनों के अनुरूप—जिसके अन्तर्गत पंचायती राज संस्थाओं को प्राथमिक, माध्यमिक आदि स्तरों की शिक्षा का उत्तरदायित्व सौंपा गया, लड़कियों की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया गया और शैक्षिक प्रशासन का विकेन्द्रीकरण किया गया।

लेकिन अभी भी काफी कुछ किया जाना शेष है। हालांकि, प्राथमिक स्तर की शुरूआत तक नामांकन कराने वाले छात्रों की संख्या में वृद्धि हुई है, फिर भी लगभग 40 प्रतिशत छात्र प्राथमिक शिक्षा पूरी किए बिना बीच में ही पढ़ाई छोड़ देते हैं। इस संबंध में विभिन्न राज्यों, छात्रों तथा छात्राओं, शहरी तथा ग्रामीण बच्चों, अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों तथा अन्य वर्गों के बीच विसंगतियां काफी स्पष्ट हैं। जहां साक्षरों की संख्या 1951 में 52 मिलियन से बढ़ कर 1991 में 350 मिलियन हो गई, वहीं बाद के वर्षों में निरक्षरों की संख्या 197 मिलियन तक पहुंच गई। प्राथमिक विद्यालय में भर्ती योग्य 10.5 करोड़ बच्चों में से 3.5 करोड़ बच्चे अभी भी विद्यालय जाने से वंचित हैं।

बाक्स 8.1 : बुनियादी तथा शिक्षा के अन्य स्तरों पर कार्यनिष्पादन का तुलन पत्र

उपलब्धियां	1951	1991	आज की तिथि के अनुसार शेष समस्याएं
साक्षरता	18.3%	52%	
साक्षरों की संख्या	52 मि०	350 मि०	निरक्षरों की संख्या 197 मि०
निम्न प्राथमिक विद्यालयों की संख्या	2.10 लाख	5.75 लाख	विद्यालय जाने से वंचित प्राथमिक विद्यालय में भरती बच्चों की संख्या 35 मि०
प्राथमिक विद्यालयों में नामांकन कराने वाले बच्चों की संख्या	19.2 मि०	98 मि०	प्राथमिक स्तर पर पढ़ाई बीच में छोड़ने वाले बच्चों की दर 40%
उच्च प्राथमिक विद्यालयों की संख्या	13,600	1.61 लाख	सरकारी/स्थानीय निकाय क्षेत्र में उन विद्यालयों की संख्या, जिनकी गुणवत्ता में उन्नयन की आवश्यकता है 5 लाख
उच्च प्राथमिक विद्यालयों में नामांकन कराने वाले बच्चों की संख्या	3.12 मि०	34 मि०	पांच वर्षों तक स्कूली शिक्षा ग्रहण करने के बावजूद गणित, लिखने-पढ़ने तथा बोध कौशल की स्थिति निम्न रही।
माध्यमिक विद्यालयों की संख्या	7,416	90,000	
माध्यमिक विद्यालयों में नामांकन कराने वाले बच्चों की संख्या	1.45 मि०	22 मि०	निम्न स्तर के विद्यालयों का होना—जल-आपूर्ति तथा सफाई सुविधाओं की कमी, छात्रों के लिए बैठने के स्थान की कमी, प्रशिक्षित शिक्षकों तथा शिक्षण-प्रशिक्षण सामग्रियों का अभाव
तृतीयक श्रेणी की संस्थाओं की संख्या	...	8000	
तृतीयक श्रेणी की संस्थाओं में नामांकन कराने वाले छात्रों की संख्या	5.60 लाख	5 मि०	

शिक्षक

शिक्षकों की उपलब्धता शिक्षा की बुनियादी आवश्यकता है। कुल प्राथमिक विद्यालयों में से एक शिक्षक वाले विद्यालय 28 प्रतिशत हैं और 32 प्रतिशत विद्यालयों में केवल दो शिक्षक हैं। पर्याप्त संख्या में शिक्षक न होने से शिक्षक-छात्र अनुपात भी प्रभावित होता है। यह अनुपात बढ़ रहा है; 30 से 35 छात्रों पर एक शिक्षक के मानदंड की तुलना में इस समय औसतन 42 छात्रों पर एक शिक्षक है। इससे छात्रों पर ध्यान दिये जाने में कमी आती है और परिणामत: इसका शिक्षा की गुणवत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। शिक्षकों की अपर्याप्तता को नीचे तालिका में दर्शाया गया है:

तालिका 8.5

अध्यापकों की संख्या के अनुसार प्राथमिक स्कूलों की स्थिति

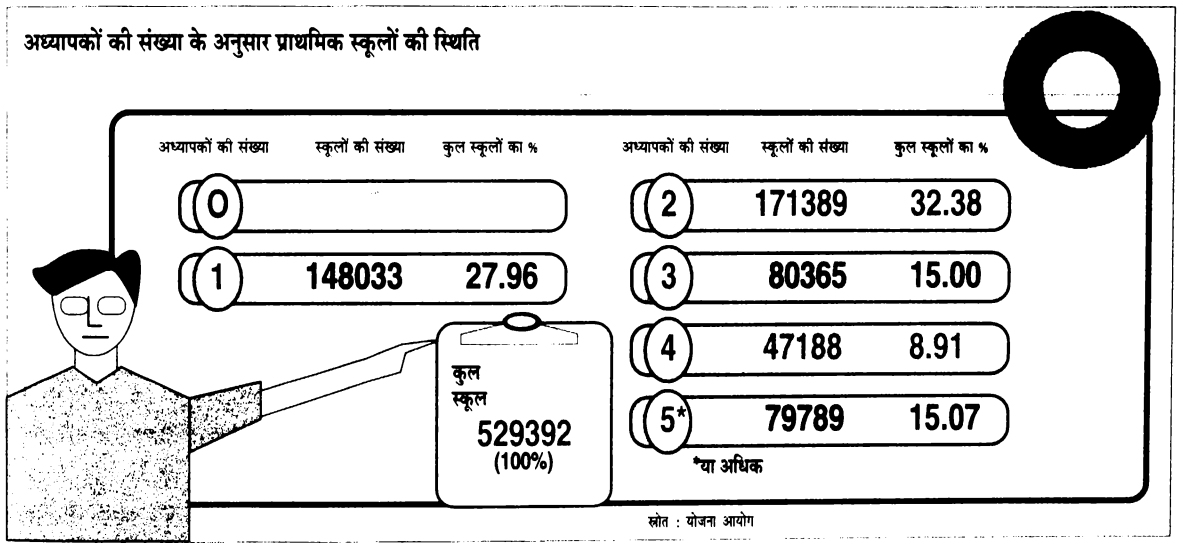

स्रोत : योजना आयोग

शिक्षकों की अपर्याप्तता की समस्या उनके बहुत जल्दी-जल्दी स्थानान्तरण किए जाने से और बढ़ जाती है। कई कारणों से स्थानान्तरण के विषय में राज्य स्तर पर शैक्षणिक प्रशासन शिक्षक समुदाय के अत्यधिक दबाव में रहता है। इनमें प्रमुख कारण ग्रामीण क्षेत्रों में पर्याप्त भौतिक एवम् जीवन बसर की सुख-सुविधाओं का अभाव है। घर के नज़दीक तथा शहरी और अर्द्धशहरी स्थानों पर स्थानान्तरण के लिये अधिकांश दबाव रहता है।

अन्तर्राज्यीय असमानताएं

बुनियादी शिक्षा का स्तर समग्र शैक्षणिक प्रगति का द्योतक है। बुनियादी स्तरों के बिना उच्च स्तरों (द्वितीयक और तृतीयक स्तरों) पर शिक्षा सम्भाव्य नहीं है। प्राथमिक और माध्यमिक स्तरों पर नामांकन के संबंध में अन्तर्राज्यीय विषमता, राष्ट्रीय औसत को संदर्भ बिन्दु मानते हुए निम्नलिखित चार्ट में प्रस्तुत की गई है:

प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा–1987

जनसंख्या के प्रति एक सौ हजार पर दाखिला

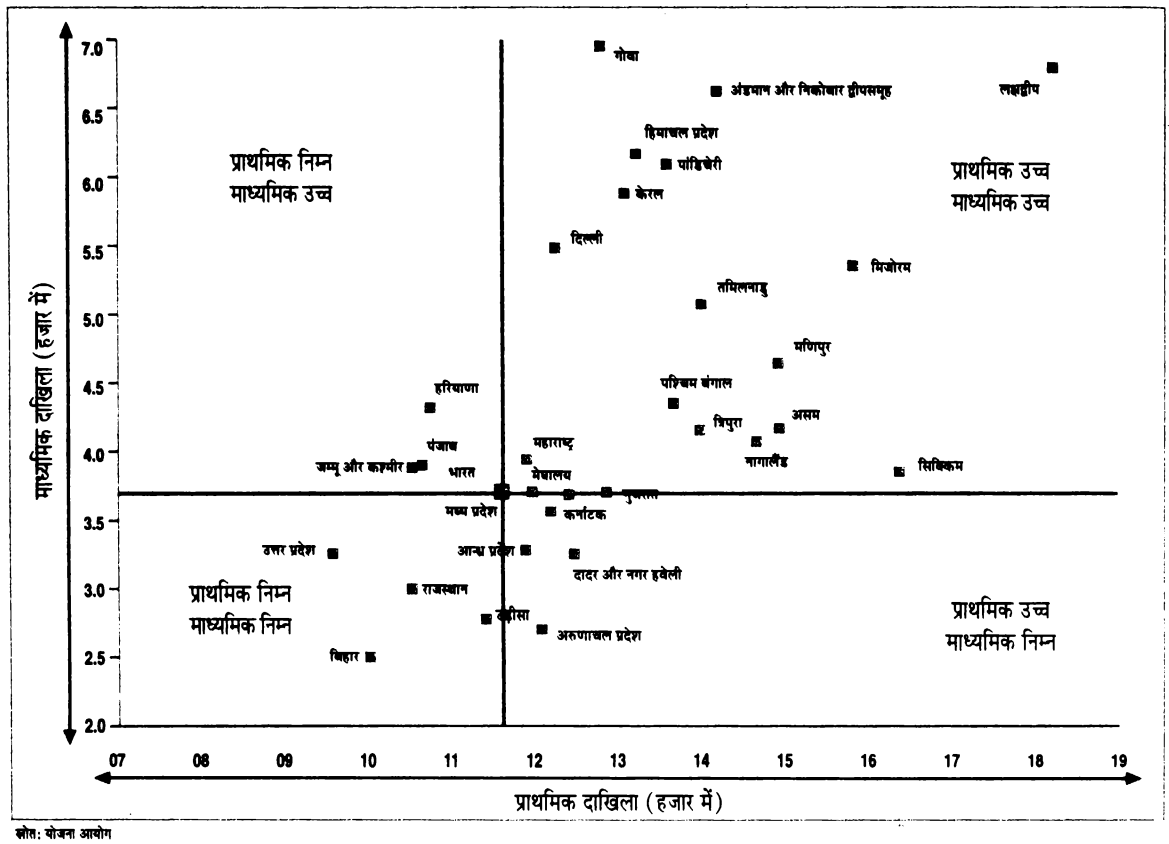

स्रोत: योजना आयोग

प्रोत्साहन

मांग-पक्ष प्रबन्धन की (शिक्षा की मांग को बढ़ाने के लिये) व्यवस्था करने में कई राज्यों में भिन्न-भिन्न प्रकार की प्रोत्साहन योजनाएं हैं। वे छात्रवृत्तियों, नि:शुल्क पुस्तकों, नि:शुल्क लेखन सामग्री, दोपहर का नि:शुल्क भोजन, उपस्थिति भत्ता, इत्यादि का प्रावधान करती हैं। इन योजनाओं के कार्यान्वयन के बारे में लगभग सभी स्थानों से शिकायतें मिलती रहती हैं। इनके बेहतरी के लिये इनके कार्यान्वयन के तरीके और उनकी लाभप्रदता की जांच की आवश्यकता है।

संसाधन

विद्यालयों में पहले से ही दाखिल (लगभग 7 करोड़) बच्चों के आहार प्रबन्ध के लिये, इसका सीमा क्षेत्र बढ़ाने के लिये जिससे कि विद्यालय न जाने वाले बच्चों को विद्यालय जाने के लिये प्रोत्साहित किया जा सके और विद्यालयों की गतिविधियों की गुणवत्ता बढ़ाने के लिये संसाधन जुटाने की आवश्यकता है। वर्ष 2007 ई. तक संसाधनों की अपेक्षित आवश्यकता लगभग 2000 करोड़ रुपये है, इनकी उपलब्धता केवल 1600 करोड़ रुपये है और इस प्रकार 400 करोड़ रुपये का अन्तर बैठता है। यह पाया गया है कि यदि शिक्षा पर परिव्यय को वर्तमान स्तर, 3.7 प्रतिशत से बढ़ा कर 6 प्रतिशत कर दिया जाये तो संसाधनों के इस अन्तर को पाटा जा सकता है। इस उद्देश्य के लिये, केन्द्र से राज्य सरकारों को (विशेषकर आन्ध्र प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान, उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल) अतिरिक्त संसाधनों के अंतरण के लिये विशेष उपाय करने होंगे। राज्यों को प्राथमिक शिक्षा के लिये आवंटन के वर्तमान स्तर में भी वृद्धि करनी होगी। प्राथमिक शिक्षा पर बढ़े हुए और लक्षित जोर देने से उच्च प्राथमिक स्तर पर भी शैक्षणिक आवश्यकताएं बढ़ेंगी। इसके लिये अलग से प्रावधान करना होगा।

भारत, पूर्व और दक्षिण पूर्व एशिया

प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में भारत सुदूर पूर्व और दक्षिण पूर्व एशिया के कतिपय अन्य देशों (कोरिया गणराज्य, चीन, मलेशिया और इंडोनेशिया) से काफी पिछड़ा हुआ है। विश्व बैंक के अनुसार भारत कोरिया गणराज्य से केवल तीन दशकों बाद और मलेशिया तथा इंडोनेशिया से दो दशकों के बाद सबको प्राथमिक शिक्षा देने के लक्ष्य को पा सकेगा।

प्राथमिक निवल दाखिला

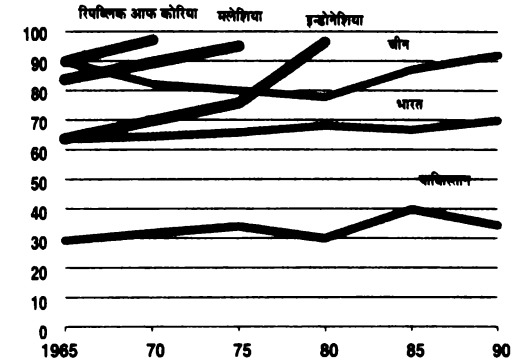

भारत, चीन और पाकिस्तान देशों द्वारा 95 प्रतिशत प्राथमिक निवल दाखिले के संबंध में की गई प्रगति

नोट: भारत के 1985 के आंकड़े पांचवें अखिल भारतीय शिक्षा सर्वेक्षण (एफ.ए.आई.ई.एस.) तथा 1990 के आंकड़े विश्व बैंक कर्मचारी प्राक्कलन से प्राप्त

स्रोत: लौकहीड एण्ड वर्सपुअर 1991, एन.सी.ई.आर.टी. 1992 बी, आई.आई.पी.एस. 1995, वर्ल्ड बैंक 1995 सी, वारविक एण्ड रीमर्स 1995

शिक्षा और कार्य जगत

विद्यालय स्तर पर व्यावसायिक शिक्षा

शिक्षा को रोजगार संगत बनाना काफी वर्षों 1854 में वुड्स डिस्पैच, जिन्होंने व्यावसायिक शिक्षा पर बल दिया था, के समय से ही चिंता की बात रही है। वर्द्धा समिति (1937) ने बच्चों के लिए "शिल्प" शिक्षा को शिक्षा प्रक्रिया का भाग बनाने का आह्वान किया था। मुदालियार समिति (1952-53) ने माध्यमिक शिक्षा के व्यावसायीकरण की सिफारिश की थी। कोठारी आयोग (1964-86) ने भी इस पर बल दिया था। राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 से 1995 तक जमा दो स्तर पर 25 प्रतिशत छात्रों को व्यावसायिक शिक्षा की ओर मोड़ने का विशेष लक्ष्य रखा गया था। बाद में इस लक्ष्य की प्राप्ति का समय बढ़ाकर सन् 2000 तक कर दिया गया था। कार्यक्रम के कार्यान्वयन के लिए राष्ट्रीय, क्षेत्रीय, राज्य और जिला स्तरों पर प्रबंधकीय ढांचा बनाने की सिफारिश की गई थी। ये ढांचे भी स्थापित हो गए हैं, यद्यपि सभी राज्यों में स्थापित नहीं हुए हैं। वर्ष 1992-93 से इस योजना को लागू करने के लिए भारत सरकार द्वारा लगभग 300 करोड़ रुपए जारी किए जा चुके हैं। व्यावसायिक पाठ्यक्रम तैयार करने और शुरू करने, पाठ्यचर्या की स्थापना, अध्यापकों की व्यवस्था और प्रशिक्षण, अध्ययन सामग्री की तैयारी, औद्योगिक उद्देश्यों में प्रशिक्षण प्रशिक्षुओं से सम्पर्क बनाने और लोक सेवाओं में भर्ती के लिए काफी कार्य किया गया है। परन्तु अब तक जो कार्य हुआ है वह यह है कि विद्यालयों में (1995-96 तक) 9.35 लाख छात्रों को प्रवेश देने की "क्षमता सृजित" हो गई है। यह 11.5 प्रतिशत है जबकि लक्ष्य सन् 2000 तक 25 प्रतिशत छात्रों को व्यावसायिक शिक्षा की ओर मोड़ने का है।

विद्यालयों में व्यावसायिक शिक्षा को निम्नलिखित अनेक कारणों से धक्का पहुंचा है:

- कमजोर प्रबंध ढांचे
- विद्यालयों को धनराशि जारी करने में विलम्ब
- विद्यालयों में वास्तविक सुविधाओं की कमी
- व्यावसायिक अध्यापकों की कमी
- उद्योगों के साथ पर्याप्त सम्पर्क बनाने में कमी
- पाठ्यचर्या का अभाव
- प्रशिक्षुओं के लिए भी नियोजन की कमी

वर्ष 1992 में पुनरीक्षित राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 के अनुसार यू. जी. सी. द्वारा वर्ष 1994-95 में व्यावसायीकरण योजना को प्रथम डिग्री स्तर पर भी आरंभ किया गया। व्यावसायिक पाठ्यक्रमों को शुरू करने के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा 700 से भी अधिक संस्थानों का पता लगाया गया है। इस योजना को चलाने के लिए 35 विषयों का भी पता लगाया गया है।

तथापि, मूल समस्या यह है कि व्यावसायिक शिक्षा में विद्यार्थियों अथवा उनके माता-पिता और नियोक्ताओं का विश्वास नहीं है। विद्यार्थियों और माता-पिताओं के विचार से यह गरीब लोगों के लिए है। उन्हें ऐसा विश्वास नहीं है कि व्यावसायिक पाठ्यक्रमों से प्राप्त सक्षमता और कुशलता से कोई लाभप्रद रोजगार मिल जायेगा। नियोक्ताओं का यह विश्वास है कि इन व्यावसायिक स्नातकों में पर्याप्त व्यावहारिक निपुणता का अभाव है।

शिल्पकार प्रशिक्षण

वर्ष 1950 में शुरू की गई राष्ट्रीय व्यावसायिक प्रशिक्षण प्रणाली के अंतर्गत शिल्पकार प्रशिक्षण योजना को क्रियान्वित किया जा रहा है। इस योजना का उद्देश्य देश की कुशल जनशक्ति की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए विभिन्न व्यावसायिक व्यवसायों में प्रशिक्षण देना है। वर्तमान में 42 इंजीनियरिंग और 18 गैर-इंजीनियरिंग व्यवसायों में ऐसा प्रशिक्षण दिया जा रहा है। सामान्यतया, इंजीनियरिंग व्यवसाय तक केवल उन लोगों की जिन्होंने माध्यमिक शिक्षा पूरी की हो और गैर-इंजीनियरिंग व्यवसायों तक उन लोगों की, जिन्होंने प्रारंभिक शिक्षा पूरी कर ली हो, पहुंच हो सकती है। सरकारी और गैर-सरकारी तीन हजार से भी अधिक औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान और औद्योगिक प्रशिक्षण केन्द्र हैं जिनकी स्थान क्षमता 4.73 लाख है। राष्ट्रीय व्यावसायिक प्रशिक्षण परिषद अखिल भारत के आधार पर व्यवसाय परीक्षण करती है और राष्ट्रीय व्यापार प्रमाणपत्र जारी करती है। अभी भी पर्याप्त संख्या में औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान हैं जिन्हें समुचित बुनियादी सुविधाओं के अभाव में राष्ट्रीय/व्यावसायिक प्रशिक्षण परिषद द्वारा मान्यता प्रदान नहीं की गई है।

वर्तमान रोजमर्रा के कार्य-बाजार की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए इन संस्थानों द्वारा प्रस्तावित कुछ व्यावसायिक पाठ्यक्रमों को रोजगार से संगत पाठ्यक्रमों द्वारा बदले जाने की आवश्यकता है।

नियोक्ता प्राय: यह महसूस करते हैं कि औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों के व्यावसायिक स्नातकों के पास पर्याप्त व्यावहारिक ज्ञान नहीं होता। औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों के व्यावसायिक पाठ्यक्रमों के लिए पाठ चर्चा में सुधार किये जाने की आवश्यकता है ताकि निपुणता का स्तर कार्य की आवश्यकताओं के अनुरूप हो सके।

मोटर उद्योग निगम जैसे निजी उद्यम भी हैं जो अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप व्यावसायिक पाठ्यक्रम चलाते हैं। ऐसे प्रशिक्षुओं की बाजार में अत्यधिक मांग होती है। उद्योगों के ऐसे प्रयासों को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।

आई.टी.आई. स्नातकों की निम्न श्रम बाजार मांग का सूचकांक यह है कि प्रशिक्षु अधिनियम के अंतर्गत प्रशिक्षुओं की नियुक्ति के लिए 2.25 लाख सीटों में से वस्तुत: केवल 1.50 लाख सीटें ही भरी जाती हैं।

उच्च शिक्षा

वर्ष 1950-51 से उच्च शिक्षा का विस्तार हुआ है। विश्वविद्यालयों की संख्या जो 1950-51 में 50 थी 1995-96 में बढ़कर 207 हो गई है। इसी अवधि के दौरान कालेजों की संख्या 750 से बढ़कर 9278 हो गई है और विद्यार्थियों की संख्या 2.63 लाख से बढ़कर 64.26 लाख हो गई है। संकाय-वार उच्च शिक्षा के लिए विद्यार्थियों का नामांकन कला विषय के लिए लगभग 40%, वाणिज्य के लिए 22%, विज्ञान के लिए 20%, इंजीनियरिंग के लिए 5%, विधिशास्त्र के लिए 5%, आयुर्विज्ञान के लिए 3%, कृषि और शेष अन्य विषयों के लिए 1% है। यह मिश्रित नामांकन सामान्य शिक्षा से व्यावसायिक शिक्षा की ओर परिवर्तन की आवश्यकता का सूचक है।

उच्च शिक्षा के लिए बाधक कुछ समस्याएं निम्नलिखित हैं:—

- विस्तार के अनुरूप गुणवत्ता/मानकों की कमी
- विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की सहायता प्राप्त करने के लिए बुनियादी सुविधाओं की कमी
- संसाधनों की कमी
- प्रथम डिग्री स्तर के व्यावसायिक पाठ्यक्रमों के लिए विद्यार्थियों की ओर से कम आकर्षण
- पाठ्यक्रमों और पाठ्यचर्या में सुधार करने और बुनियादी सुविधाओं के सृजन के लिए संसाधनों की कमी, सम्पूर्ण योजना व्यय में उच्च शिक्षा का हिस्सा प्राथमिक शिक्षा के लिए 47% तथा प्रौढ़ शिक्षा के लिए 18% की तुलना में केवल 8% है, चौथी योजना के दौरान उच्च शिक्षा के लिए आवंटन योजना व्यय का अधिकाधिक 25% था, इन वर्षों में योजना आवंटनों का विपयन निम्न स्तरों विशेषरूप से प्राथमिक शिक्षा की ओर करना पड़ा था, जबकि प्राथमिक शिक्षा के लिए अधिक आवंटन दोषपूर्ण नहीं हो सकता है, उच्च शिक्षा के विस्तार के अनुरूप अधिक धनराशि के आवंटन की आवश्यकता है
- प्रशिक्षित अध्यापकों की कमी
- राज्यों द्वारा कालेजों को स्वायत्तता का दर्जा दिए जाने की अनिच्छा

तकनीकी शिक्षा

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 का अनुपालन करते हुए तकनीकी शिक्षा में सुधार के लिए 15 योजनाएं तैयार की गई हैं और उनका कार्यान्वयन किया जा रहा है। इन योजनाओं के लिए आठवीं योजना में 365 करोड़ रु. का परिव्यय रखा गया था।

इन योजनाओं का आधारभूत उद्देश्य अप्रचलित को समाप्त करना और तकनीकी शिक्षा का पुनर्गठन करना है। अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद (ए.आई.सी.टी.ई.) को इस संदर्भ में सांविधिक दर्जा प्रदान किया गया है। परिषद् का मुख्य उद्देश्य देश में तकनीकी शिक्षा का स्तर सुनिश्चित करना है। इस उद्देश्य के लिए तकनीकी शिक्षा पाठ्यक्रमों और संस्थानों को मान्यता प्रदान करने तथा प्रत्यापन के लिए परिषद को विधिक शक्तियां प्रदत्त हैं।

इस सब के बावजूद तकनीकी शिक्षा पद्धति की अनेक कमियों को दूर करने के लिए उन पर निरंतर ध्यान देने की आवश्यकता है, इनमें से कुछ मुख्य कमियां निम्न प्रकार हैं:-

- उद्योग की आवश्यकताओं और परम्परागत पाठ्यचर्या के बीच असंतुलन जिसके परिणामस्वरूप स्नातकों में बेरोजगारी और अर्द्ध-रोजगार को बढ़ावा मिलता है।
- उच्च अपव्यय अनुपात—डिग्री स्तर पर 20%, स्नातकोत्तर स्तर पर 35%
- प्रतिभा का पलायन (प्रमाणित आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं हालांकि अनुमान 20% के आसपास है)
- संकाय की गंभीर कमी—जो 25% से 40% तक है
- पर्याप्त बुनियादी सुविधाओं की कमी
- बजट सहायता का निम्न अनुपात और वित्तीय आदानों का कम उपयोग जिसके परिणामस्वरूप निवेशों का अपव्यय हुआ
- अप्रभावी उद्योग शिक्षा संयोजन

तकनीकी शिक्षा के क्षेत्र में निम्न कार्यक्षमता से हमारे आधुनिक समाज में रूपान्तरण और 21वीं सदी की तकनीकी तथा प्रौद्योगिकी चुनौतियों का सामना करने के मामले में गंभीर परिणाम सामने आये हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की तकनीकी शिक्षा पद्धति के विकास के लिए हम संसाधन कहां से जुटाएंगे। विशेषकर इस बात को ध्यान में रखते हुए कि प्राथमिक शिक्षा के लिए संसाधनों के आवंटन की प्राथमिकता अर्थव्यवस्था और समानता दोनों आधारों पर अधिक हो।

तालिका 8.6

महिलाओं के शिक्षा स्तर को पुरुषों की तुलना में दर्शाने वाला विवरण

	पुरुष	महिलाएं
महिला साक्षरता	64.13%	39.29%
दाखिला अनुपात		
पहली से पांचवीं कक्षा	114.5%	93.3%
छठी से आठवीं कक्षा	79.5%	55.0%
नौवीं से दसवीं कक्षा	41.5%	23.3%
+ 2 स्तर	27.50%	14.00%
स्नातक तथा उससे आगे@	5.29%	2.91%
इंजीनियरी और प्रौद्योगिकी@	0.44%	0.04%
अन्य व्यावसायिक पाठ्यक्रम@	1.00%	0.33%
छात्रों की सं.		
कक्षाएं नौवीं-दसवीं में	161.07लाख	87.81 लाख
+ 2 कक्षा में	38.03 लाख	19.24 लाख
स्नातक स्तर के पाठ्यक्रम		
कला	14.18 लाख	10.18 लाख
विज्ञान	6.30 लाख	3.46 लाख
वाणिज्य	7.92 लाख	3.30 लाख
इंजीनियरिंग	2.71 लाख	45,180
मेडिकल	72,339	38,111
पोलिटेक्निक	2.65 लाख	55,266
व्यावसायिक	4.63 लाख	57,929 (आई. टी. आईस आदि)
स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम		
कला	1.64 लाख	1.04 लाख
विज्ञान	63,235	35,789
वाणिज्य	60,635	18,377
डाक्टरेट	29,876	11,466

*उत्तरोत्तर उच्च शिक्षा में लड़कियों की संख्या में समानुपातिक कमी।
* शिक्षा के विभिन्न स्तरों में लड़कियों की संख्या लड़कों की संख्या की तुलना में कम है।
@ये आंकड़े वर्ष 1993-94 से संबंधित है।
स्रोत : चयनित शैक्षिक आंकड़े, 1995-96, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, शिक्षा विभाग।

महिला शिक्षा

महिलाओं को शिक्षित करने के महत्व पर जितना भी जोर दिया जाये वह कम है। महिला केन्द्रित समाज मातृ केन्द्रित समाज भी होगा। बच्चों को भावी जीवन के लिये तैयार करने में माताएं महत्वपूर्ण तथा मुख्य भूमिका निभाती हैं अतएव महिलाओं को शिक्षित करने से कई प्रकार के लाभ होते हैं—बच्चों की देखभाल, पोषण, विलंबित विवाह, कम प्रजनन दर, उनके स्वयं के रोजगार से परिवार की आय-स्तर में वृद्धि और बच्चों की शिक्षा में भागीदारी, इत्यादि। लेकिन वर्षों से पुरुष-महिला में अत्यधिक विषमताएं रही हैं, चाहे यह साक्षरता के क्षेत्र में हो या विभिन्न स्तरों पर शिक्षा के लिये नामांकन या रोजगार-सम्बद्ध व्यावसायिक और तकनीकी शिक्षा तक पहुंच की बात हो।

यद्यपि महिलाओं की शिक्षा में बच्चों का पालन-पोषण घरेलू काम-काज अर्थात् पानी, ईंधन, चारा, आदि संग्रह करना, घर के नजदीक विद्यालयों का न होना, महिला शिक्षिकाओं की कमी, घर के बाहर छेड़छाड़ का भय, इत्यादि अनेक कारक बाधक हैं, तथापि अभी भी लिंग-भेद संबंधी प्रबल सामाजिक मानसिकता इसका महत्वपूर्ण कारण है। इस स्थिति में परिवर्तन समाज में परिवर्तन के अतिरिक्त अन्य छोटे उपायों से संभव नहीं है।

अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की शिक्षा

सभी स्तरों पर अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के शिक्षा का स्तर गैर अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों से काफी कम है। अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों में से अनुसूचित जनजातियों का स्तर अपेक्षाकृत कम है।

तालिका 8.7

गैर-अ.जा./अ.ज.जा. की तुलना में अ.जा./ अ.ज.जा. का शिक्षा संबंधी विवरण

	गैर-अ.जा./अ.ज.जा.	अ.जा.	अ.ज.जा.
साक्षरता	52.21%	37.41%	29.60%
दाखिले का अनुपात			
पहली से पांचवीं कक्षा तक	104.3%	111.9%	113.0%
छठी से आठवीं कक्षा तक	67.6%	61.3%	50.0%
छात्रों की संख्या			
नौवीं और दसवीं कक्षा में	167.79 लाख	21.29 लाख	8.50 लाख
+ 2 कक्षाओं में	57.27 लाख	6.57 लाख	2.38 लाख
स्नातक पाठ्यक्रम			
कला	24.35 लाख	2.73 लाख	1.13 लाख
विज्ञान	9.77 लाख	70,285	14,304
वाणिज्य	11.22 लाख	60,084	17,574
इंजीनियरिंग	3.17 लाख	21,084	5,650
मेडिकल	1.10 लाख	9,961	2,989
पोलिटेकनीक	3.20 लाख	36,392	11,072
वोकेशनल	4.10 लाख	50,381	16,945
स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम			
कला	2.69 लाख	36,302	9,045
विज्ञान	99,024	7,066	1,357
वाणिज्य	79,012	5,987	1,799
डॉक्टरल	41,342	1,514	445

स्रोत : चयनित शैक्षिक आंकड़े, 1995-96, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, शिक्षा विभाग।

जैसा कि महिलाओं के मामले में है, शिक्षा का जितना ऊंचा स्तर होगा, इन श्रेणियों की भागीदारी उतनी ही कम होगी। इससे उनकी शोचनीय आर्थिक स्थिति का पता चलता है। वास्तव में, देश में, वे सबसे निर्धन श्रेणियों में हैं तथा वे भूमिहीन हैं और कार्य-कुशल नहीं हैं। उनकी इस स्थिति के कारण उनकी रोजगार संबंधी अवसर लागत बहुत अधिक है। वास्तव में अ.जा. और अ.ज.जा. को मैट्रिक से पूर्व और पश्चात् की कक्षाओं में वजीफा

देने के लिये बजट में भारी धनराशि आवंटित की जाती है। परन्तु, उनकी उपरोक्त आर्थिक स्थिति तथा उसके परिणामस्वरूप उनके द्वारा स्वयं ही शिक्षा में बिल्कुल ही भागीदारी न करने या कम भागीदारी करने के कारण वजीफे के लिये आवंटित धनराशि सीमित हो जाती है, क्योंकि आवंटन हमेशा उपलब्ध किए गए संसाधनों के उपयोग के स्तर के संदर्भ में ही किया जाता है। इसका अभिप्राय यह नहीं कि केवल वजीफे ही शैक्षिक भागीदारी को प्रोत्साहन देने का एकमात्र माध्यम हैं। इसमें अन्तर्निहित जिस मुद्दे पर अधिक ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है, वह है समूचे अनुकूल सामाजिक-आर्थिक वातावरण का निर्माण।

शिक्षा क्षेत्र के लिए संसाधन

सिद्धान्त रूप में, शिक्षा क्षेत्र में सकल घरेलू उत्पाद के 6 प्रतिशत का निवेश करने का निर्णय पहले ही ले लिया गया है। स्वाभाविक रूप से बजट आबंटन वर्तमान स्तर से अधिक होंगे तथापि यह मानना सही नहीं होगा कि आबंटन बहुत अधिक होंगे क्योंकि प्राथमिकता वाले क्षेत्रों के लिए भी बजट निधियों संबंधी मांगें और भी जोरदार और अधिक हैं। शिक्षा क्षेत्र को आन्तरिक संसाधनों से धन जुटाना चाहिए तथा ऐसा वह कर भी सकता है। इस दिशा में, कतिपय प्रयास पहले ही किए जा चुके हैं। भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थानों (आई.आई.टी.), भारतीय प्रबंधन संस्थानों (आई.आई.एम.) और भारतीय विज्ञान संस्थानों ने शिक्षा शुल्क पहले ही बढ़ा दिए हैं। अब भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (आई.आई.टी.) को औद्योगिक सहयोग और अनुसंधान परियोजनाओं से धन जुटाने तथा संस्थानिक विकास के लिए उसके उपयोग की अनुमति दी गई है जिसमें सरकार का उतना ही अंशदान होगा। प्राप्त जानकारी के अनुसार, भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान ने पहले ही लगभग 200 करोड़ रुपये जुटा लिए हैं।

परन्तु, आम उच्च शिक्षा के क्षेत्र में शुल्क में कोई सार्थक वृद्धि नहीं की गई है। जबकि काफी विद्यार्थी सम्पन्न परिवार के होते हैं तथा वे शुल्क भुगतान करने में सक्षम हैं तथा इसके लिए इच्छुक भी होते हैं। शुल्क में वृद्धि करके अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग के लोगों के संरक्षणार्थ हम छात्रवृत्तियां भी दे सकते हैं। परन्तु शुल्क में वृद्धि का मामला हमेशा संवेदनशील रहा है तथा इस कारण आन्दोलन भी चलाए गए हैं। तब क्या हम उच्च शिक्षा शुल्क पर्याप्त रूप से बढ़ा सकते हैं? क्या इसके लिये हमारे पास पर्याप्त राजनीतिक इच्छाशक्ति है और क्या हम इसके प्रति वचनबद्ध हैं? अन्य देशों में ऐसी योजनाएं चलायी जाती हैं जिनके अंतर्गत शिक्षा के लिए ऋण दिये जाते हैं और जब कोई स्नातक रोजगार पा लेता है तो उससे ऋण वसूल लिया जाता है। हमारे पास भी ऐसी योजनाएं हैं। परन्तु यहां दिये जाने वाले ऋण मामलों की संख्या अपेक्षाकृत कम है जो लगभग 50,000 है तथा धनराशि लगभग 15 लाख है। जाहिर है, कि ऐसी योजनाएं निम्न स्तर पर चलायी जाती हैं। ऋण के कम आबंटन के कारणों की जांच की जानी वांछनीय होगी। ऋण योजनाओं की सफलता भी उन स्नातकों की रोजगार पाने की स्थिति पर निर्भर करती है और यहां शैक्षणिक पाठ्यक्रमों के रोजगार-परक होने संबंधी मामले उठते हैं। अत: आंतरिक संसाधन जुटाने की दृष्टि से भी शिक्षा को रोजगार-सम्मत बनाने संबंधी प्रश्न भी प्रासंगिक हो जाता है। हमें अर्थक्षम और व्यवहार्य बैंक ऋण योजनाओं की विधियां तैयार करनी होंगी।

9

रोजगार

गरीबी उन्मूलन हेतु रोजगार को सर्वोत्तम उपचारात्मक उपाय माना गया था। शुरू की पंचवर्षीय योजनाओं में वृहत् आर्थिक कारकों, कृषि विकास तथा औद्योगिक क्षेत्रों पर ध्यान केन्द्रित किया गया था, जिनसे रोजगार के अधिक अवसर पैदा होने की अपेक्षा थी। छठी योजना से आगे विशिष्ट लाभार्थियों तथा रोजगारोन्मुख कार्यक्रमों पर ध्यान दिया गया है। नौवीं योजना में अनुकूल पर्यावरण, कौशल, प्रौद्योगिकियां, बाजार-सृजन और आर्थिक विकास की उच्च दर को सुनिश्चित किए जाने की बातों पर ध्यान रखा गया है, ताकि रोजगार के अवसरों में वृद्धि हो सके। समस्या का असली कारण बढ़ती जनसंख्या की वजह से श्रमिक बल के वृद्धि दर की तुलना में रोजगार के अवसरों में कम वृद्धि होना है। अन्य दक्षिण पूर्व एशियाई देशों में उनकी जनसंख्या वृद्धि की तुलना में आर्थिक विकास की दर अधिक रही है और साथ ही उन देशों में श्रमिकों की बड़ी संख्या को कृषि क्षेत्र से हटा कर विनिर्माण तथा सेवा क्षेत्रों में लगाया गया है। भारत में 60 प्रतिशत से अधिक रोजगार के अवसर अभी भी कृषि क्षेत्र में उपलब्ध होते हैं तथा अन्य क्षेत्रों में इसकी विकास दर बहुत कम है। दूसरी बात यह है कि 90 प्रतिशत रोजगार अभी भी असंगठित क्षेत्र में ही हैं। श्रमिक बल में उत्तरोत्तर वृद्धि से बेरोजगारों की संख्या में वृद्धि हो रही है और इसके श्रमिक बल का 6 प्रतिशत होने का अनुमान लगाया गया है। महिलाओं, शिक्षित व्यक्तियों तथा शहरी जनसंख्या के बीच बेरोजगारी की समस्या अधिक है।

अतीत

भारत में विकास नियोजन का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य रोजगार के अवसरों में वृद्धि करना है। वर्षों से रोजगार में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। परन्तु, जनसंख्या और श्रम-शक्ति में सापेक्ष वृद्धि के अधिक होने के कारण एक योजना से दूसरी योजना तक बेरोजगारों की संख्या में वृद्धि होती रही है। निर्धनता और बेरोजगारी में धीरे-धीरे कमी करना पंचवर्षीय योजनाओं का एक मुख्य लक्ष्य रहा है। यह महसूस किया गया है कि निर्धनता के उन्मूलन में, असमानता में कमी करने और आर्थिक विकास की समुचित रूप से तेज रफ्तार बनाये रखने के लिए उपलब्ध मानव संसाधनों का व्यापक और कुशलतापूर्वक उपयोग ही सर्वोत्तम प्रभावी उपाय है।

बाक्स 9.1 : पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से रोजगार नीति

प्रथम योजना

ग्रामीण क्षेत्र पर जोर
सिंचाई का विस्तार और सघन वृद्धि की शुरूआत
विद्यमान बड़े उद्योगों का विस्तार, नये उद्योगों की स्थापना, लघु उद्योगों का विकास

दूसरी योजना

विद्यमान बेरोजगारों के लिये रोजगार सृजन, अर्ध-रोजगार प्राप्त व्यक्तियों के लिये काम के अधिक अवसर।
शिक्षा और प्रशिक्षण सुविधाओं के बीच घनिष्ठ संपर्क की स्थापना और शिक्षित बेरोजगारी का मुकाबला करने के लिये अर्थव्यवस्था की भावी आवश्यकतायें।

तीसरी योजना

रोजगार के प्रभावों का व्यापक और समान विस्तार, ग्रामीण औद्योगीकरण और ग्रामीण-कार्य कार्यक्रम; उद्योगों में तकनीक का चुनाव

चौथी योजना

श्रम बहुल योजनाओं-लघु सिंचाई, भू-संरक्षण "आयाकट" विकास, गैर-सरकारी पक्षों द्वारा मकानों का निर्माण, परिवहन संपर्क, ग्रामीण विद्युतीकरण के माध्यम से ग्रामीण रोजगार में वृद्धि।

छोटे किसानों और ग्रामीण कारीगरों के लिये विशेष कार्यक्रम

उद्योगों और खनिजों, परिवहन, संचार और विद्युत क्षेत्र में सरकारी क्षेत्र द्वारा निवेश।

पांचवीं योजना

आधुनिक प्रौद्योगिकी द्वारा कृषि उत्पादकता में वृद्धि। भूमि सुधार और उत्पादक लघु कृषक आधार का सृजन स्वरोजगार, रेशम कीट पालन, हथकरघा कालीन बुनाई आदि पर जोर।

छठी योजना

एन.आर.ई.पी.आर.एल.ई.जी.पी., आई.आर.डी.पी.टी., आर.वाई.एस.ई.एम. आदि जैसे लाभदायक और रोजगारोन्मुख ग्रामीण विकास कार्यक्रम।

शिक्षित बेरोजगारी से निपटने के लिये शिक्षा, रोजगार और विकास के बीच संपर्क बनाना।

सातवीं योजना

श्रम शक्ति की तुलना में रोजगार की तेज विकास दर।

कृषि मूल ढांचे, सघन कृषि और लक्षित ग्रामीण विकास कार्यक्रम पर निरंतर जोर।

गैर-सरकारी पक्षों द्वारा मकान निर्माण में वृद्धि, विशेषरूप से संस्थागत वित्त के माध्यम से।

आठवीं योजना

2000 ई. तक पूर्ण रोजगार

आर्थिक विकास में वृद्धि

रोजगारोन्मुख विकास ढांचा

विशेषरूप से महिलाओं के लिये विशेष रोजगार कार्यक्रम मानव पूंजी संसाधनों का उत्पादक उपयोग

कृषि का विविधिकरण

ग्रामीण गैर-फार्म क्षेत्र का विकास

सेवा क्षेत्र का तेजी से विकास

शिक्षा, प्रशिक्षण और उद्यम संबंधी विकास

नौवीं योजना का दृष्टिकोण (एपरोच)

विकास प्रक्रिया से ही उत्पादक रोजगार का सृजन।

कौशल-विकास और तकनीकी स्तर में वृद्धि।

परम्परागत व्यवसायों में लगे लोगों के लिये विपणन संबंधी सुविधाओं का सृजन।

राष्ट्रीय रोजगार आश्वासन योजना।

रोजगार संबंधी परिदृश्य

1991 की जनगणना के अनुसार (असम तथा जम्मू और कश्मीर को छोड़कर) 306 मिलियन कामगार थे, जिनमें से लगभग 10% सीमान्त कामगार थे। राष्ट्र की कार्य बल (वर्क फोर्स) (सीमान्त कामगारों सहित) कुल जनसंख्या का 37.4% बैठता है। 1991 में लगभग 69% जनसंख्या कृषि और सम्बद्ध गतिविधियों में संलग्न थी। कामगारों का वर्गीकरण (1961-1991) तालिका 9.1 में दर्शाया गया है।

तालिका 9.1

1961 से 1991 तक कामगारों का वर्गीकरण

(लाख में)

	1961	1971	1981	1991
कुल कामगार	1,825	1,807	2,420	3,060
मुख्य कामगार	1,825	1,750	2,207	2,789
सीमान्त कामगार		57	213	271
पुरुष कामगार	1,249	1,444	1,793	2,186
महिला कामगार	576	363	627	874
ग्रामीण कामगार	1,566	1,491	1,951	2,417
ग्रामीण पुरुष कामगार	1,030	1,164	1,385	1,635
ग्रामीण महिला कामगार	336	327	566	782
शहरी कामगार	259	316	469	643
शहरी पुरुष कामगार	220	281	408	551
शहरी महिला कामगार	39	35	61	93
		कुल जनसंख्या में कामगारों का प्रतिशत		
कुल कामगार	42.97	34.17	36.70	37.49
पुरुष	57.16	52.75	52.62	51.61
महिला	27.93	14.22	19.67	22.26
ग्रामीण	45.09	35.33	38.79	40.09
ग्रामीण पुरुष	58.30	53.78	53.77	52.57
ग्रामीण महिला	31.42	15.92	23.06	26.79
शहरी	33.47	29.61	29.99	30.15
शहरी पुरुष	52.37	48.88	40.06	48.93
शहरी महिला	11.16	7.18	8.31	9.24

स्रोत : भारतीय अर्थव्यवस्था निगरानी केन्द्र

अधिकांशत: कार्यबल स्वभावत: असंगठित है, 80 प्रतिशत कामगार ग्रामीण क्षेत्रों में रह रहे हैं जिसमें से 63 प्रतिशत कृषि में लगे हुये हैं, 85% कार्यबल स्व-रोजगार प्राप्त हैं अथवा नैमित्तिक मजदूरी कर रहा है, और केवल 15% कार्यबल ही नियमित वेतनभोगी रोजगार में लगा हुआ है।

योजना आयोग के अनुसार, भारत में मार्च 1995 के अंत तक 339.2 मिलियन श्रम शक्ति की (कुल जनसंख्या का 37.4%) परिभाषा में वे लोग आते हैं जो नियमित रूप से अथवा अनियमित रूप से लाभप्रद गतिविधि में लगे हुए हैं और जो काम की तलाश में हैं या काम के लिये उपलब्ध हैं। इस कुल कार्य बल में से 52 मिलियन शिक्षित हैं और 1.52 मिलियन सुप्रशिक्षित तकनीकी कामगार हैं।

1991-95 की अवधि के दौरान लगभग 27.07 मिलियन लोग 2.1% वार्षिक की दर से श्रम शक्ति में शामिल होते रहे हैं। इस अवधि के दौरान सृजित किये गये लाभ के अवसर लगभग 22.77 मिलियन थे अर्थात इसमें 1.8% वार्षिक वृद्धि होती रही। इस प्रकार से उन 27.07 मिलियन लोगों में से जो इस अवधि के दौरान श्रम शक्ति में शामिल हुए थे, 4.30 मिलियन लोग बिना किसी कार्य के रह गये। श्रम शक्ति में वृद्धि मुख्यत: जनसंख्या में वृद्धि की दर से प्रभावित होती है।

मुख्य क्षेत्रों में रोजगार

संगठित क्षेत्र कुल रोजगार का लगभग केवल 10% ही बैठता है। यह अनुपात वर्षों से करीब-करीब एक सा ही रहा है। 1990-95 की अवधि के दौरान गैर-सरकारी क्षेत्र में रोजगार में 1.23 प्रतिशत की औसत दर से वृद्धि हुई जबकि सरकारी क्षेत्र में यह वृद्धि 0.73% रही। सरकारी क्षेत्र में रोजगार की वृद्धि दर धीमी रही है। गैर-सरकारी क्षेत्र में, वृद्धि की दर उल्लेखनीय रही है हालांकि यह 1992 के स्तर तक नहीं पहुंच पाई है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि का प्रमुख स्थान रहा है। आठ पंचवर्षीय योजनाओं में भी इसको प्रमुख स्थान दिया जाता रहा है। 1961 से 1993-94 के बीच सकल घरेलू उत्पाद में यद्यपि इसका अंश 60% से कम होकर 32% हो गया लेकिन जहां तक रोजगार के अवसरों का संबंध है इसमें थोड़ी ही कमी आई है और यह 75% से घटकर 65% हो गया है। इसी अवधि के दौरान ग्रामीण क्षेत्रों में प्राथमिक क्षेत्र में रोजगार के अवसर 85.8% से कम होकर 78% रह गए। गौण क्षेत्र में रोजगार के अवसरों में वृद्धि बहुत धीमी रही जो 11.2% से बढ़कर मात्र 14.8% ही रही जबकि तृतीय क्षेत्र में यह वृद्धि कुछ अधिक रही जो 13.2% से बढ़कर मात्र 20% हो गई। तेजी से विकास कर रहे अनेक विकासशील देशों में यह अनुपात तीव्र गति से बदल रहा है और गौण तथा तृतीय क्षेत्रों में रोजगार के अवसर बढ़ रहे हैं। ऐसा भारत में नहीं हुआ है।

तृतीय क्षेत्र में रोजगार के बढ़ते अवसरों का ज्यादा लाभ शहरी क्षेत्रों में महिला कामगारों को सेवा उद्योग में मिला है।

तालिका 9.2

प्रमुख क्षेत्रों में रोजगार

(मार्च के अंत तक) (लाखों में)

क्षेत्र	1990	1991	1992	1993	1994	1995
केन्द्र सरकार	33.97	34.10	34.28	33.83	33.92	33.95
राज्य सरकार	69.79	71.13	71.90	72.93	73.37	73.55
अर्द्ध सरकारी (केन्द्र)	35.23	35.64	35.54	35.92	35.66	35.74
अर्द्ध सरकारी (राज्य)	26.50	26.58	28.39	28.98	29.48	29.46
स्थानीय निकाय	22.23	23.13	21.98	21.60	22.02	21.97
कुल	187.72	190.58	192.09	193.26	194.45	194.67
		(1.52)	(0.80)	(0.61)	(0.61)	(0.11)
सार्वजनिक क्षेत्र (क)	75.82	76.76	78.46	78.50	79.30	80.59
सार्वजनिक क्षेत्र (ख)		(1.24)	(2.22)	(0.06)	(1.01)	(1.60)
कुल योग	263.54	267.34	270.55	271.76	273.75	275.26
क + ख		(1.44)	(1.21)	(0.45)	(0.73)	(0.54)

टिप्पणी : कोष्ठक में दिए गए आंकड़े गत वर्ष की तुलना में कुल प्रतिशतता दर्शाते हैं।
स्रोत : श्रम मंत्रालय, वार्षिक रिपोर्ट 1994-95, 1995-96

तालिका 9.3

औद्योगिक क्षेत्र में महिला और पुरुष कामगारों की स्थिति (1972-73 से 1993-94)

क्षेत्र/लिंग/उद्योग	1972-73	1977-78	1983	1987-88	1993-94
व्यक्ति					
100 में से कुल					
1. कृषि	73.9	71.0	68.6	65.0	64.7
2. विनिर्माण	8.8	10.2	10.7	11.1	10.5
3. निर्माण	1.9	1.7	2.2	3.8	3.2
4. व्यापार	5.1	6.1	6.2	7.2	7.4
5. सेवाएं	7.9	8.1	8.9	9.3	10.3
पुरुष					
100 में से कुल					
1. कृषि	68.8	65.6	62.6	58.7	58.3
2. विनिर्माण	9.9	11.0	11.7	11.9	11.0
3. निर्माण	2.1	2.2	2.9	4.2	4.1
4. व्यापार	6.5	7.8	8.0	9.2	9.5
5. सेवाएं	2.3	9.4	10.6	10.8	11.7
महिलाएँ					
100 में से कुल					
1. कृषि	84.3	81.8	81.2	77.7	78.0
2. विनिर्माण	6.6	8.5	8.9	9.5	9.3
3. निर्माण	1.3	0.8	1.0	2.8	1.2
4. व्यापार	2.3	2.8	2.7	3.1	3.2
5. सेवाएं	5.1	5.7	5.5	6.2	7.6

स्रोत : योजना आयोग

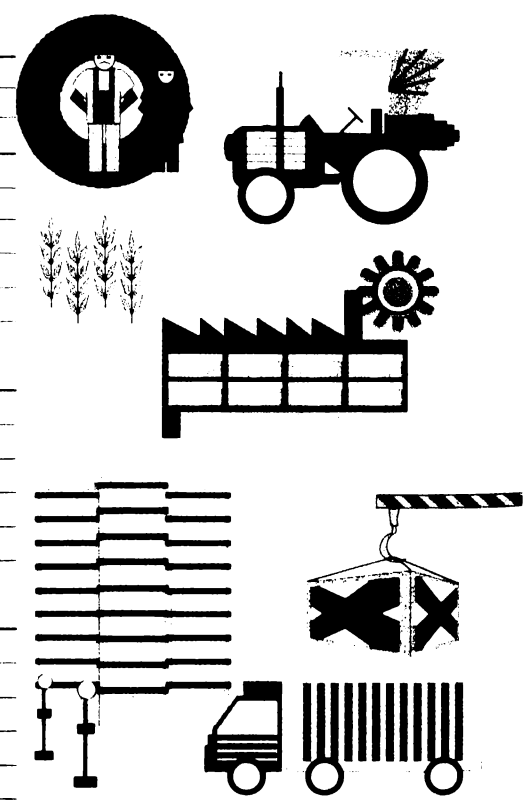

व्यावसायिक ढांचा : भारत, पूर्वी एशिया और दक्षिण एशिया

रोजगार नीति की दृष्टि से पूर्वी एशिया के अनुभव से इस बात की पुष्टि होती है कि श्रम प्रधान विनिर्माण का तीव्र विकास विकासशील देशों में पूर्ण रोजगार प्राप्त करने और जीवन स्तर ऊंचा करने में प्रमुख रूप से सहायक रहा है। ऐसे विकास के परिणामस्वरूप प्रारंभ में परंपरागत और अनौपचारिक क्षेत्र में अतिरिक्त श्रमिकों की संख्या में तेजी से कमी आती है लेकिन अतिरिक्त श्रमिकों को हटाने से बाद के वास्तविक वेतन में वृद्धि होती है।

दक्षिण एशिया में रोजगार की स्थितियों में परिवर्तन काफी सकारात्मक रहे जबकि इन्हें पूर्वी एशिया जैसी सफलता नहीं मिली। यद्यपि पहले की तुलना में विकास अपेक्षाकृत तेजी से हुआ, लेकिन यह पूर्वी एशिया के स्तर तक नहीं पहुंच सका था।

यह विकास अपेक्षाकृत कम समय तक रहा जबकि दक्षिण एशियाई देशों से आर्थिक सुधारों के जरिये हाल ही में अधिक खुले बाजार की अर्थव्यवस्था को अपनाया है। इसके अतिरिक्त इन देशों में श्रमिकों का बड़ा हिस्सा अभी भी कृषि क्षेत्र में कार्यरत है जैसा कि निम्न तालिका से स्पष्ट होता है:

तालिका 9.4

कृषि, उद्योग और सेवाओं में लगे श्रमिक (1960-90)

विकास स्थिति के संदर्भ में विश्व रुझान

(श्रमिकों की प्रतिशतता)

	कृषि		उद्योग		सेवाएं	
	1960	1990	1960	1990	1960	1990
सभी विकासशील देश	77	61	9	16	14	23
कम विकसित देश	86	74	5	10	9	17
औद्योगिक देश	27	10	35	33	38	57
विश्व	61	49	17	20	22	31

स्रोत: ह्यूमन डेवलपमेंट रिपोर्ट, 1997 (यू.एन.डी.पी.) न्यूयार्क।

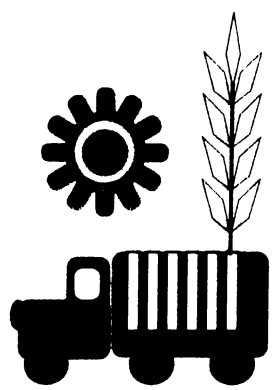

जहां तक भारत सहित दक्षिण एशियाई देशों का संबंध है, इनका व्यावसायिक ढांचा निम्न प्रकार से है:

1951 से भारत में व्यावसायिक परिवर्तन संबंधी आकंड़े निम्न प्रकार से है:

तालिका 9.5

1990-92 के दौरान दक्षिण एशिया में व्यावसायिक ढांचा

(श्रमिकों की प्रतिशतता)

क्षेत्र/देश	कृषि	उद्योग	सेवाएं
दक्षिण एशिया	60	12	29
भारत	62	11	27
पाकिस्तान	47	20	33
बंगलादेश	59	13	28
नेपाल	93	1	6
श्रीलंका	49	21	30
भूटान	92	3	5
मालद्वीप	25	32	43

स्रोत : ह्यूमन डेवलपमेंट इन साउथ एशिया, 1997
(ह्यूमन डेवलपमेंट सेन्टर, इस्लामाबाद, पाकिस्तान)

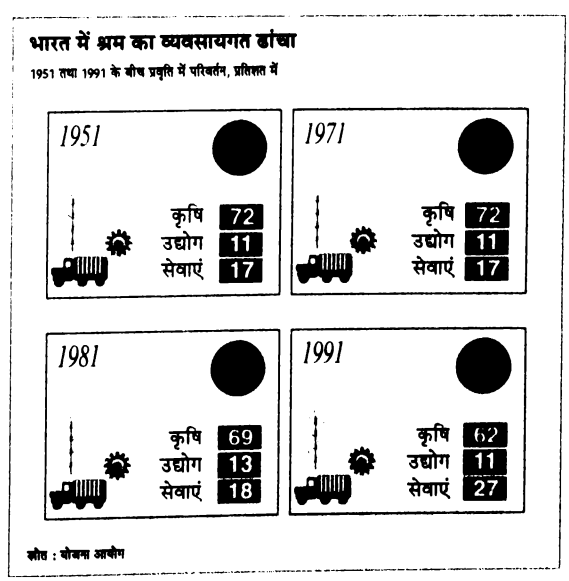

तालिका 9.6

भारत में श्रम के व्यावसायिक ढांचे में परिवर्तन का रुझान : 1951-1991

(प्रतिशत)

क्षेत्र	1951	1971	1981	1991
कृषि	72	72	69	62
उद्योग	11	11	13	11
सेवाएं	17	17	18	27

स्रोत : योजना आयोग

उक्त तालिका के अध्ययन से निम्नलिखित टिप्पणियां की जा सकती हैं:

प्रथमत:, भारतीय अर्थव्यवस्था का व्यावसायिक ढांचा असन्तुलित है। कृषि पर निर्भरता अधिक है, लगभग दो-तिहाई कामकाज वर्ग कृषि से अपना जीविकोपार्जन करता है तथा गैर-कृषि क्षेत्र में आबादी का केवल एक तिहाई हिस्सा है। दूसरे, गत दो दशकों के दौरान अन्य विकासशील देशों के अनुरूप व्यावसायिक ढांचे में यहां भी कुछ निश्चित परिवर्तन आए हैं। इस अवधि में व्यावसायिक ढांचे में प्राथमिक क्षेत्र का अंश कम हुआ है तथा सेवा क्षेत्र के अंश में वृद्धि हुई है।

इसके विपरीत दक्षिण एशिया की तुलना में चीन में रोजगार के अवसर अधिक बढ़े हैं जो 1970 के दशक के अंत से चल रही असाधारण ऊंची विकास दर का परिणाम है। इसके परिणामस्वरूप कृषि क्षेत्र में श्रमिकों का प्रतिशत कम होकर 1977 में 77%, 1980 में 69% तथा 1990 में और कम होकर 60% हो गया। साथ ही 1977 से 1990 के दौरान गैर-कृषि क्षेत्र में रोजगार के अवसर बढ़कर 58% हो गए।

रोजगार वृद्धि संबंधी रुझान

राष्ट्रीय प्रतिदर्शी सर्वेक्षण संगठन द्वारा किए गए पंचवर्षीय सर्वेक्षणों के अनुसार वर्ष 1977-78 से रोजगार संबंधी स्थितियों का ब्यौरा निम्न प्रकार से है:

तालिका 9.7

रोजगार स्थिति : 1977-78 से 1993-94

	1977-78	1987-88	1993-94
रोजगार में वृद्धि	239.84	290.93	332.00
विभिन्न अवधियों में रोजगार वृद्धि दर	2.10%^	1.77%*	2.23%#
बेरोजगारी दर	2.60%	2.70%	1.90%

@ 1977-78 से 1983-84 तक की वर्ष की अवधि का औसत
* 1983 से 1987-88 तक की पांच वर्ष की अवधि का औसत
\# 1987-88 से 1993-94 तक की पांच वर्ष की अवधि का औसत
स्रोत : राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण संगठन 25 प्र.सं.इ. का पांचवर्षीय सर्वेक्षण

1977-78 और 1987-88 की दस वर्ष की अवधि के दौरान जबकि रोजगार में 510 लाख की वृद्धि हुई, अगले पांच वर्ष की अवधि के दौरान इसमें 410 लाख की वृद्धि हुई जो त्वरित वृद्धि को दर्शाता है।

1987-88 से 1993-94 के पांच वर्ष की अवधि के दौरान रोजगार वृद्धि दर बढ़ कर 2.23% हो गयी हालांकि पिछले पांच वर्ष की अवधि के दौरान इसके पूर्व की पांच वर्ष की अवधि के दौरान 2.10% के मुकाबले यह गिर कर 1.77% हो गया था।

रोजगार दर की आम स्थिति जो 1977-78 में 2.60% की तुलना में 1987-88 में बढ़ कर 2.70% हो गयी थी, 1993-94 में गिर कर 1.90% हो गयी।

कार्य भागीदारी

जनसंख्या में तीव्र वृद्धि के बावजूद कार्य भागीदारी दर (मजदूर जनसंख्या अनुपात) बहुत हद तक स्थिर रही। यह 1951 में 39.1% था। रा.प्र.सं.सं. सर्वेक्षण के अनुसार 1972-73 से 1993-94 के दस वर्षों की अवधि में यह आंकड़ा लगभग 41-42% के लगभग रहा। यद्यपि आंकड़े कुछ भिन्न हैं, लेकिन आंकड़े भी स्थायित्व की पुष्टि करते हैं। जनसंख्या वृद्धि के परिप्रेक्ष्य में भी यह स्थायित्व देखा जा सकता है जो 1951 में 36.1 करोड़ से बढ़ कर 1994 में 89.4 करोड़ हो गया।

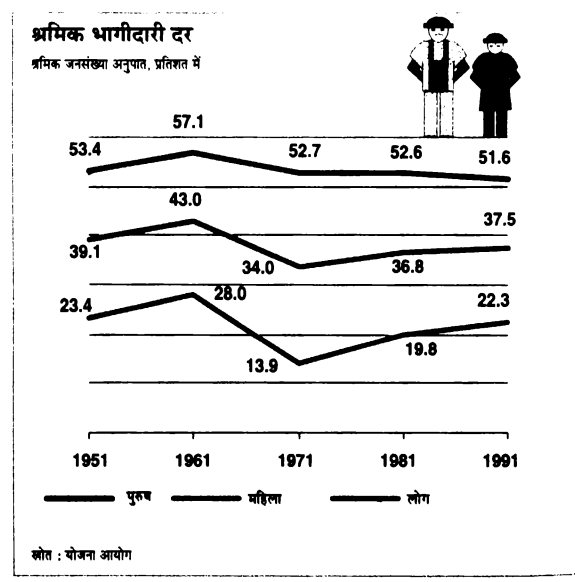

उपरोक्त रेखाचित्र से एक विशेष बात यह सामने आती है कि कार्य में महिलाओं की भागीदारी बढ़ रही है जबकि पुरुषों की भागीदारी में हल्की गिरावट का रुझान है। कार्य भागीदारी में समग्र वृद्धि मुख्यतया महिलाओं के कारण है।

कार्य भागीदारी दर ग्रामीण जनसंख्या में अधिक है बनिस्पत शहरी जनसंख्या के और वह भी महिलाओं की तुलना में पुरुषों में अधिक है। रा.प्र.सं.सं. के पंचवर्षीय सर्वेक्षण के अनुसार यह अनुपात भिन्नता इस प्रकार है:

तालिका 9.8

कार्य भागीदारी : शहरी-ग्रामीण पुरुष महिला अंतर

	शहरी क्षेत्र	ग्रामीण क्षेत्र
पुरुष	49 से 52%	लगभग 54%
महिला	13 से 15%	32 से 34%

स्रोत : रा.प्र.सं.सं. (राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण संगठन)

37.5% का कार्य भागीदारी अनुपात विकसित देशों की अत्यधिक उच्च भागीदारी दर की तुलना काफी कम है। यह आर्थिक रूप से सक्रिय आयु समूह में जनसंख्या वितरण का प्रतिबिंब है। श्रम बल में महिलाओं का अनुपात जो ग्रामीण क्षेत्र में 36% और शहरी क्षेत्र में 21% है तथा जो ज्यादातर विकसित राष्ट्रों में पाये जाने वाले स्तर से काफी नीचे है, अन्य बातों के साथ-साथ सांस्कृतिक लिंग पूर्वाग्रह को दर्शाता है। लगभग एक दर्जन राज्यों में कार्य भागीदारी केवल 7% से 16% के बीच है।

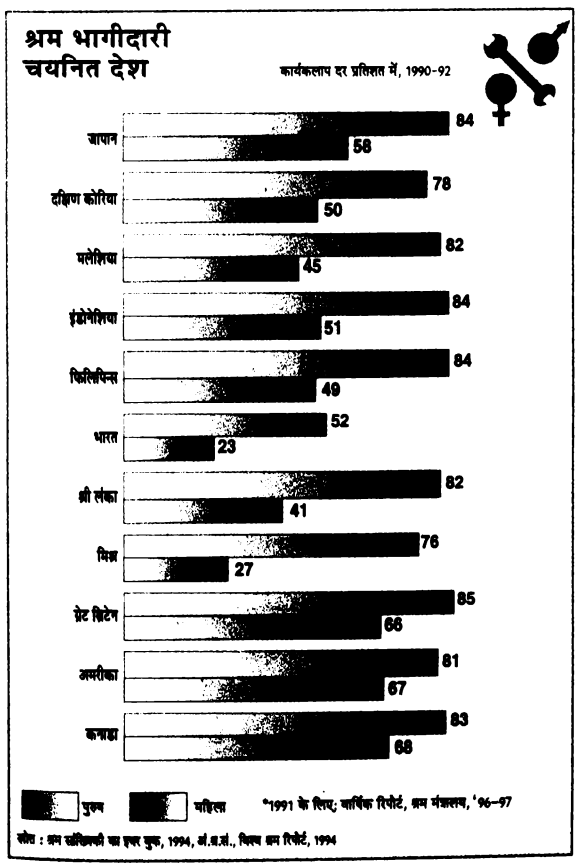

तालिका 9.9

विश्व के चुने हुए देशों में श्रम भागीदारी

कार्यकलाप दर % (1990-92)

	पुरुष	महिला
जापान	84	58
चीन	-	-
दक्षिण कोरिया	78	50
मलेशिया	82	45
इंडोनेशिया	84	51
फिलीपीन	84	49
भारत*	52	23
श्रीलंका	82	41
मिस्र	76	27
इंग्लैंड	85	66
अमेरिका	81	67
कनाडा	83	68

* 1991 के लिए श्रम मंत्रालय की वार्षिक रिपोर्ट 1996-97
स्रोत : इयर बुक ऑफ लेबर स्टैटिस्टिक्स 1994, आईएलओ वर्ल्ड लेबर रिपोर्ट : 1994

बेरोजगारी

देश में रोजगार (अर्ध-रोजगार) की कुल मिलाकर दैनिक स्थिति 6% है (पुरुषों के लिए 5.9% और महिलाओं के लिए 6.3%) यद्यपि पुरुषों और महिलाओं के लिए रोजगार की इस श्रेणी की दर ग्रामीण क्षेत्र में समान है, शहरी क्षेत्र में पुरुष, महिला असमानता अधिक है।

तालिका 9.10

बेरोजगारी : पुरुष-महिला असमानताएं

(प्रतिशत में)

	शहरी क्षेत्र	ग्रामीण क्षेत्र
पुरुष	6.7	5.6
महिला	10.5	5.6

स्रोत : रा.प्र.सं.सं.

महिलाएं विशेषकर शहरी महिलाएं अधिक संख्या में श्रम बाजार में आ रही हैं और उनके लिए रोजगार और बेरोजगारी दोनों में वृद्धि हो रही है।

नि:संदेह विगत 20 वर्षों में शहरी तथा ग्रामीण क्षेत्रों और पुरुषों तथा महिलाओं में बेरोजगारी दर में कमी हुई है।

तालिका 9.11

बेरोजगारी (अर्ध-रोजगार) दर की दैनिक स्थिति में परिवर्तन

शहरी ग्रामीण तथा पुरुष महिला अंतर (प्रतिशत में)

	भारत		शहरी क्षेत्र		ग्रामीण क्षेत्र	
	पुरुष	महिला	पुरुष	महिला	पुरुष	महिला
1972-73	7.0	11.5	8.0	13.7	6.8	11.2
1987-88	5.6	7.5	8.8	12.0	4.6	6.7
1993-94	5.9	6.3	6.7	10.5	5.6	5.6

स्रोत : रा.प्र.सं.सं.

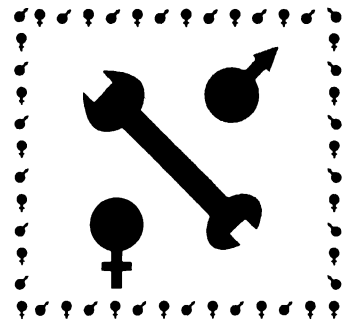

गत दो पंचवर्षीय सर्वेक्षणों की बीच की अवधि में बेरोजगारी की प्रवृत्ति के संबंध में एक महत्वपूर्ण बात यह आयी कि ग्रामीण क्षेत्रों में पुरुषों के बीच बेरोजगारी में 1% की वृद्धि हुई है जबकि शहरी क्षेत्रों में इसमें 2.1% की वृद्धि हुई है। ऐसा शायद अनेक जटिल कारणों से हुआ है यथा ग्रामीण क्षेत्रों के प्रवासी श्रमिक मौजूदा बेरोजगारों की संख्या में वृद्धि कर रहे हैं, शिक्षा प्राप्त करने वाले लोगों की बढ़ती हुई संख्या तथा शिक्षित लोगों का अभी भी बेरोजगार रहना।

शिक्षित बेरोजगारी

राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण संगठन (एन.एस.एस.ओ.) द्वारा किए गए गत दो पंचवर्षीय सर्वेक्षणों के अनुसार जबकि समग्र रोजगार (शिक्षित और अशिक्षित) में वृद्धि हुई है तथा अर्थव्यवस्था में सबों के लिए बेरोजगारी कम हुई है तथापि अशिक्षित व्यक्तियों की अपेक्षा शिक्षित व्यक्तियों में बेरोजगारी का अनुपात अधिक है। अशिक्षित महिलाओं की अपेक्षा शिक्षित महिलाओं में भी बेरोजगारी अधिक है।

तालिका 9.12

शिक्षित बेरोजगारी (प्रतिशत)

	1987-88	1993-94
शिक्षित बेरोजगारी	11.82	9.56
बेरोजगारी में शिक्षित व्यक्तियों का अनुपात	40.00	62.00
शिक्षित रोजगार प्राप्त व्यक्तियों का अनुपात	11.60	15.60
शिक्षित महिलाओं की बेरोजगारी की दर	27.02	22.36
शिक्षित पुरुषों की बेरोजगारी की दर	9.88	7.89

असम, बिहार, हरियाणा, जम्मू और कश्मीर, केरल, उड़ीसा, तमिलनाडु, त्रिपुरा और पश्चिम बंगाल राज्यों में वर्ष 1993 के दौरान शिक्षित बेरोजगारी अखिल भारतीय औसत से अधिक रही।

रोजगार की विशेषता

यह ध्यान देने योग्य बात है कि दो दशकों में अर्थात् 1972-73 तथा 1993-94 के बीच स्वरोजगार, नियमित रोजगार तथा नैमित्तिक रोजगार में रुझान नैमित्तिक रोजगार की ओर बढ़ा है तथा स्वरोजगार और नियमित रोजगार की प्रवृत्ति में कमी आयी है।

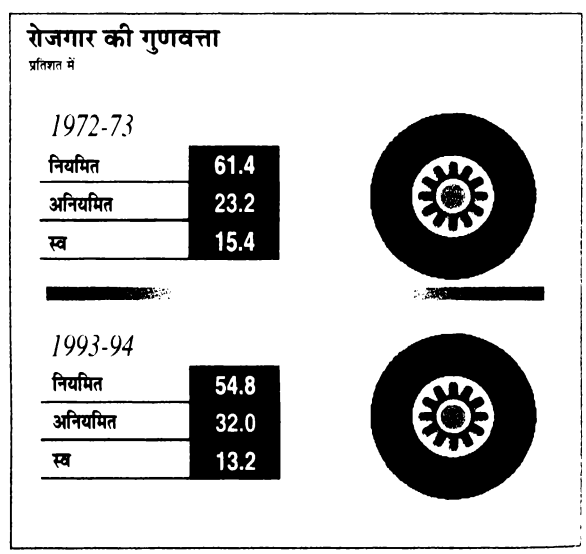

रोजगार के स्वरूप में परिवर्तन पुरुषों के लिए स्वरोजगार एवं नियमित रोजगार के अनुपात में कमी के परिणामस्वरूप दिहाड़ी मजदूरी के रूप में हुआ लेकिन महिलाओं के लिए स्वरोजगार से दिहाड़ी मजदूरी एवं नियमित रोजगार में परिवर्तन हुआ जिसमें उनका हिस्सा 6.2 प्रतिशत रहा जो बहुत कम है।

महिलाओं और पुरुषों दोनों के लिए दिहाड़ी मजदूरी से सबसे अधिक वृद्धि ग्रामीण क्षेत्रों में हुई और शहरी क्षेत्रों में बहुत कम वृद्धि हुई। यह एक महत्वपूर्ण संकेत है कि गरीबी उन्मूलन के लिए शहरी और ग्रामीण रोजगार कार्यक्रमों का सकारात्मक

प्रभाव पड़ा और निश्चित तौर पर ग्रामीण क्षेत्रों पर इसका अधिक प्रभाव पड़ा।

शहरी क्षेत्रों में महिलाओं के नियमित रोजगार के अनुपात में थोड़ी वृद्धि हुई जबकि पुरुषों के नियमित रोजगार के उच्च अनुपात 50.7 प्रतिशत में कमी आई और यह घटकर 42.1 प्रतिशत हो गया और दूसरी ओर स्वरोजगार (2.5 प्रतिशत) और दिहाड़ी मजदूरी (6.1 प्रतिशत) में वृद्धि हुई।

ऐसा लगता है कि आर्थिक सुधार के युगारम्भ के कारण रोजगार के अवसर में कोई विशेष कमी नहीं आई जैसी की आशंका थी, चूंकि बेरोजगारी की दर में कमी आई है यद्यपि अर्थव्यवस्था में नियमित रोजगार में वृद्धि के अवसर का कोई संकेत नहीं है। चूंकि नियमित रोजगार में अधिकाधिक सामाजिक सुरक्षा है और कुछ हद तक स्वरोजगार में भी सामाजिक सुरक्षा है अत: अर्थव्यवस्था को इन अवसरों के सृजन पर ध्यान देना होता है। यह भी महत्वपूर्ण है कि दैनिक बेरोजगारी की स्थिति अधिक होने के कारण दिहाड़ी पर कार्य करने वाले अधिकांश लोगों की आजीविका अत्यधिक दयनीय हो जाती है।

विगत उपलब्धि और भावी संभावनाएं

वास्तव में, विगत पांच दशकों के दौरान हमने लक्ष्य आधारित रोजगार सृजन का प्रयास किया है। उपलब्धियां हमेशा लक्ष्य के अनुरूप नहीं रही हैं। चौथी पंचवर्षीय योजना से सातवीं पंचवर्षीय योजना तक लक्ष्यों का निर्धारण और उपलब्धि तथा रोजगार सृजन की बकाया स्थिति विवादास्पद रही और लक्ष्य निर्धारण के महत्व को कम किया गया। प्रत्यक्ष रोजगार सृजन के लिए सरकार द्वारा बड़े पैमाने पर सार्वजनिक निवेश किया गया।

तालिका 9.13

पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान रोजगार सृजन

	लक्ष्य	उपलब्धि
पहली योजना	–	5.5 मिलियन
दूसरी योजना	10 मिलियन	6.5 मिलियन
तीसरी योजना	17 मिलियन	14.0 मिलियन
चौथी योजना	अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के विश्व रोजगार कार्यक्रम में यथा प्रस्तावित ग्रामीण विकास व्यापक कार्यक्रम, श्रमिक बहुल लोक कार्य कार्यक्रमों, औद्योगिक क्षमता का और अधिक उपयोग, श्रम प्रधान उत्पादन का संवर्धन आदि जिन पर बल दिया गया था उनके संबंध में कोई विशेष लक्ष्य निर्धारित नहीं किया गया और उपलब्धि का आकलन नहीं किया गया।	
पांचवी, छठी और सातवीं योजना	चौथी योजना के दृष्टि को खंडश: अपनाया गया।	
1977	काम के बदले अनाज कार्यक्रम शुरू किया गया।	
1978-80	समेकित ग्रामीण विकास कार्यक्रम शुरू किया गया, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (काम के बदले अनाज संबंधी पुनर्गठित कार्यक्रम) शुरू किया गया।	
1983-84	ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम शुरू किया गया।	
1980 के उत्तरार्ध में प्रत्येक वर्ष अतिरिक्त रोजगार सृजन संबंधी आकलन	**5 मिलियन (औसतन)**	
1991–92 में अतिरिक्त रोजगार सृजन संबंधी आकलन	**3 मिलियन**	
1992–93 से 1994–95 के दौरान प्रतिवर्ष अतिरिक्त रोजगार सृजन संबंधी आकलन	**6.3 मिलियन (औसतन)**	

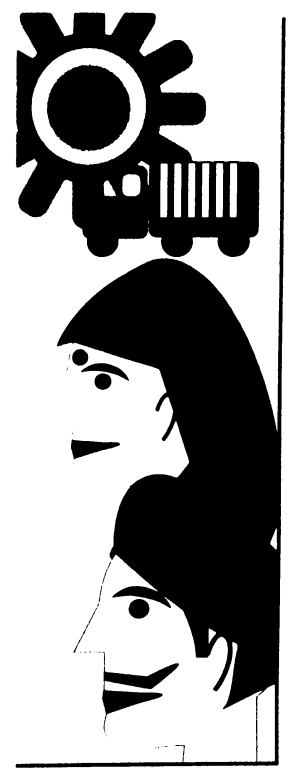

सन् 1952 में यह अनुमान लगाया गया था कि सन् 2002 तक औसतन 94 मिलियन रोजगार के अवसर पैदा किए जा सकेंगे और सबको रोजगार दे दिया जाएगा। बाक्स 9.2 से रोजगार और बेरोजगारी की स्थिति स्पष्ट हो जाती है कि जनसंख्या वृद्धि दर (2.1 प्रतिशत), कामगारों की संख्या में होती तीव्र वृद्धि (2.5 प्रतिशत) के कारण रोजगार वृद्धि दर (2.5 प्रतिशत) सभी कामगारों को रोजगार देने में असमर्थ है।

बाक्स 9.2 : रोजगार और बेरोजगारी की स्थिति

1.	कुल जनसंख्या (1991 की जनगणना के अनुसार)		846 मिलियन
2.	जनसंख्या वृद्धि दर		2.1 प्रतिशत
3.	साप्ताहिक स्थिति के अनुसार वर्ष 1992-93 के आरंभ में कुल रोजगार		301.7 मिलियन
4.	वर्ष 1992-93 के आरंभ में कामगारों की संख्या		319.0 मिलियन
5.	आठवीं पंचवर्षीय योजना के आरंभ अर्थात 1.4.92 को बेरोजगारी की बकाया स्थिति		17.0 मिलियन
6.	अत्यधिक बेरोजगार (रोजगार प्राप्त का 2 प्रतिशत)		6.0 मिलियन
7.	आठवीं पंचवर्षीय योजना के आरंभ में अर्थात 1.492 को पूर्ण रूप से रोजगार चाहने वाले कामगारों की संख्या		1716 = 23.0 मिलियन
	आकलन		
1.	1992-97 के दौरान कामगारों की संख्या में वृद्धि		35.0 मिलियन
2.	1992-2002 के दौरान कामगारों की संख्या में होने वाली वृद्धि		36.0 मिलियन
	लक्ष्य		
1.	1992-97 के दौरान रोजगार की तलाश करने वाले व्यक्ति		23 + 35 = 58.0 मिलियन
2.	1992-2002 तक के दौरान रोजगार तलाश करने वाले व्यक्ति		58 + 36 = 94.0 मिलियन
	बेरोजगारी		
1.	बेरोजगारी की दर		
		1987-88	1993-94
	समग्र	3.77 प्रतिशत	2.56 प्रतिशत
	पुरुष	3.66 प्रतिशत	2.60 प्रतिशत
	महिला	4.19 प्रतिशत	2.44 प्रतिशत
2.	1987-88 के दौरान शिक्षित बेरोजगारों की संख्या (कुल शिक्षित व्यक्तियों की तुलना में शिक्षित बेरोजगारों का प्रतिशत)	पुरुष स्त्री	11.8 प्रतिशत 9.8 प्रतिशत 26.7%
3.	शिक्षित बेरोजगारों का प्रतिशत (कुल बेरोजगारों में शिक्षित बेरोजगारों का प्रतिशत)	40%	
4.	रोजगार कार्यालयों में पंजीकरण-पूरे भारत में		
	1995 के दौरान पंजीकरण		59 लाख
	1995 के दौरान रोजगार		11 लाख
	31.12.95 को पंजीकृत		367 लाख
	व्यक्तियों की संख्या		शिक्षित
	1993 के दौरान पंजीकरण		37 लाख
	1993 के दौरान रोजगार		0.95 लाख
	पंजीकृत व्यक्तियों की संख्या 31.12.93 की स्थिति के अनुसार		23.6 लाख

*श्रम मंत्रालय की 1996-97 की वार्षिक रिपोर्ट

वर्ष 1992-93 से 1994-95 के दौरान 94 मिलियन रोजगार सृजन के अनुमान की तुलना में मात्र 19 मिलियन रोजगारों का ही सृजन किया जा सका। नौवीं पंचवर्षीय योजना अवधि (1997-1998 से 2001-2002 तक) के दौरान शेष 75 मिलियन रोजगार सृजन के लिए हमें 12 से 13 मिलियन रोजगार प्रतिवर्ष सृजित करने होंगे यह मानते हुए कि 1995-96 और 1996-97 के दौरान हमने लगभग 12 मिलियन रोजगारों का सृजन औसतन 6.3 मिलियन प्रति वर्ष की दर से किया। दूसरे शब्दों में हमें रोजगार सृजन के दर को दोगुना करना होगा।

यह भी ध्यान रखना होगा कि शिक्षित बेरोजगारों की संख्या में वृद्धि हुई है जैसाकि 1993-94 में शिक्षित बेरोजगारों की संख्या 10 मिलियन थी। अकुशल श्रमिक एवं अत्यन्त निर्धनों के लिए बनाई गई विशेष गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों का शिक्षित बेरोजगारों की आवश्यकताओं के साथ तुलना नहीं की जा सकती है। देश में सृजित किए जाने वाले रोजगार के अतिरिक्त अवसरों में परिवर्तन करना आवश्यक है। आवश्यकता इस बात की है कि केवल रोजगारों का सृजन करने का लक्ष्य होने के बजाय कुशल श्रमिक तैयार किये जाएं जिसकी श्रम बाजार में कमी है। इस प्रयोजनार्थ विशेष शैक्षणिक और विकास पाठ्यक्रमों के माध्यम से श्रम शक्ति विकास नीतियों के पुनर्विन्यास की आवश्यकता होगी।

10

श्रम मानक

श्रम मानकों पर अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के सम्मेलनों में हमारा पिछला रिकार्ड कुछ विकसित देशों की तुलना में अच्छा रहा है। हमारे पास अनेक केन्द्रीय और राज्य श्रम कानून हैं। लेकिन मूल श्रम कानूनों को लागू करना भी कठिन और विवादास्पद बना हुआ है। उत्तरोत्तर सरकारों और मजदूर संघों का संगठित क्षेत्र के 10 प्रतिशत मजदूरों के प्रति झुकाव के परिणामस्वरूप मजदूर वर्ग आन्दोलन में अनजाने में विशेष वर्ग का विकास हुआ है। श्रम उत्पादकता श्रम संरक्षण के अनुरूप नहीं रही है और न ही हम हमारे कुछ एशियाई पड़ोसियों के साथ इस संबंध में अनुकूल तुलना करते हैं। अनुमानत: 17 मिलियन बच्चे अब भी शिक्षा से वंचित हैं और वे कार्य के क्षेत्र में खतरों और शोषण के शिकार होते हैं। जबकि आंकड़ों के अनुसार हमारा व्यवसाय-स्वास्थ्य और श्रम-मानक समग्र रूप से प्रशंसनीय प्रवृत्ति दर्शाते हैं, हमारे यहां अक्सर भयंकर विपत्तियां आती रहती हैं। कामकाजी लोगों के परिवेश में हुए भारी बदलाव पर विचार करते हुए दूसरा राष्ट्रीय श्रम आयोग गठित करने की आवश्यकता है।

मानक और विधायी कार्य

भारत अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का एक संस्थापक सदस्य रहा है। हमने अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर श्रम मानकों की स्थापना में सक्रिय भाग लिया। हमने विभिन्न क्षेत्रों में—पारिश्रमिक और कार्यदशाएं, औद्योगिक संबंध, सामाजिक सुरक्षा, महिलाओं और बच्चों की सुरक्षा इत्यादि से संबंधित—37 अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन कन्वेन्शनों का अनुमोदन किया है। हमने कन्वेंशनों के अनुमोदन में कुछ विकसित देशों की तुलना में एक बेहतर मिसाल कायम की है।

केन्द्र और राज्य स्तरों पर श्रम संबंधी विषय को समकालीन सूची में रखकर हमने बहुत से कानून बनाये हैं। हमारे यहां—केन्द्रीय श्रम कानून है। हमारे पास श्रम कानूनों का कार्यान्वयन सुनिश्चित करने हेतु पर्याप्त केन्द्रीय और राज्य श्रम तंत्र भी हैं। परन्तु हमारे कानूनों के कार्यान्वयन मानक में भारी संशोधन किये जाने की आवश्यकता है। काफी हद तक, इसका कारण हमारी श्रमशक्ति का बहुत बड़ी मात्रा में असंगठित होना है।

अनिश्चित रोजगार

जैसा कि रोजगार संबंधी अध्याय में बताया गया है, देश में केवल 10 प्रतिशत श्रमिक संगठित क्षेत्र में है। कृषि पर अत्यधिक निर्भरता, गौण क्षेत्र का धीमा विकास और तीसरे क्षेत्र (व्यापार और सेवाएं इत्यादि) में रोजगार का विस्तार रोजगार की अनिश्चय की स्थिति के परिचायक हैं और यह स्थिति हमारे अधिकांश श्रमिकों की है। श्रमिकों की नियमित रोजगार से स्व-रोजगार और नैमित्तिक रोजगार की ओर जाने की प्रवृत्ति पर भी पहले प्रकाश डाला गया है। ये प्रवृत्तियां रोजगार सुरक्षा का अभाव, कार्यकाल के दौरान कम पारिश्रमिक तथा असंतोषजनक कार्यदशाएं और रोजगार खोने की दशा में सामाजिक सुरक्षा के अभाव की ओर इंगित करती हैं।

बाक्स 10.1 : असंगठित श्रम की विशेषताएं

असंगठित श्रम की प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं:-

- अल्प रोजगार की विकट स्थिति (प्राय: अल्प रोजगार प्राप्त श्रमिक रोजगार की उपलब्धता के अनुसार एक से अधिक नियोक्ता के लिए कार्य करते हैं)।
- कार्य स्थलों का अलग-अलग होना (एक ही प्रकार का कार्य करने वाले श्रमिक एक स्थान पर न रहकर दूर-दूर रहते हैं)।
- गृह आधारित कार्य का प्रभाव-क्षेत्र।
- उपरोक्त सभी कारकों के कारण एकीकरण का अभाव जिसके परिणामस्वरूप सामूहिक रूप से सौदेबाजी की शक्ति का अभाव।
- निचले स्तरों पर यूनियनों का गठन (श्रमिक संघों को अल्प रोजगार प्राप्त, बिखरे हुए और गृह आधारित श्रमिकों का पता लगाने में गंभीर कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है)।
- ठोस नियोक्ता-कर्मचारी संबंध का अभाव।

कार्यशक्ति संबंधी निम्नलिखित आंकड़े वर्ष में असंगठित श्रेणियों के स्वरूप को दर्शाते हैं।

तालिका-10.1

श्रमिकों की असंगठित श्रेणियों की रूपरेखा

ग्रामीण श्रमिक		
श्रमिकों की संख्या (मिलियन में)	251	
कार्य शक्ति का प्रतिशत	80	
कृषि कार्य में लगे हुए श्रमिक		
श्रमिकों की संख्या (मिलियन में)	200	
कार्य शक्ति का प्रतिशत	64	
स्व-रोजगार प्राप्त/नैमित्तिक रोजगार प्राप्त श्रमिक		
श्रमिकों की संख्या (मिलियन में)	267	
कार्य शक्ति का प्रतिशत	85	
सीमांत श्रमिक		
श्रमिकों की संख्या (मिलियन में)	35	
कार्य शक्ति का प्रतिशत	11	
वेतन युक्त रोजगार		
श्रमिकों की संख्या (मिलियन में)	47	
कार्य शक्ति का प्रतिशत	15	

असंगठित श्रमिकों में निर्माण कार्य में रत, ठेका तथा प्रवासी श्रमिक और बाल श्रमिकों की संख्या भी काफी है।

आधारभूत श्रम कानून

श्रम कानूनों में आधारभूत कानून, विशेष रूप से असंगठित श्रमिकों को सुरक्षा देने के लिए तैयार किए गए श्रम कानूनों में, बंधित श्रम (पद्धति) (उत्सादन) अधिनियम, न्यूनतम मजदूरी अधिनियम तथा समान पारिश्रमिक अधिनियम हैं।

बंधित श्रम (पद्धति) उत्सादन कानून

हमने 1954 में अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के बलात् श्रम संबंधी कन्वेन्शन संख्या 29 का अनुमोदन किया था। बंधित श्रम (पद्धति) उत्सादन अधिनियम, 1976 में बनाया गया था और इस कानून में बंधुआ मजदूर प्रथा को समाप्त करने, बंधित ऋणों की अदायगी करने के दायित्वों को समाप्त करने तथा ऋणग्रस्त सम्पत्तियों को निर्मुक्त करने का उपबंध किया गया था। देश में पता लगाए गए बंधुआ श्रमिकों और इस प्रथा से मुक्त कराये गए श्रमिकों की संख्या 2.51 लाख बताई गई है। देश में बंधुआ श्रमिक का होना अभी भी एक विवाद का विषय बना हुआ है। सामाजिक कार्यकर्ता देश के विभिन्न भागों में बंधुआ मजदूरी प्रथा विद्यमान होने के संबंध में प्राय: शिकायत करते हैं और इसकी खबर देते हैं। राज्य सरकारें निरपवाद रूप से इस बात पर डटी रही हैं कि बंधुआ मजदूरी प्रथा को वस्तुत: समूल समाप्त कर दिया गया है। यह श्रम मंत्रालय से सम्बद्ध संसदीय समिति की जांच का विषय भी रहा है।

न्यूनतम मजदूरी कानून

यद्यपि केन्द्रीय सरकार न्यूनतम मजदूरी दर को संशोधित करने तथा इसे अद्यतन बनाने के मामले में समय-समय पर कार्यवाही करती रही है, किन्तु समस्त राज्य सरकारों ने सभी अनुसूचित रोजगारों के संबंध में ऐसा नहीं किया है। अधिसूचित दरें भी सदैव निर्धारित मानदंडों के अनुरूप नहीं होती हैं। चूंकि असंगठित क्षेत्र के रोजगार में श्रमिकों की उपलब्धता कुल मिलाकर मांग की तुलना में अधिक होती है, अत: रोजगार की तलाश में लगे श्रमिक एक-दूसरे से प्रतिस्पर्धा करते हुए कानून के अंतर्गत अधिसूचित न्यूनतम मजदूरी दरों से कम पर रोजगार पाने की पेशकश करते हैं। इससे अक्सर उनके शोषण की स्थिति उत्पन्न हो जाती है और परिणामस्वरूप श्रम मानक अवमाननीय बन जाते हैं।

समान पारिश्रमिक कानून

हमने लगभग तीन दशक पूर्व समान पारिश्रमिक के बारे में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन कन्वेन्शन संख्या 100 का अनुमोदन किया था। 1958 में इस कन्वेन्शन का अनुमोदन करने के बाद हमें समान पारिश्रमिक अधिनियम, 1976 बनाने में 18 वर्ष लगे। हमें इस कानून के कार्यान्वयन के मामले में भी दावा करने का कोई श्रेय नहीं जाता जिसके द्वारा महिलाओं को समान महत्व के कार्य के लिये समान मजदूरी के भुगतान के रूप में उनके साथ लिंग के आधार पर भेद न किए जाने की आशा है। राज्यों से सूचना प्राप्त न होने की स्थिति में इस कानून के कार्यान्वयन पर सार्थक निगरानी रख पाना भी लगभग असंभव हो जाता है। भेजी गई सूचना भी अधिकांशत: अपूर्ण होती है।

बाल श्रम

संविधान के अनुच्छेद 24, 39 और 45 में बालक संरक्षण और विकास का विशेष तौर पर उल्लेख किया गया है। इनमें कहा गया है-

- चौदह वर्ष से कम आयु के बालकों को कारखानों, खानों तथा परिसंकटमय नियोजनों में नियोजन का प्रतिषेध।
- राज्य नीति का इस प्रकार संचालन कि सुनिश्चित रूप से बालकों की सुकुमार अवस्था का दुरुपयोग न हो; उन्हें आर्थिक आवश्यकता से विवश होकर ऐसे रोजगारों में न जाना पड़े जो उनकी आयु या शक्ति के अनुकूल न हों; उन्हें स्वतंत्र और गरिमामय वातावरण में स्वस्थ विकास के अवसर और सुविधाएं दी जाएं और शोषण से उनकी रक्षा की जाए।
- चौदह वर्ष की आयु तक नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा।

हम इस शताब्दी के पहले पच्चीस वर्षों से ही बाल श्रम की समस्या को हल करने का प्रयास कर रहे हैं। कई आयोगों और समितियों ने इस समस्या का अध्ययन किया है और अपने प्रतिवेदन प्रस्तुत किए हैं।

हमने बाल श्रम (प्रतिषेध और विनियमन) अधिनियम, 1986 का अधिनियमन किया है और राष्ट्रीय बाल श्रम नीति, 1987 अपनायी है तथा बाल अधिकार संबंधी संयुक्त राष्ट्र कन्वेंशन का अनुसमर्थन किया है। कानून के अनुसार खतरनाक रोजगार और प्रक्रियाओं में बालकों का नियोजन निषिद्ध है। गैर-खतरनाक रोजगार तथा प्रक्रियाओं में ऐसे नियोजन को नियमित किया जाना है।

परन्तु खतरनाक तथा गैर-खतरनाक रोजगार और प्रक्रियाओं में बाल श्रम व्यापक रूप से विद्यमान है। इस समय बाल श्रम की अनुमानित संख्या 17 मिलियन है। कुल बाल श्रमिकों में से 92 प्रतिशत से अधिक बाल श्रमिक 11 राज्यों में हैं।

तालिका-10.2

बाल श्रमिकों की संख्या

कार्यरत बाल श्रमिकों की संख्या

राज्य	मुख्य श्रमिक	सीमांत श्रमिक	कुल श्रमिक
आंध्र प्रदेश	15,37,293	1,24,647	16,61,940
बिहार	7,95,444	1,46,801	9,42,245
गुजरात	3,73,027	1,50,558	5,23,585
कर्नाटक	8,18,159	1,58,088	9,76,247
मध्य प्रदेश	9,97,940	3,54,623	13,52,563
महाराष्ट्र	8,05,847	2,62,571	10,68,418
उड़ीसा	3,25,250	1,27,144	4,52,394
राजस्थान	4,90,522	2,83,677	7,74,199
तमिलनाडु	5,23,125	55,764	5,78,889
उत्तर प्रदेश	11,45,087	2,64,999	14,10,086
पश्चिम बंगाल	5,93,387	1,18,304	7,11,691
कुल	84,05,081	20,47,176	1,04,52,257

स्रोत : जनगणना, 1991

हाल ही में बाल श्रम उत्सादन कार्य के लिए अपेक्षाकृत उदार बजटीय प्रावधान किए गये हैं। वर्ष 1996-97 के बजट में 40 करोड़ रुपए की धनराशि का प्रावधान किया गया था। बाल श्रम उत्सादन कार्यक्रमों में गैर-सरकारी संगठनों को व्यापक रूप से सम्मिलित किया जा रहा है। वास्तव में यह समस्या बहुत बड़ी है और इसका तेजी से समाधान नहीं हो पा रहा है। क्योंकि यह समस्या अत्यधिक गरीबी से उत्पन्न होती है।

बाल श्रम प्रथा स्वत: ही चल रही है। कार्यरत बाल श्रमिक शिक्षा प्राप्ति और कौशल विकास से वंचित रह जायेंगे और उनको रोजगार नहीं मिल सकेगा। उनके वयस्क होने पर वे भी अपने बच्चों को कार्य पर भेजकर संतोष कर लेंगे। बाल श्रम प्रणाली अपने आप में नितान्त अनैतिक है। इसके अलावा अब इसे "सामाजिक खण्ड" के जरिए अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से जोड़ने का प्रयास किया जा रहा है। बाल श्रमिकों का शोषण उत्तरोत्तर बे-रोकटोक बढ़ते जाने की संभावना है।

चाहे बंधुआ श्रम को समाप्त करने की बात हो या बाल श्रम को, न्यूनतम मजदूरी अथवा समान पारिश्रमिक लागू करने का मुद्दा सभ्य और मानवोचित श्रम मानदण्डों की दृष्टि से अत्यंत आधारभूत होने के कारण इसे राष्ट्रीय कार्यसूची में सर्वोपरि स्थान दिए जाने की आवश्यकता है।

बाल श्रम उत्सादन का मुद्दा गरीबी निवारण का मुद्दा होने के कारण सामाजिक और राजनैतिक जागरुकता तथा प्रतिबद्धता का मुद्दा है। हम यह जागरुकता और प्रतिबद्धता की भावना कैसे उत्पन्न कर सकते हैं? हम इस प्रतिबद्धता को कैसे और कितने समय में कार्य रूप देंगे।

दोहरे श्रम मानदण्ड

इन वर्षों के दौरान कार्य बल में से 10 प्रतिशत संगठित श्रम को बेहतर बनाने पर अधिक ध्यान दिया गया है। चाहे यह सरकार हो या मजदूर संघ, उन्होंने अपना लगभग सारा समय और प्रयास केवल श्रमिकों के हित के विषयों में लगा दिया है—उनकी चिन्ता के विषय रहे हैं—श्रमिकों के रोजगार की सुरक्षा, आवधिक मजदूरी संशोधन, महंगाई भत्ते का भुगतान, उपांत लाभ, सामाजिक सुरक्षा, हड़ताल, तालाबंदी और बंद। ऐसा नही है कि इन बातों की ओर ध्यान न दिया जाये। तथापि वास्तविकता यह है कि सारे देश में श्रमिक वर्ष आन्दोलन और श्रम प्रशासन में स्वत: अभिजात्य वर्ग का पदार्पण दुर्भाग्यपूर्ण, अनभिप्रेत और अनिच्छापूर्वक हुआ है।

श्रम मानक और उत्पादकता

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के मानदण्ड और मानकों के अनुसार यह परिकल्पना की गई है कि प्रत्येक व्यक्ति को पूर्ण रोजगार मिले, वह स्वतंत्र रूप से इसका चुनाव कर सके तथा यह रोजगार उत्पादक भी हो। वास्तव में प्रत्येक देश में अर्थव्यवस्था और श्रम प्रबंधन द्वारा पूर्ण नियोजन का लक्ष्य प्राप्त करने के प्रयास किए जाते हैं। स्वतन्त्र रूप से रोजगार का चुनाव करने का निहितार्थ बलात श्रम और बंधुआ मजदूरी की प्रथा समाप्त करना है। कुल मिलाकर, कठोर सरकारी कार्यवाही से लोकतन्त्र में इस प्रकार का बलात श्रम और बंधुआ मजदूरी की प्रथा चलने नहीं दी जाती है। यदि रोजगार को उत्पादक बनाना है तो यह केवल सभ्य और मानवोचित श्रम मानक प्राप्त करके सुनिश्चित नहीं किया जा सकता। ऐसे श्रम मानकों का कार्यान्वयन उत्पादकता पर जोर देने के साथ-साथ किया जाना चाहिए। उत्पादकता का आशय मशीनों तथा श्रम की उत्पादकता से है। वास्तव में प्रबुद्ध कार्यकुशल प्रबन्धक अनेक उपायों द्वारा जिनमें प्रौद्योगिकी का निवारक अनुरक्षण तथा सुधार करना शामिल है मशीनों की उत्पादकता का उच्च स्तर बनाये रखने का प्रयास करते हैं। ऐसे उद्यम भी हैं जहां प्रबन्ध व्यवस्था खराब है और मशीनों की उत्पादकता की ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जाता है। परन्तु यह भी अनुभव किया गया है कि मानदंडों के अनुसार श्रम मानकों का प्रावधान करने से हमेशा उत्पादकता का वांछित स्तर प्राप्त नहीं किया जा सकता है। प्राय अनेक उद्योगों में मजदूरी और अन्य लाभों में संशोधन करने के लिए श्रमिकों और प्रबंधकों के बीच किये जाने वाले दीर्घावधि समझौते उत्पादकता की पर्याप्त परवाह किये बिना किये जाते हैं

वास्तव में उत्पादकता के उच्च स्तर को अंगीकार करने के बारे में बाल श्रमिकों की अनिच्छा भी रहती है। इसका परिणाम यह होता है कि रोजगार उत्पादक नहीं होता है जैसा कि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के मानदंडों में परिकल्पित है। इसका औद्योगिक उद्यमों की वाणिज्यिक अर्थक्षमता पर गंभीर प्रभाव पड़ता है जिसकी परिणति यह होती है कि अतिरिक्त धन सृजित किए बिना मजदूरी बिलों का भुगतान करना पड़ता है और वह भी अपनी भुगतान क्षमता से अधिक। क्या हम इस देश में ऐसी प्रबंधन व्यवस्था तथा कार्य संस्कृति का विकास कर सकते हैं, जिसके द्वारा श्रम मानकों का संवर्धन और प्रवर्तन साथ-साथ किया जा सके और उत्पादकता में वृद्धि हो सके। इस संदर्भ में हमें यह भी ध्यान में रखना होगा कि कुछ अन्य एशियाई देशों की तुलना में भारत का उत्पादकता स्तर काफी कम है।

तालिका-10.3

भारत में श्रम उत्पादकता : एक अंतर्राष्ट्रीय तुलनात्मक विवरण

देश/वर्ष	1985	1986	1987	1988	1989	1990	1991	1992	1993	1994
कृषि क्षेत्र										
चीन गणराज्य	2768.7	2725.0	3099.4	3449.3	3583.0	3663.3	3629.9	3617.0	4040.7	3991.4
भारत	341.8	347.1	345.0	329.8	294.4	277.1	188.1	165.3	130.4	138.3
इन्डोनेशिया	593.7	552.4	548.6	549.4	557.6	554.1	554.5	576.0	616.0	609.9
जापान	6489.5	6625.5	6961.5	6891.1	7648.6	7918.7	7580.5	8298.4	7657.4	8381.0
कोरिया	3154.8	3366.6	3233.7	3619.4	3630.7	3621.6	3902.2	4238.1	4376.2	4633.5
मलयेशिया	3680.7	3734.3	3849.8	4030.8	4402.8	4662.4	4823.3	5354.8	5615.5	5776.9
पाकिस्तान	550.3	544.2	580.6	568.5	587.3	588.8	688.0	711.9	660.7	659.9
फिलीपीन्स	779.2	761.0	813.2	841.4	872.8	848.0	841.6	808.9	802.3	817.0
थाइलैंड	347.9	347.8	349.4	351.8	366.7	365.1	406.2	403.4	428.2	—
निर्माण क्षेत्र										
चीन गणराज्य	9322.5	10190.7	10764.1	11294.9	11737.4	12315.2	13420.2	13925.0	14860.4	15689.1
भारत	1105.8	1184.5	1229.6	1212.4	1052.9	1101.4	749.2	614.2	504.1	522.3
इन्डोनेशिया	2408.4	2721.2	2900.2	3151.1	2813.5	3073.3	3290.0	3489.2	3652.1	3915.1
जापान	26852.7	26577.3	28162.2	29804.7	31017.8	32605.9	33260.2	32436.2	31825.0	32064.2
कोरिया	7898.8	8643.0	8952.0	9636.3	9602.6	10473.6	11235.5	11210.5	13305.3	14564.3
मलयेशिया	7198.8	7686.9	8149.1	8942.4	8607.4	8748.6	9036.2	8955.4	9512.9	10121.2
पाकिस्तान	1134.8	1264.0	1202.5	1441.9	1456.7	1493.0	1703.3	1758.4	2022.5	2070.7
फिलीपीन्स	4023.8	4133.0	4035.3	4065.6	4190.9	4517.1	4115.6	3797.5	3968.9	3965.2
सिंगापुर	14208.0	15597.9	16736.9	17753.8	18580.1	17707.1	18470.3	18728.1	10844.1	23919.1
थाइलैंड	4125.5	4540.3	4467.2	5214.7	5369.0	5508.7	5587.6	5984.0	6065.9	—
व्यापार क्षेत्र										
चीन गणराज्य	6209.9	6478.2	7010.9	7259.0	7680.2	8426.2	8791.1	9369.9	10039.6	10324.5
*भारत	1299.9	1404.0	1426.6	1330.2	1110.0	1076.6	719.8	609.3	494.3	526.5
जापान	16707.8	16851.1	16870.7	17340.4	18435.5	19386.6	19970.4	20292.7	20045.8	19937.1
कोरिया	3797.1	4293.9	4743.7	5209.6	5305.3	5537.9	5786.8	5614.2	5358.3	5407.5
मलयेशिया	4118.6	3456.0	3451.4	3409.6	3672.0	3951.4	4455.0	4876.5	5329.3	5566.8
सिंगापुर	11125.9	11361.4	11950.7	13719.7	14493.6	13972.2	14797.4	15041.2	16360.1	16745.3

*इसमें होटल और रेस्टोरेन्ट भी शामिल हैं।

स्रोत: एशियाई उत्पादकता संगठन: उत्पादकता-खंड-37 संख्या 3
अक्तूबर-दिसम्बर, 1996

व्यावसायिक सुरक्षा

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि हमने व्यावसायिक सुरक्षा से संबंधित बातों की ओर ध्यान देने के लिए सतत् प्रयास किए हैं। लेकिन 1984 की भोपाल गैस त्रासदी हमारे लिए एक कलंक बनी हुई है। 1996 तक उपलब्ध आंकड़ों से भी पता चलता है कि पेट्रोलियम और रसायनिक उद्योगों में आग, विस्फोट और विषाक्त पदार्थों के छोड़े जाने के कारण निरन्तर घातक और गम्भीर दुर्घटनायें होती रहीं हैं।

कोयला खानों में मृत्युदर (प्रति 1000 कार्यरत व्यक्तियों की दुर्घटना के कारण मृत्यु) 0.94 से घटकर वर्ष 1991-95 में 0.36 रह गई है। इस अवधि में कोयला खानों से भिन्न खानों में यह दर 0.76 से घटकर 0.35 रह गई है। यह 1951 से लेकर 1994 तक उत्पादन में भारी वृद्धि को ध्यान में रखते हुए वास्तव में एक उल्लेखनीय उपलब्धि है जिसमें 1994 में लगभग 270 मिलियन टन कोयले, 12 मिलियन टन तेल, 4700 मिलियन घन मीटर गैस और 175 मिलियन टन अन्य खनिजों का उत्पादन हुआ जबकि 1951 में 35 मिलियन टन कोयले का उत्पादन हुआ, तेल और गैस का कोई उत्पादन नहीं हुआ और अन्य खनिजों का 10 मिलियन टन से भी कम उत्पादन हुआ। तथापि 1951 से लेकर अब तक खानों में 28 घटनायें हो चुकी हैं, जिनकी औसत दर प्रति वर्ष 1.8 है।

हाल ही में जो दो प्रमुख खान दुर्घटनायें हुईं हैं उनके नाम हैं न्यू केंडा और गैसलिटेंड जिनमें क्रमशः 55 और 64 श्रमिक मारे गए थे।

द्वितीय राष्ट्रीय श्रम आयोग

उद्योगों के विविधीकरण, नई प्रौद्योगिकियों और प्रक्रियाओं के अपनाये जाने और श्रमिकों में नई दक्षताओं की मांग के कारण रोजगार की स्थिति और कार्य करने के परिवेश में पचास वर्षों के दौरान भारी परिवर्तन आया है। रोजगार के क्षेत्र में एक दूसरी महत्वपूर्ण बात यह हुई है कि काम में महिलाओं की भागीदारी बढ़ी है। आर्थिक सुधारों और संस्थागत समायोजन का एक सामाजिक पहलू यह है कि इनका रोजगार की स्थिति पर प्रभाव पड़ा है। इन सब का श्रम मानकों पर भी प्रभाव पड़ा है जिनकी व्यापक रूप से जांच किए जाने की आवश्यकता है। प्रथम राष्ट्रीय श्रम आयोग (1966-69) के बाद से लगभग तीन दशक बीत चुके हैं। भारतीय श्रम सम्मेलन में 1992 में द्वितीय राष्ट्रीय श्रम आयोग गठित किए जाने की सिफारिश की थी। क्या इस सिफारिश को कार्यान्वित नहीं किया जाना चाहिए था?

11

सामाजिक सुरक्षा

हमारे पास चिकित्सा-देखभाल, रोजगार के दौरान हुई दुर्घटना के संबंध में मुआवजा, मातृत्व सुरक्षा, सम्बन्ध-विच्छेद मुआवजा, भविष्य निधि आदि विभिन्न सुरक्षोपाय किए जाने हेतु श्रम कानूनों का प्रावधान है। सरकार द्वारा हाल ही में जो अत्यन्त महत्वपूर्ण उपाय कार्यान्वित किया गया है वह है कर्मचारी भविष्य निधि कानून के अन्तर्गत औद्योगिक कर्मचारियों के लिए पेंशन। परन्तु अधिकतर संगठित क्षेत्र के कामगारों को ही इसका लाभ मिल रहा है। असंगठित क्षेत्र में कार्यरत कतिपय श्रेणियों के लोगों पर लागू वर्तमान सामूहिक बीमा एवं कल्याण निधि योजनाओं से न्यूनतम सामाजिक सुरक्षा लाभ ही मिलते हैं। 1995 में प्रारम्भ किए गए गरीबी रेखा से संबंधित राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम वृद्ध, असहाय एवं गर्भवती महिलाओं को कुछ राहत प्रदान करते हैं। कर्मचारी भविष्य निधि संगठन (ई पी एफ ओ) और कर्मचारी राज्य बीमा निगम (ई एस आई) जैसे देश के प्रमुख सामाजिक सुरक्षा संगठनों द्वारा दी जा रही सामाजिक सुरक्षा सेवाओं में पर्याप्त सुधार किये जाने की आवश्यकता है। विद्यमान कानूनों के ढांचे के अन्तर्गत स्वायत्त निधियों के माध्यम से दी जा रही विकेन्द्रित सेवाओं हेतु नई रीतियों की खोज की जा सकेगी।

संवैधानिक प्रावधान

संविधान के अनुच्छेद 41 में कहा गया है, ''राज्य अपनी आर्थिक सामर्थ्य और विकास की सीमाओं के भीतर काम पाने के, शिक्षा पाने के और बेकारी, बुढ़ापा, बीमारी और नि:शक्तता तथा अनर्ह अभाव की दशाओं में लोक सहायता पाने के अधिकार को प्राप्त कराने का प्रभावी उपबन्ध करेगा।''

उपरोक्त संवैधानिक प्रावधान में परिकल्पित परिस्थितियों में ऐसी परिस्थितियां भी शामिल हैं, जो अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की कुछ महत्वपूर्ण कन्वेंशनों के अन्तर्गत श्रमिक-जनों की सामाजिक सुरक्षा के लिए आधार बनती हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय सामाजिक सुरक्षा कन्वेंशन्स

वर्ष 1952 की सामाजिक सुरक्षा कन्वेंशन संख्या 102 में चिकित्सीय लाभों और उत्तरजीवी लाभों का प्रावधान है। रुग्णता, बेरोजगारी, वृद्धावस्था, रोजगार अवधि में चोट, मातृत्व तथा अशक्तता की स्थितियां सुविधा के लिये अर्हकारी हैं।

वर्ष 1957 की सेवा समाप्ति कन्वेंशन संख्या 158 में रोजगार से हटाए गए श्रमिकों को वियोजन लाभ, बेरोजगारी बीमा और अन्य प्रकार की सामाजिक सुरक्षा दिये जाने का प्रावधान है।

वर्ष 1988 की रोजगार संवर्धन और बेरोजगारी से सुरक्षा संबंधी कन्वेंशन संख्या 168 में पूर्ण बेरोजगारी तथा आंशिक बेरोजगारी के कारण होने वाले आय के नुकसान से सुरक्षा का प्रावधान है—जिसके अंतर्गत अंशदायी वित्तपोषण अथवा गैर-अशंदायी वित्तपोषण (अर्थात् जो कर्मचारी द्वारा अंशदान किये जाने अथवा न किये जाने पर आधारित है) के जरिए सुरक्षा प्रदान किए जाने की व्यवस्था है।

वर्ष 1925 और 1934 की कर्मकार प्रतिकर (उपजीविकाजन्य रोग) कन्वेंशन्स 18 और 118 में श्रमिक-जनों को उपजीविकाजन्य रोग होने की स्थिति में मुआवजा देने का प्रावधान है।

भारत के सामाजिक सुरक्षा संबंधी कानून और कार्यक्रम

यद्यपि भारत ने केवल उपर्युक्त कर्मकार प्रतिकर कन्वेंशन की ही पुष्टि की है तथा अन्य सामाजिक सुरक्षा कन्वेंशनों की पुष्टि नहीं की है तथापि हमारे यहां सामाजिक सुरक्षा संबंधी ऐसे राष्ट्रीय कानून प्रभावी हैं, जो काफी हद तक अन्तर्राष्ट्रीय मापदण्डों के अनुकूल हैं।

कर्मचारी भविष्य निधि और प्रकीर्ण उपबन्ध अधिनियम, 1952 के अंतर्गत रोजगार छूटने पर होने वाली आय की हानि की स्थिति में श्रमिक-जनों को सुरक्षा प्रदान करने हेतु अंशदायी भविष्य निधि की स्थापना की गई है; 177 उद्योगों के लगभग 2 करोड़ कर्मचारी इस कानून की परिधि में आते हैं। वर्ष 1995 से भविष्य निधि अधिनियम के अंतर्गत आने वाले श्रमिकों को पेंशन देने हेतु भविष्य निधि राशि का उपयोग किया जा रहा है। कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 के अंतर्गत लगभग

70 लाख कर्मचारियों को तथा 2 करोड़ 80 लाख लाभार्थियों को चिकित्सा सुविधा तथा नकद सहायता प्रदान की जाती है। इस नियम के अधीन चिकित्सा सुविधा अंशदान के आधार पर उपलब्ध कराई जाती है। उपदान संदाय अधिनियम, 1972 के अंतर्गत कर्मचारियों को प्रत्येक एक वर्ष की सेवा पूरी होने पर 15 दिनों का उपदान दिया जाता है। प्रसूति प्रसुविधा अधिनियम, 1961 में कामकाजी महिलाओं को प्रसूति की अवधि में वेतन सहित छुट्टी दिए जाने का प्रावधान है। औद्योगिक विवाद अधिनियम में वियोजन-लाभ, जबरी छुट्टी, अस्थायी रूप से हटाये जाने/रोजगार समाप्त कर देने, और छटनी किये जाने पर मुआवजा दिये जाने का प्रावधान है। कर्मचारी भविष्य निधि तथा कर्मचारी राज्य बीमा योजनाएं वास्तव में ऐसी दो विहित योजनाएं हैं, जो विश्व की सबसे बड़ी सामाजिक सुरक्षा योजनाओं में गिनी जाती हैं। दिनांक 31.3.1996 की स्थिति के अनुसार भविष्य निधि संबंधी निवेश की कुल राशि 52,000 करोड़ रुपयों से अधिक है तथा दिनांक 31.10.1996 की स्थिति के अनुसार कर्मचारी राज्य बीमा योजना संबंधी निवेश की कुल राशि लगभग 2,700 करोड़ रुपये है।

सामाजिक सुरक्षा सेवा उपलब्ध कराया जाना

ये योजनाएं काफी बृहत् तो हैं ही, इनसे लाभान्वित होने वाले श्रमिकों को उक्त योजनाओं के कार्यान्वयन के संबंध में गंभीर शिकायतें हैं। जहां तक भविष्य निधि तथा पेंशन का सवाल है, लोगों की मुख्य शिकायतें दावों के निपटान में होने वाले विलंब से संबंधित होती हैं। कर्मचारी राज्य बीमा योजना पर प्रशासन की दोहरी प्रणाली का कुप्रभाव है। कर्मचारी राज्य बीमा निगम चिकित्सा संबंधी ढांचागत सुविधाओं को सृजित करता है, उन्हें राज्य सरकारों को उपलब्ध कराता है और उन्हें संचालित करने के लिये धनराशि जारी करता है। यह निगम चिकित्सा हेतु नकद सहायता भी प्रदान करता है। राज्य सरकारें अस्पतालों को चलाती हैं और उनकी हमेशा यह शिकायत रहती है कि उनका खर्च निगम द्वारा दी जाने वाली राशि से अधिक रहता है। लाभार्थियों को भी प्राय: यह शिकायत रहती है कि अस्पतालों का रखरखाव ठीक ढंग से नहीं होता है और इनमें आवश्यक दवाओं की भी कमी बनी रहती है।

इन सामाजिक सेवा योजनाओं को चलाये जाने के संबंध में मुख्य बात यह सुनिश्चित करना है कि ये सेवाएं पूर्ण दक्षता के साथ उपलब्ध कराई जायें। विश्व के अनेक भागों में विभिन्न उद्योगों/उद्यमों में कार्यरत लोग सरकार के व्यापक सांविधिक विनियमों के अध्यधीन एकजुट होकर स्वयंमेव अपनी सामाजिक सुरक्षा निधियों की स्थापना करते हैं, स्वायत्तपूर्ण तरीके से इन निधियों का किफायती अर्थक्षम और लाभप्रद निवेश एवं प्रबन्धन करते हैं ताकि उनके सुरक्षित और सुव्यवस्थित प्रशासन को सुनिश्चित किया जा सके। वस्तुत: हमारे भविष्य निधि और कर्मचारी राज्य बीमा कानूनों में इस आशय के प्रावधान हैं जिनके अन्तर्गत इस तरह की विकेन्द्रीकृत व स्वायत्त निधियों की स्थापना को स्वीकृति प्रदान की जा सकती है। लेकिन सामाजिक सुरक्षा नौकरशाही को समाप्त करने के लिये इस तरह के दृष्टिकोण में इच्छा शक्ति और प्रतिबद्धता का होना अपेक्षित है।

असंगठित श्रमिक और सामाजिक सुरक्षा

मोटे तौर पर, प्रमुख योजनाओं अर्थात् भविष्य निधि और कर्मचारी राज्य बीमा योजनाओं के अंतर्गत सामाजिक सुरक्षा का लाभ केवल संगठित क्षेत्र के श्रमिकों को ही उपलब्ध है, जो श्रमिकों की कुल संख्या का 10 प्रतिशत है। असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों को, मोटे तौर पर उक्त लाभ उपलब्ध नहीं हैं क्योंकि उनके मामले में नियोक्ता-कर्मचारी संबंध अपेक्षाकृत अनिश्चित होते हैं। इन लाभों को हासिल करने के लिये इस संबंध का होना आवश्यक है क्योंकि इसी के माध्यम से नियोक्ता द्वारा अंशदान सुनिश्चित किया जा सकता है।

भारतीय जीवन बीमा निगम द्वारा अपने और भारत सरकार के संसाधनों से सामाजिक सुरक्षा निधि का सृजन करके 23 अलग-अलग पेशों के असंगठित श्रमिकों के लिये समूह बीमा योजनाएं चलाई जा रही हैं। भूमिहीन खेतिहर श्रमिकों के लिये जीवन बीमा निगम की एक अन्य योजना के दायरे में देश के लगभग एक करोड़ बीस लाख श्रमिक आते हैं। जीवन बीमा निगम की एक अन्य बीमा योजना में समेकित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अंतर्गत लाभार्थियों को नौकरी करने वाले व्यक्ति की मृत्यु होने या परिसंपत्तियों के नष्ट होने की दशा में उनके परिवारों को ऋणग्रस्तता और दरिद्रता से सुरक्षा प्रदान की जाती है। इस योजना के अंतर्गत लगभग श्रमिकों को लाया जा चुका है। हालांकि इन योजनाओं की परिकल्पना अच्छे तरीके से की गई है, तथापि सबसे निचले स्तर पर समुचित प्रबन्धकीय व्यवस्थाओं की कमी इनकी कमजोरी रही है। जीवन बीमा निगम के अधिकारियों और जिले के अधिकारियों के बीच सामंजस्यपूर्ण व साहचर्यपूर्ण कार्रवाई की आवश्यकता है।

कल्याण निधि संबंधी योजनाएं

1946 से शुरू करके श्रम मंत्रालय ने सिनेमा तथा बीड़ी मजदूरों के अतिरिक्त लौह अयस्क, मैंगनीज अयस्क, क्रोम अयस्क और अभ्रक खानों में कार्यरत लगभग दो लाख श्रमिकों के लिये कई कल्याण निधि संबंधी योजनाएं लागू की हैं। इन योजनाओं के लिये धनराशि अयस्कों/उत्पादों के निर्यात/घरेलू बिक्री पर संग्रहित उपकर से प्राप्त होती है। 1.4.1996 की स्थिति के अनुसार इन निधियों में लगभग 60 करोड़ रुपये की राशि थी। इन निधियों के संसाधनों का प्रयोग श्रमिकों के लिये कतिपय सुविधाओं जैसे चिकित्सा सुविधा, आवास, शैक्षणिक रियायतें इत्यादि की व्यवस्था करने हेतु किया जाता है। राज्य सरकारों से इस प्रकार की निरन्तर शिकायतें मिलती रही हैं कि उनके क्षेत्र से संग्रहित उपकर की तुलना में उनके क्षेत्र के श्रमिकों को कम

लाभ उपलब्ध कराये जाते हैं। इन निधियों का प्रचालन भारत सरकार के बजट के माध्यम से होता है, प्रत्येक वर्ष का व्यय उस वर्ष में संग्रहित उपकर राजस्व के बराबर ही होता है; यद्यपि इसमें संचित आरक्षित राशि उपलब्ध होती है। विकेन्द्रीकृत तंत्र के द्वारा इन निधियों के प्रबन्धन की भी आवश्यकता है।

विभिन्न राज्यों द्वारा अलग-अलग रोजगारों में लगे श्रमिकों के लिये अपनी ही कल्याण योजनाएं बनाई गई हैं जैसे कृषि श्रमिकों और निर्माण कार्य में लगे श्रमिकों के लिये कर्नाटक में ''आशा किरण योजना'' तथा मछुआरों, नारियल जटा उद्योग में लगे श्रमिकों, निर्माण कार्य में लगे श्रमिकों इत्यादि के लिये केरल की योजनाएं। यद्यपि इन योजनाओं में से कुछ सफल रही हैं तथापि इनका असमानुपाती प्रशासनिक खर्च इनके कार्यान्वयन में मुख्य समस्या रही है।

आश्रितों के लिये सामाजिक सुरक्षा

कई वर्षों से अनेक राज्यों द्वारा निर्धनों और वृद्ध व्यक्तियों, अनाथों, विधवाओं, विकलांगों इत्यादि के लिये पेंशन योजनाएं चलाई जा रही हैं। भारत सरकार के द्वारा 1995 में राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम शुरू किया गया, जिसके अन्तर्गत तीन योजनाएं चलाई जा रही हैं—राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन योजना, राष्ट्रीय परिवार हित योजना और राष्ट्रीय मातृत्व लाभ योजना। ये योजनाएं गरीबी रेखा से संबद्ध योजनाएं हैं। गरीबी रेखा के नीचे जीवन-बसर करने वाले लोग इन योजनाओं के लाभार्थी होंगे, 65 वर्ष या उससे अधिक आयु वाले लगभग पांच करोड़ तीस लाख वृद्ध व्यक्तियों, लगभग 5 लाख ऐसे परिवारों को जिनमें रोटी कमाने वाले की मृत्यु हो गई है और लगभग 45 लाख मातृत्व मामलों में सहायता देने हेतु भारत सरकार द्वारा राज्य सरकारों को 900 करोड़ रु. की राशि दी गई है। यद्यपि यह कार्यक्रम एक उचित उपाय है तथापि देश में उच्च निर्भरता अनुपात को देखते हुए राज्यवार लक्ष्य निर्धारण प्रणाली (प्रत्येक राज्य के लाभार्थियों के लिये निर्धारित राशि का निर्धारण) को युक्तिसंगत बनाये जाने की पुरजोर आवश्यकता है। चूंकि इस कार्यक्रम के अंतर्गत चलाई जा रही योजनाएं गरीबी रेखा से संबद्ध हैं और विभिन्न राज्यों में गरीबी रेखा अलग-अलग है, इसलिये इन निर्धारित लक्ष्यों में गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोगों की संख्या भी परिलक्षित होनी चाहिये।

12

गरीबी

भारत में आयोजना के आरम्भ से ही गरीबी पर नियंत्रण पाने के दृढ़ और सतत् प्रयास होते रहे हैं। गरीबी उन्मूलन के लिए किये गये सीधे प्रहारों के बावजूद भी सफलता नहीं मिल पाई है। कई प्रकार के रोजगार उपक्रम शुरू किए गए हैं। गरीबी की रेखा के नीचे जीवन बसर कर रही जनसंख्या का राष्ट्रीय औसत बढ़कर 38 प्रतिशत तक हो गया है और 32.34 करोड़ लोग इस स्थिति में रह रहे हैं। योजना आयोग की संशोधित पद्धति के अनुसार राज्यों के बीच गरीबी की संख्या 1973-74 में 42.49 प्रतिशत की अवकलन की तुलना में 1993-94 में बढ़कर 48.61 प्रतिशत की अवकलन तक पहुंच गई है। गरीबी राष्ट्र की सबसे बड़ी चिन्ता बनी हुई है।

पहली पंचवर्षीय योजना के प्रारंभ से ही ग्रामीण विकास और गरीबी से ग्रस्त ग्रामीण जनता के उत्थान के लिए अनवरत प्रयास किए गए हैं। विकास प्रयोजनों के लिए उपजिला प्रशासन के आधारभूत ढांचे के साथ शुरू हुए सामुदायिक विकास आंदोलन से अनेक विशेष योजनाएं और कार्यक्रम सामने आए। गत अनेक वर्षों में इन योजनाओं और कार्यक्रमों से और योजनाएं बनीं जिनका लक्ष्य निश्चित तरीके से गरीबी पर सीधा प्रहार करना था।

बाक्स 12.1 : गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों का विस्तार

1952	सामुदायिक विकास आंदोलन की शुरूआत; सामुदायिक विकास आंदोलन ग्रामीण विकास हेतु सही एवं समेकित दृष्टिकोण था, कृषि, पशुपालन, ग्रामीण उद्योग, स्वास्थ्य और महिलाओं का विकास ऐसे क्षेत्र थे जिनमें साथ-साथ विकास किया जाना था।
1957	बलवंतराय समिति के प्रतिवेदन के अनुसरण में विकेन्द्रीकृत प्रशासन के लिए पंचायती राज की अवधारणा विकसित की गई (1957 और 1967 के बीच देश के विभिन्न भागों में पंचायती राज संस्थाएं स्थापित की गई)
दूसरी पंचवर्षीय योजना के अंत तक (1961)	5000 राष्ट्रीय विस्तार सेवा प्रखण्ड बनाए गए।
1960 का दशक	कई राज्यों में भूमि सुधार उपाय शुरू किए गए अर्थात् मध्यवर्ती काश्तकारी का उन्मूलन, काश्त-कारी सुधार, भूमि जोत की अधिकतम सीमा तय करना, फालतू भूमि का वितरण, भूमि जोत की चकबंदी आदि।
1970 के दशक के प्रारंभ में	लघु कृषक विकास अभिकरणों, सीमांत कृषक विकास अभिकरण की स्थापना, ग्रामीण रोजगार हेतु त्वरित योजना, काम के बदले अन्न कार्यक्रम, सूखा प्रवण क्षेत्र कार्यक्रम और मरुस्थल विकास कार्यक्रम। इन कार्यक्रमों का आशय अर्थव्यवस्था के ग्रामीण आधार को सुदृढ़ करना, ग्रामीण बुनियादी ढांचे (सड़कें और अन्य सामुदायिक परिसम्पत्तियां) का विकास करना और श्रम प्रधान निर्माण कार्यों आदि के माध्यम से रोजगार का सृजन करना था।
1974-79 (पांचवीं पंचवर्षीय योजनावधि)	न्यूनतम आवश्यकताओं को पूरा करने पर जोर दिया गया।

1980-85 (छठी पंच-वर्षीय योजनावधि)	प्रत्यक्ष लक्षित गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम शुरू किए गए; समेकित ग्रामीण विकास कार्यक्रम (आई. आर.डी.पी.) को व्यापक बनाया गया। गरीबी रेखा से नीचे रह रहे परिवारों पर बैंक ऋण और सरकारी आर्थिक सहायता दोनों के माध्यम से ध्यान दिया गया। ग्रामीण क्षेत्रों में स्व-रोजगार के लिए युवाओं को प्रशिक्षण देने और महिलाओं और बच्चों का विकास करने के कार्यक्रम आरंभ किये गए, दूसरा कार्यक्रम गरीबी रेखा से नीचे रह रहे परिवारों की महिलाओं के उत्थान के लिए था। मजदूरी रोजगार कार्यक्रम राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम और राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारन्टी कार्यक्रम शुरू किए गए।
1985-90 (सातवीं पंचवर्षीय योजनावधि)	अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जनजातियों और बंधुवा मजदूरों के लिए आवास की व्यवस्था करने हेतु ग्रामीण रोजगार गारन्टी कार्यक्रम के एक भाग के रूप में इन्दिरा आवास योजना आरंभ की गई। ग्रामीण रोजगार गारन्टी कार्यक्रम के एक भाग के तौर पर सामाजिक वानिकी कार्यक्रम भी शुरू किया गया। बाद में राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम और ग्रामीण रोजगार गारन्टी कार्यक्रम को मिलाकर जवाहर रोजगार योजना में परिवर्तित कर दिया गया। पेयजल संबंधी प्रौद्योगिकी मिशन शुरू किया गया।
1992-97 (आठवीं पंचवर्षीय योजनावधि)	तीन चरणों वाली पंचायत राज प्रणाली और लोकतांत्रिक नगर-पालिका शासन की स्थापना के लिए 73वें और 74वें संविधान संशोधन पारित किए गए। एक वर्ष में 100 दिन काम प्रदान करने के लिए रोजगार सुरक्षा योजना प्रारम्भ की गई। गरीब परिवारों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने के लिए राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम, जिसके घटक राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन योजना, राष्ट्रीय परिवार प्रसुविधा योजना, राष्ट्रीय मातृ प्रसुविधा योजना है, आरंभ किया गया। गंगा कल्याण योजना भूमिगत जल पर आधारित सिंचाई सुविधाएं उपलब्ध कराने के लिए लागू की गई।

गरीबी की रेखा से नीचे रह रहे लगभग 7 करोड़ 60 लाख लोग शहरी क्षेत्रों में रहते हैं। उनकी हालत गांवों में रह रहे गरीब लोगों से भी बदतर है। शहरों में रह रहे गरीब लोगों के लाभ के लिए अनेक पूरक गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम भी शुरू किए गए हैं। इन कार्यक्रमों को शहरी विकास मंत्रालय द्वारा कार्यान्वित किया जा रहा है। मानव संसाधन विकास मंत्रालय (महिला और बाल विकास विभाग) और इसके क्षेत्रीय संगठन गरीब महिलाओं के लाभ के लिए कार्यक्रमों को कार्यान्वित करते हैं।

गरीबी की स्थिति

भारत में गरीबी संबंधी आकलनों का प्रयोग विकास के संकेतक के रूप में किया गया है। हाल में इन आकलनों का प्रयोग संसाधनों के आबंटन के लिए किया गया है जिनका तात्पर्य अर्थव्यवस्था के प्रतिस्पर्द्धात्मक क्षेत्रों के बीच गरीबी को दूर करना है। योजना आयोग ने छठी पंचवर्षीय योजना से ही देश के विभिन्न क्षेत्रों में गरीबी के प्रभाव क्षेत्र के बारे में विचार करना शुरू कर दिया था। सत्तर के दशक के प्रारम्भ से गरीबी की रेखा खाद्य वस्तुओं, जिनकी खपत शहरी क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के लिए 2100 किलो कैलोरी और ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के लिए 2400 किलो कैलोरी के ऊर्जा पर्याप्तता के मानदंड को सुनिश्चित करेगी, की खरीद के लिए अपेक्षित व्यय पर स्थिर की गई थी। इसी आधार पर वर्ष 1973-74 की कीमतों पर ग्रामीण क्षेत्रों के लिए प्रतिमाह अपेक्षित प्रति व्यक्ति व्यय 49.09 रुपए और शहरी क्षेत्रों के लिए 56.64 रुपए पर स्थिर था। बाद के वर्षों के लिए गरीबी की रेखा से नीचे रह रहे लोगों की जनसंख्या का अनुपात राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण से प्राप्त उपभोक्ता व्यय संबंधी आंकड़ों के आधार पर आंका गया था जिसमें व्यय को 1973-74 के उपभोक्ता मूल्यों में परिवर्तित किया गया था। इस सूत्र के अनुसार कुछ राज्यों में गरीबी का अनुपात तेजी से गिरता हुआ दिखाई दिया। तथापि अनेक राज्यों ने इस विधि पर प्रश्न चिन्ह लगाए और यह तर्क दिया कि उनकी गरीबी के अनुपात में वास्तव में उतनी कमी नहीं आई है जितनी बताई गई है। अत: योजना आयोग ने लाकड़ावाला की अध्यक्षता में एक विशेषज्ञ दल का गठन किया। इस दल ने मामले पर विचार करने के पश्चात् ऊर्जा पर्याप्तता के सिद्धांत को स्वीकार किया लेकिन गरीबी का आकलन करने के लिए एक संघीय आयाम भी लागू किया। इस दल ने गरीबी के अनुपात का आकलन करने हेतु अलग-अलग राज्यों के लिए अलग-अलग मानदंड अपनाने की भी सिफारिश की। इस दल ने विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि श्रमिकों के लिए उपभोक्ता मूल्य सूचकांक और शहरी क्षेत्रों के लिए शहरी गैर-श्रमिक कर्मचारियों और औद्योगिक श्रमिकों के उपभोक्ता मूल्य सूचकांक का प्रयोग करने की सिफारिश की। इस आधार पर उन्होंने प्रत्येक राज्य के लिए अलग-अलग गरीबी की रेखा पुनर्निर्धारित की। इससे विभिन्न राज्यों में गरीबी के बदले हुए अनुपातों के बारे में पता चला। राष्ट्रीय औसत 38 प्रतिशत (1993-94) होने का पता चला। कुल मिलाकर वर्ष 1993-94 में गरीबी की रेखा से नीचे रह रहे लोगों की संख्या 323.4 मिलियन होने का पता चला जबकि योजना आयोग की पूर्ववर्ती विधि के अनुसार 149.8 मिलियन का अंदाजा लगाया गया था। आयोग ने लाकड़ावाला दल द्वारा तैयार किए गए गरीबी संबंधी आकलनों की पुनरीक्षा की। इसने शहरी और श्रमिक कर्मचारियों के उपभोक्ता मूल्य सूचकांक को गणना में शामिल नहीं किया।

इसके परिणामस्वरूप शहरी क्षेत्रों में गरीबी की रेखा से नीचे जीवन-यापन करने वाले लोगों की संख्या में 31 लाख की कमी आई।

गरीबी रेखा के स्तर के संबंध में तुलनात्मक चित्रण जो पहले

के स्तर से संबंधित हैं, नीचे दिया गया है।

तालिका 12.1

गरीबी रेखा

(प्रति माह प्रति व्यक्ति व्यय) 1993-94

योजना आयोग की पुरानी कार्यविधि
ग्रामीण 229.14 रुपये
शहरी 264.38 रुपये

लकड़ावाला विशेषज्ञ दल का सूत्र
163.01 रु. (आंध्र प्रदेश के लिए) से 243.84 रु. (केरल के लिए)
224.11 रु. (जम्मू तथा कश्मीर के लिए) से 322.69 रु. (महाराष्ट्र के लिए)

योजना आयोग द्वारा यथासंशोधित लकड़ावाला विशेषज्ञ दल का सूत्र
163.01 रु. (आंध्र प्रदेश के लिए) से 243.84 रु. (केरल के लिए)
212.42 रु. (असम के लिए) से 328.56 रु. (महाराष्ट्र के लिए)

स्रोत : योजना आयोग

नीचे चार तालिकाएं प्रस्तुत की गई हैं जिनमें 1973-74 से प्रारम्भ करते हुए पांच वर्षों के लिए निर्धनता संबंधी राज्यवार विस्तृत आंकड़े दिए गए हैं। तालिका 12.2 में गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोगों और राज्यों की जनसंख्या के अनुपात में पूर्ण आंकड़ें प्रस्तुत किए गए हैं। तालिका 12.3 में अखिल भारतीय औसत की तुलना में विभिन्न राज्यों में निर्धनता संबंधी आंकड़े (गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोगों का अनुपात) दिए गए हैं। तालिका 12.4 और 12.5 में ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में क्रमशः मासिक प्रति व्यक्ति आय का ब्यौरा दिया गया है।

तालिका 12.2

1973-74 के बाद के दो दशकों में गरीबी में कमी

(गरीबी की रेखा से नीचे रह रहे लोगों के अनुपात में कमी का राज्यवार रुख)

राज्य	व्यक्तियों की संख्या 1973-74		व्यक्तियों की संख्या 1977-78		व्यक्तियों की संख्या 1983		व्यक्तियों की संख्या 1987-88		व्यक्तियों की संख्या 1993-94	
	(लाख)	प्रतिशत	(लाख)	प्रतिशत	(लाख)	प्रतिशत	(लाख)	प्रतिशत	(लाख)	प्रतिशत
आन्ध्र प्रदेश	225.69	48.86	197.54	39.31	164.58	28.91	160.43	25.36	153.97	22.19
अरुणाचल प्रदेश	2.66	51.93	3.36	58.32	2.82	40.88	2.83	36.22	3.73	39.35
असम	31.33	51.21	103.38	57.15	77.09	40.47	75.75	38.21	98.38	40.36
बिहार	370.57	61.91	401.82	61.55	482.05	62.22	420.93	32.13	493.35	54.96
गोवा	4.18	44.26	3.88	37.23	2.23	18.90	2.98	24.32	1.91	14.92
गुजरात	138.42	48.15	130.88	41.23	117.92	32.79	122.36	31.54	105.19	24.21
हरियाणा	38.32	35.36	35.48	29.55	29.60	21.37	25.37	16.64	43.88	25.05
हिमाचल प्रदेश	9.73	26.39	13.04	32.45	7.41	18.40	7.52	15.45	15.88	23.44
जम्मू तथा कश्मीर	20.48	40.83	21.72	38.97	15.60	24.24	16.95	23.82	20.92	25.17
कर्नाटक	170.87	54.47	168.17	48.78	149.81	38.24	158.61	37.53	156.46	33.16
केरल	135.52	59.79	127.22	52.22	106.77	40.42	88.48	31.79	78.41	25.43
मध्य प्रदेश	276.30	81.78	302.87	61.78	277.97	49.78	284.30	43.07	298.52	42.52
महाराष्ट्र	287.42	53.24	329.91	55.88	290.89	43.44	296.27	40.41	305.22	36.88
मणिपुर	5.35	49.96	7.08	53.72	5.65	37.02	5.29	31.35	6.80	33.78
मेघालय	5.52	50.20	6.79	55.19	5.62	38.81	5.48	33.92	7.38	37.92
मिजोरम	1.82	50.32	2.31	54.38	1.96	36.00	1.70	27.52	1.94	25.66
नागालैंड	2.90	50.81	3.74	56.04	3.50	39.25	3.66	34.43	5.05	37.92
उड़ीसा	154.47	66.18	176.32	70.07	181.31	65.29	165.93	55.58	160.60	48.56
पंजाब	40.49	28.15	30.23	19.27	28.64	16.18	25.17	13.20	25.11	11.77
राजस्थान	128.51	46.14	116.88	37.42	123.83	34.46	142.90	35.15	128.50	27.41
सिक्किम	1.19	50.86	1.54	55.89	1.35	39.71	1.36	36.08	1.84	41.43
तमिलनाडु	239.52	54.94	255.47	54.79	260.07	51.66	231.07	43.39	202.10	35.03
त्रिपुरा	8.54	51.00	10.61	55.58	8.95	40.03	8.84	35.23	11.79	39.01
उत्तर प्रदेश	535.73	57.07	504.37	49.05	556.74	47.07	556.53	41.46	604.46	40.85
पश्चिम बंगाल	299.30	63.43	310.57	60.52	318.69	54.85	283.81	44.72	254.56	35.36
अण्डमान तथा निकोबार द्वीप समूह	0.74	55.36	0.91	55.42	1.11	52.13	10.25	12.41	1.06	34.47
चण्डीगढ़	0.84	27.96	1.03	27.32	1.119	23.79	1.09	43.89	0.80	11.35
दादरा तथा नगर हवेली	0.38	46.55	0.49	37.20	0.18	15.67	0.84	14.87	0.77	50.84
दिल्ली	22.84	49.61	18.15	33.23	18.39	26.22	0.78	67.11	15.51	14.69
लक्षद्वीप	0.21	59.68	0.20	52.78	0.19	42.36	0.17	34.95	0.14	25.04
पांडिचेरी	2.74	53.82	3.00	53.25	3.28	50.06	3.05	1.46	3.31	37.40
संपूर्ण भारत	3213.30	54.88	3288.95	51.32	3228.97	44.48	3070.49	38.88	3203.68	35.97

नोट : 1. असम की गरीबी का अनुपात सिक्किम, अरुणाचल प्रदेश, मेघालय, मिजोरम, मणिपुर, नागालैंड और त्रिपुरा के लिए उपयोग में लाया गया है।
2. तमिलनाडु की गरीबी का अनुपात पांडिचेरी और अंडमान तथा निकोबार द्वीप समूह के लिए उपयोग में लाया गया है।
3. केरल की गरीबी का अनुपात लक्षद्वीप के लिए भी उपयोग में लाया गया है।
4. गोवा की गरीबी का अनुपात दादरा एवं नगर हवेली के लिए उपयोग में लाया गया है।
5. पंजाब का शहरी गरीबी अनुपात चंडीगढ़ के ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों के लिए उपयोग में लाया गया है।
6. महाराष्ट्र की गरीबी रेखा और गोवा का व्यय वितरण गोवा के गरीबी अनुपात का आकलन करने के लिए उपयोग में लाया गया है।

स्रोत : योजना आयोग

भारत में निर्धनता दर्शाने वाला मानचित्र

(कुल जनसंख्या के प्रतिशत में)

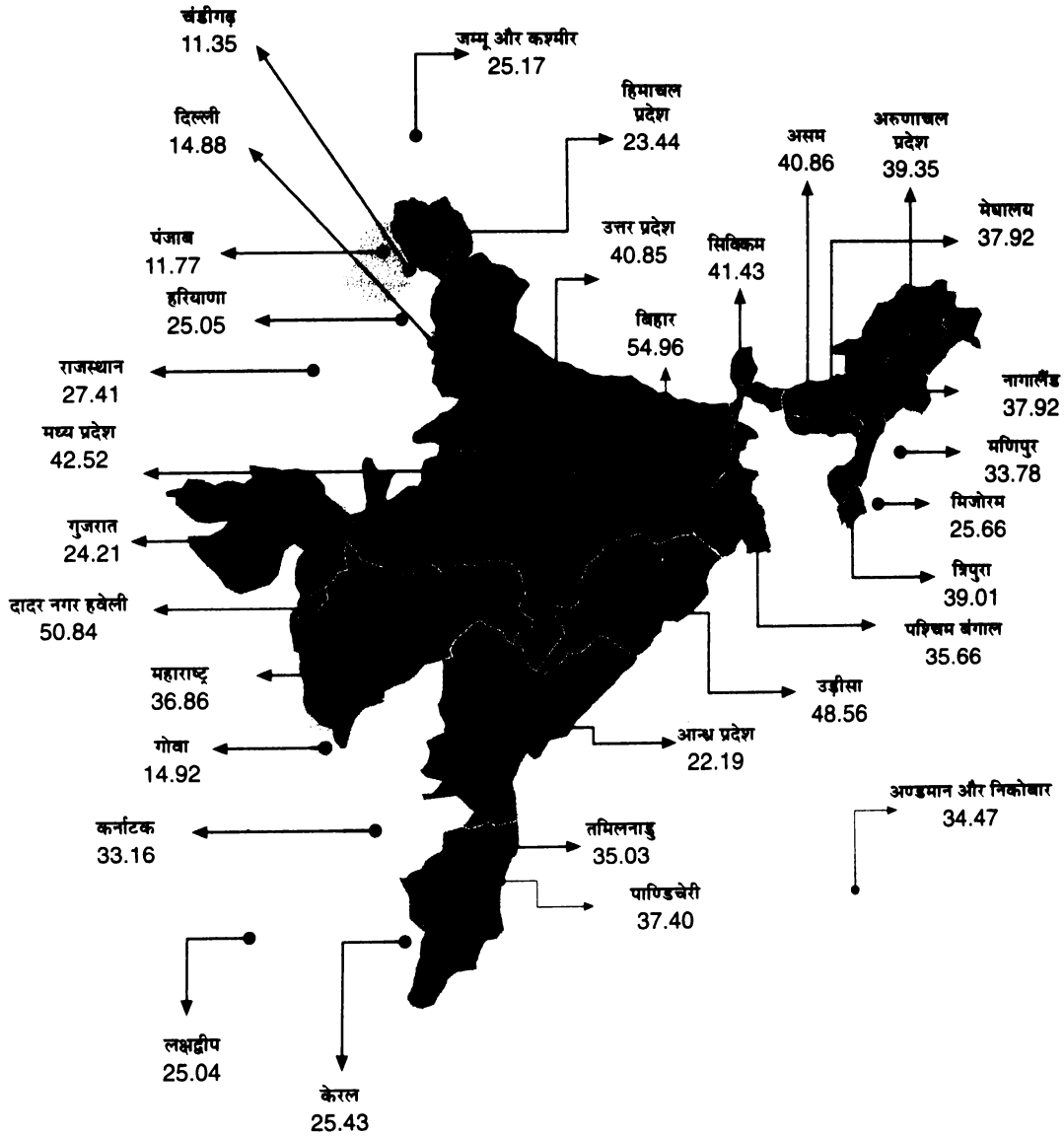

गरीबी की रेखा से नीचे रहने वाली जनसंख्या की प्रतिशतता–1993-94

10-20%: गोवा, पंजाब, दिल्ली, चण्डीगढ़, दमन दीव

20-25%: आन्ध्र प्रदेश, गुजरात, हिमाचल प्रदेश

25-30%: हरियाणा, जम्मू-कश्मीर, केरल, मिजोरम, राजस्थान, लक्षद्वीप

30-35%: कर्नाटक, मणिपुर, अंडमान और निकोबार

35-40%: अरुणाचल प्रदेश, महाराष्ट्र, मेघालय, त्रिपुरा, नागालैंड, तमिलनाडु, पश्चिम बंगाल, पाण्डिचेरी

40-45%: असम, मध्य प्रदेश, सिक्किम, उत्तर प्रदेश

45-50%: उड़ीसा

50-55%: बिहार, दादर नगर हवेली

तालिका 12.3

विभिन्न राज्यों में 1973-74 से 1993-94 के बीच गरीबों की संख्या (गरीबी रेखा से नीचे रह रहे लोगों की संख्या अथवा अनुपात की व्यापकता)

1973-74		1977-78		1983		1987-88		1993-94	
		उड़ीसा	70.00						
		मध्य प्रदेश	61.78						
		बिहार	61.55						
		पश्चिम बंगाल	60.52						
		अरुणाचल प्रदेश	58.32						
		असम	57.15					बिहार	54.96
		त्रिपुरा	56.88					दादरा तथा नगर हवेली	50.84
		नागालैंड	56.04					उड़ीसा	48.56
		सिक्किम	55.89			दादरा तथा नगर हवेली	67.11	मध्य प्रदेश	42.52
उड़ीसा	66.18	महाराष्ट्र	55.88			उड़ीसा	55.50	सिक्किम	41.43
पश्चिम बंगाल	63.43	अण्ड. निकोबार द्वीप समूह	55.42	उड़ीसा	65.29	बिहार	52.13	असम	40.86
बिहार	61.91	मेघालय	55.19	बिहार	62.23	पश्चिम बंगाल	44.72	उत्तर प्रदेश	40.85
मध्य प्रदेश	61.78	तमिलनाडु	54.79	पश्चिम बंगाल	54.85	तमिलनाडु	43.39	अरुणाचल प्रदेश	39.35
केरल	59.79	मिजोरम	54.38	अण्डमान तथा निकोबार	52.13	अण्डमान तथा निकोबार	43.39	त्रिपुरा	39.01
लक्षद्वीप	59.68	मणिपुर	53.72	तमिलनाडु	51.66	मध्य प्रदेश	43.07	नागालैंड	37.92
उत्तर प्रदेश	57.07	पांडिचेरी	53.25	पांडिचेरी	50.06	उत्तर प्रदेश	41.48	मेघालय	37.82
अण्ड. निको. द्वीप समूह	55.66	लक्षद्वीप	52.79	मध्य प्रदेश	49.78	पांडिचेरी	41.46	पांडिचेरी	37.40
तमिलनाडु	54.94	केरल	52.22	उत्तर प्रदेश	47.07	महाराष्ट्र	40.41	महाराष्ट्र	36.86
संपूर्ण भारत का औसत	**54.88**		**51.32**		**44.38**		**38.86**		**35.97**
कर्नाटक	54.47	उत्तर प्रदेश	49.05	महाराष्ट्र	43.44	कर्नाटक	37.53	पश्चिम बंगाल	35.66
पांडिचेरी	53.82	कर्नाटक	48.78	लक्षद्वीप	42.86	अरुणाचल प्रदेश	46.22	तमिलनाडु	35.03
महाराष्ट्र	53.24	गुजरात	41.23	अरुणाचल प्रदेश	40.85	असम	36.21	अण्डमान तथा निकोबार	34.47
अरुणाचल प्रदेश	51.93	आन्ध्र प्रदेश	39.31	असम	40.47	सिक्किम	36.06	मणिपुर	33.73
असम	51.21	जम्मू तथा कश्मीर	38.97	त्रिपुरा	40.43	त्रिपुरा	35.23	कर्नाटक	33.16
त्रिपुरा	51.00	राजस्थान	37.42	केरल	40.42	राजस्थान	35.15	हिमाचल	28.44
सिक्किम	50.86	गोवा	37.23	सिक्किम	39.71	लक्षद्वीप	34.95	राजस्थान	27.41
नागालैंड	50.81	दादरा तथा नगर हवेली	37.20	नागालैंड	39.25	नागालैंड	34.43	मिजोरम	25.56
मिजोरम	50.22	दिल्ली	33.23	मेघालय	38.81	मेघालय	33.92	केरल	25.43
मेघालय	50.20	हिमाचल प्रदेश	32.45	कर्नाटक	38.24	केरल	31.78	जम्मू तथा कश्मीर	25.17
मणिपुर	49.96	हरियाणा	29.55	मणिपुर	37.02	गुजरात	31.54	हरियाणा	25.05
दिल्ली	49.61	चण्डीगढ़	27.32	मिजोरम	36.00	मणिपुर	31.35	लक्षद्वीप	25.04
आन्ध्र प्रदेश	48.86	पंजाब	19.27	राजस्थान	34.46	मिजोरम	27.52	गुजरात	24.21
गुजरात	48.15			गुजरात	32.79	आन्ध्र प्रदेश	25.86	आन्ध्र प्रदेश	22.19
राजस्थान	46.64			आन्ध्र प्रदेश	28.91	गोवा	24.52	दमन तथा दीव	15.80
दादरा तथा नगर हवेली	46.55			दिल्ली	26.22	जम्मू तथा कश्मीर	23.82	गोवा	14.92
गोवा	44.28			जम्मू तथा कश्मीर	24.24	हरियाणा	16.64	दिल्ली	14.69
जम्मू तथा कश्मीर	40.83			चण्डीगढ़	23.79	हिमाचल	15.45	पंजाब	11.77
हरियाणा	35.35			हरियाणा	21.37	चण्डीगढ़	14.87	चण्डीगढ़	11.35
पंजाब	28.15			गोवा	18.90	पंजाब	13.20		
चण्डीगढ़	27.98			हिमाचल प्रदेश	16.40	दिल्ली	12.41		
हिमाचल	26.39			पंजाब	16.18				
				दादरा तथा नगर हवेली	15.67				

स्रोत : योजना आयोग

तालिका : 12.4

नई सरकारी प्रक्रिया के अनुसार गरीबी रेखा

(रुपये में)

	ग्रामीण				
राज्य	1973-74	1977-78	1983-84	1987-88	1993-94
आन्ध्र प्रदेश	41.71	50.88	72.66	91.94	163.02
अरुणाचल प्रदेश	*	*	*	*	*
असम	49.82	60.29	98.32	127.44	232.05
बिहार	57.68	58.93	97.48	120.36	212.16
गोवा	50.47	58.07	88.24	115.61	194.94
गुजरात	47.10	54.70	83.29	115.00	202.11
हरियाणा	49.95	59.37	88.57	122.90	233.79
हिमाचल प्रदेश	49.95	59.37	88.57	122.90	233.79
जम्मू-कश्मीर	46.59	61.53	91.75	124.33	*
कर्नाटक	47.24	51.95	83.31	104.46	186.63
केरल	51.68	58.88	99.35	130.61	243.84
मध्य प्रदेश	50.20	56.26	83.59	107.00	193.10
महाराष्ट्र	50.47	58.07	88.24	115.61	194.94
मणिपुर	*	*	*	*	*
मेघालय	*	*	*	*	*
मिजोरम	*	*	*	*	*
नागालैंड	*	*	*	*	*
उड़ीसा	46.87	58.89	106.28	121.42	194.03
पंजाब	49.95	59.37	88.57	122.90	233.79
राजस्थान	50.96	57.54	80.24	117.52	215.89
सिक्किम	*	*	*	*	*
तमिलनाडु	45.09	56.62	96.15	118.23	196.53
त्रिपुरा	*	*	*	*	*
उत्तर प्रदेश	48.92	54.21	83.85	114.57	213.01
पश्चिम बंगाल	54.49	63.34	105.55	129.21	220.74
अंडमान व निकोबार	*	*	*	*	*
चंडीगढ़	*	*	*	*	*
दादर व नागर हवेली	50.47	58.07	88.24	115.61	194.94
दमन व दीव	*	*	*	*	*
दिल्ली	49.95	59.37	88.57	122.90	233.79
लक्षद्वीप	*	*	*	*	*
पांडिचेरी	*	*	*	*	*
अखिल भारत ≠	49.63	56.84	89.50	115.20	205.84

* विशेषज्ञ वर्ग द्वारा, इन राज्यों में गरीबी संबंधी अनुपात का अलग से परिकलन नहीं किया गया है अपितु उनका दूसरे राज्यों से अनुकरण किया गया है। इसका ब्यौरा निम्न प्रकार है:-

1. असम के गरीबी संबंधी अनुपात को सिक्किम, अरुणाचल प्रदेश, मेघालय, मिजोरम, मणिपुर, नागालैंड और त्रिपुरा के लिए उपयोग में लाया गया है।
2. तमिलनाडु के गरीबी संबंधी अनुपात को पाण्डिचेरी और अंडमान व निकोबार द्वीप समूह के लिए उपयोग में लाया गया है।
3. केरल के गरीबी संबंधी अनुपात को लक्षदीप के लिए उपयोग में लाया गया है।
4. गोवा के गरीबी संबंधी अनुपात को दमन व दीव के लिए उपयोग में लाया गया है।
5. पंजाब के शहरी गरीबी संबंधी अनुपात को चंडीगढ़ के ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों की गरीबी का आकलन करने के लिए उपयोग में लाया गया है।
6. 1993-94 में हिमाचल प्रदेश के गरीबी संबंधी अनुपात का उपयोग जम्मू कश्मीर के लिए किया गया है।
7. चूंकि गरीबी संबंधी अनुपात का अनुमान उपभोक्ता व्यय वितरण और गरीबी रेखा से लगाया गया है इसलिए यह अभिमान्य है कि इन राज्यों की गरीबी रेखा को उन राज्यों के समान लिया जाए जिनके गरीबी संबंधी अनुपात लिये गये हैं।

≠ अखिल भारतीय स्तर पर गरीबी के स्तर का (अंतर्निहित) अखिल भारतीय स्तर पर व्यय लोगों का श्रेणीवार विभाजन और गरीबी संबंधी अनुपात पर आकलन किया गया है। अखिल भारतीय स्तर पर गरीबी संबंधी अनुपात का परिकलन राज्यवार गरीबी के औसत अनुपात के आधार पर किया गया है।

स्रोत : योजना आयोग

तालिका : 12.5

नई सरकारी प्रक्रिया के अनुसार गरीबी रेखा

(रुपये में)

	शहरी				
राज्य	1973-74	1977-78	1983-84	1987-88	1993-94
आन्ध्र प्रदेश	53.96	69.05	106.43	151.88	278.14
अरुणाचल प्रदेश	*	*	*	*	*
असम	50.26	61.38	97.51	126.60	212.42
बिहार	61.27	67.27	111.80	150.25	238.49
गोवा	59.48	73.99	126.47	189.17	328.56
गुजरात	62.17	72.39	123.22	173.18	297.22
हरियाणा	52.42	66.94	103.48	143.22	258.23
हिमाचल प्रदेश	51.93	66.32	102.26	144.10	253.61
जम्मू-कश्मीर	37.17	55.41	99.62	148.38	*
कर्नाटक	58.22	68.85	120.19	171.18	302.89
केरल	62.78	67.05	122.64	163.29	280.54
मध्य प्रदेश	63.02	74.40	122.82	178.35	317.16
महाराष्ट्र	59.48	73.99	126.47	189.17	328.56
मणिपुर	*	*	*	*	*
मेघालय	*	*	*	*	*
मिजोरम	*	*	*	*	*
नागालैंड	*	*	*	*	*
उड़ीसा	59.34	72.41	124.81	165.40	298.22
पंजाब	51.93	65.70	101.03	144.98	253.61
राजस्थान	59.99	72.00	113.55	165.38	280.85
सिक्किम	*	*	*	*	*
तमिलनाडु	51.54	67.02	120.30	165.82	296.63
त्रिपुरा	*	*	*	*	*
उत्तर प्रदेश	57.37	69.66	110.23	154.15	258.65
पश्चिम बंगाल	54.81	67.50	105.91	149.96	247.53
अंडमान व निकोबार	*	*	*	*	*
चंडीगढ़	*	*	*	*	*
दादर व नागर हवेली	59.48	73.99	126.47	189.17	328.56
दमन व दीव	*	*	*	*	*
दिल्ली	67.95	80.17	123.29	176.91	309.48
लक्षद्वीप	*	*	*	*	*
पांडिचेरी	*	*	*	*	*
अखिल भारत ≠	56.76	70.33	115.65	162.16	281.35

* विशेषज्ञ वर्ग द्वारा, इन राज्यों में गरीबी संबंधी अनुपात का अलग से परिकलन नहीं किया गया है अपितु उनका दूसरे राज्यों से अनुकरण किया गया है। इसका ब्यौरा निम्न प्रकार है:-

1. असम के गरीबी संबंधी अनुपात को सिक्किम, अरुणाचल प्रदेश, मेघालय, मिजोरम, मणिपुर, नागालैंड और त्रिपुरा के लिए उपयोग में लाया गया है।
2. तमिलनाडु के गरीबी संबंधी अनुपात को पाण्डिचेरी और अंडमान व निकोबार द्वीप समूह के लिए उपयोग में लाया गया है।
3. केरल के गरीबी संबंधी अनुपात को लक्षदीप के लिए उपयोग में लाया गया है।
4. गोवा के गरीबी संबंधी अनुपात को दमन व दीव के लिए उपयोग में लाया गया है।
5. पंजाब के शहरी गरीबी संबंधी अनुपात को चंडीगढ़ के ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों की गरीबी का आकलन करने के लिए उपयोग में लाया गया है।
6. 1993-94 में हिमाचल प्रदेश के गरीबी संबंधी अनुपात का उपयोग जम्मू कश्मीर के लिए किया गया है।
7. चूंकि गरीबी संबंधी अनुपात का अनुमान उपभोक्ता व्यय वितरण और गरीबी रेखा से लगाया गया है इसलिए यह अभिमान्य है कि इन राज्यों की गरीबी रेखा को उन राज्यों के समान लिया जाए जिनके गरीबी संबंधी अनुपात लिये गये हैं।

≠ अखिल भारतीय स्तर पर गरीबी के स्तर का (अंतर्निहित) अखिल भारतीय स्तर पर व्यय लोगों का श्रेणीवार विभाजन और गरीबी संबंधी अनुपात पर आकलन किया गया है। अखिल भारतीय स्तर पर गरीबी संबंधी अनुपात का परिकलन राज्यवार गरीबी के औसत अनुपात के आधार पर किया गया है।

स्रोत : योजना आयोग

वर्ष 1973-74 और 1993-94 के बीच दो दशकों से गरीबी रेखा से नीचे रह रही जनसंख्या के उपर्युक्त आंकड़ों से इस बात का पता चलता है:

गरीबी की रेखा से नीचे रह रहे लोगों का अनुपात 54.88 प्रतिशत से कम होकर 35.97 प्रतिशत हो गया है अर्थात् इसमें लगभग 19 प्रतिशत की कमी आई है।

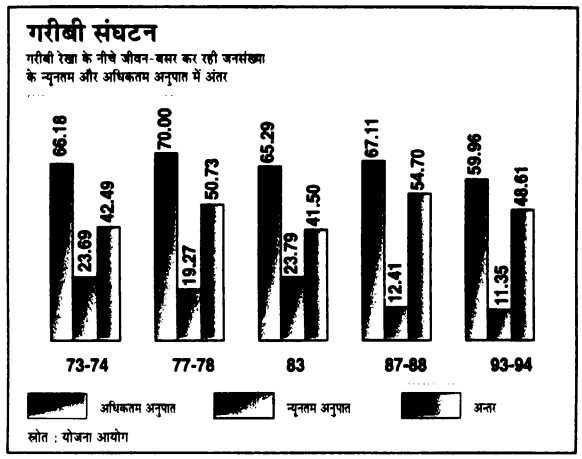

तालिका 12.6

कई वर्षों के दौरान गरीबी समूह का संक्षिप्त विवरण

	1973-74	1977-78	1983	1987-88	1993-94
अधिकतम अनुपात	66.18	70.00	65.29	67.11	59.96
निम्नतम अनुपात	23.69	19.27	23.79	12.41	11.35
अन्तर	42.49	50.73	41.50	54.70	48.61

स्रोत : योजना आयोग

- गरीबी समूह (गरीबी की रेखा से नीचे रह रहे लोगों की संख्या के निम्नतम और अधिकतम अनुपात के बीच का अंतर) लगभग 42 प्रतिशत और 55 प्रतिशत के बीच है।
- वास्तव में गरीबी का अनुपात सभी राज्यों में कम हुआ है। हालांकि कतिपय पंचवर्षीय योजनाओं में कुछ राज्यों में मामूली या बहुत कम उतार-चढ़ाव आया है।
- गरीबी की रेखा के नीचे रह रहे लोगों का अनुपात वर्ष 1993-94 में चंडीगढ़ में 11.35 प्रतिशत और बिहार में अधिकतम 54.96 प्रतिशत था।
- बिहार, मध्य प्रदेश, उड़ीसा और उत्तर प्रदेश ऐसे प्रमुख राज्य हैं, जहां गरीबी का अनुपात पूर्णतया ऊंचा रहा है। वर्ष 1993-94 में गरीबी की रेखा से नीचे रह रहे देश के 3200 लाख (48 प्रतिशत) लोगों में से 1550 लाख लोग इन चार राज्यों के थे।
- तेरह राज्यों में गरीबी की रेखा से नीचे रह रहे लोगों का राष्ट्रीय औसत का अनुपात अभी भी ऊंचा है। इनमें से 8 राज्य पूर्व और पूर्वोत्तर क्षेत्र के हैं। इनमें से पांच राज्य पूर्वोत्तर की सात बहनों में से हैं और छठा राज्य सिक्किम है।
- महाराष्ट्र और कर्नाटक राज्य लगभग राष्ट्रीय औसत के नजदीक रहे हैं।
- केरल, तमिलनाडु और पश्चिम बंगाल ऐसे तीन राज्य हैं, जिन्होंने राष्ट्रीय औसत से कम गरीबी की ओर जाने में सतत और महत्वपूर्ण प्रगति की है।
- आंध्र प्रदेश, हरियाणा, गुजरात, हिमाचल प्रदेश, पंजाब और राजस्थान ऐसे प्रमुख राज्य हैं जहां अनुपात राष्ट्रीय औसत से कम रहा है।

13

महिलाओं और पुरुषों के बीच भेद

लिंग संबंधी विषयों ने मानव विकास कार्यसूची में प्रमुखता पा ली है। समाज में महिलाओं के द्वारा निभाई जा रही भूमिकाएं और मानव संसाधन के रूप में उनके योगदान धीरे-धीरे दिखाई दे रहे हैं। महिलाओं के विरुद्ध भेदभाव को समाप्त करने और समानता लाने का प्रयास भूमंडलीय आन्दोलन का अंग बन गया है और इन पर वर्ष 1995 में बीजिंग में सम्पन्न हुए पिछले सम्मेलन सहित सभी चार महिलाओं संबंधी विश्व सम्मेलनों में बल दिया गया है। भारत में महिला आन्दोलनों ने कई सामाजिक मुद्दों को उठाया है और इन आन्दोलनों ने समय के साथ-साथ इन वर्षों में गति पकड़ ली है। महिलाओं की प्रगति के लिये कार्य करने और लिंग संबंधी मुद्दों पर सामाजिक चेतना को जगाने के लिये देश में कई तंत्रों का सृजन किया गया है। महिलाओं को अधिकार देना और उनमें क्षमता का निर्माण करना भेदभाव के उन्मूलन में सहायता देने के मुख्य लक्ष्य बन गए हैं। जबकि वैधानिक और नीति संबंधी अनेक प्रयासों की शुरूआत की गई है, फिर भी महिलाओं की शिक्षा, कौशल विकास, रोजगार, स्वास्थ्य और अन्य सामाजिक मुद्दों जैसी महिलाओं के प्रति पुरातनपंथी मनोवृत्ति में बुनियादी परिवर्तन जैसे कई विषयों पर ध्यान देना बाकी है।

विश्व में हो रही प्रगति के बारे में जब भी चर्चा होती है तो मानव का विकास ही महत्वपूर्ण मुद्दा होता है। अन्य मामलों में से खासतौर से स्त्री-पुरुषों के व्यवहार को नियंत्रित करने वाले सामाजिक-सांस्कृतिक वातावरण की आलोचनात्मक जांच परख की गयी है ताकि उनमें विद्यमान भेदभाव को दूर कर समानता, समदृष्टि, न्याय और अधिकारों को स्थापित किया जा सके। इस बात को भलीभांति महसूस कर लिया गया है कि महिलाओं को कई बातों में समान नहीं माना जाता है। इसलिए समाज का ध्यान विभिन्न सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक घटकों की ओर दिलाया जा रहा है, जिनके परिणामस्वरूप महिलाओं को निचले दर्जे का माना जाता रहा है। अब कानूनी साधनों के साथ-साथ उनके प्रति रचनात्मक दृष्टिकोण और व्यवहार से अनुकूल परिवर्तन लाने के लिए बड़ी दृढ़ता से प्रयास किये जा रहे हैं। भारत और विश्व के विभिन्न भागों में लगभग एक शताब्दी से चल रहे महिलाओं के अनेक आंदोलनों तथा लगभग पचास वर्ष से संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा अपने एजेंडा के माध्यम से महिलाओं की वकालत से विभिन्न सरकारों की विचारधारा में ठोस परिवर्तन आए हैं और हालांकि गति धीमी है फिर भी परिवर्तन हो रहे हैं। यहां मुद्दा यह है कि इस गति में तीव्रता लाई जाए और महिलाओं की भूमिका और योगदान को मान्यता दी जाए तथा विकास के लिए महत्वपूर्ण और अपरिहार्य संसाधन के रूप में उनके महत्व को महसूस किया जाए। भारत को ऐसा प्रथम देश होने का गौरव प्राप्त है जिसने सितम्बर, 1995 में बीजिंग में आयोजित चौथे विश्व महिला सम्मेलन के कार्यवाही मंच पर की गई 'बीजिंग घोषणा' के प्रति अपनी पूर्ण प्रतिबद्धता जतायी है।

महिलाओं संबंधी मुद्दों पर विश्व स्तर पर हुई चर्चा में भारत का योगदान भरपूर और कई मायनों में बेजोड़ रहा है। जहां तक स्त्री-पुरुष की समानता और उनके प्रति समदृष्टि का संबंध है ये भारतीय विचारधारा के मूल आधार हैं। उन्नीसवीं शताब्दी तथा बीसवीं सदी के आरम्भ में पहले सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ और उसके बाद आजादी के संघर्ष के रूप में महिलाओं के लगातार अनेक आंदोलन हुए। वर्ष 1950 में भारत का संविधान लागू किया गया जिसमें महिलाओं को समानता का दर्जा ही नहीं दिया गया वरन् राज्यों को महिलाओं के कल्याण के रचनात्मक कार्य के लिए उपाय करने की शक्ति भी प्रदान की गई थी। संविधान में प्रत्येक नागरिक का यह मौलिक कर्तव्य माना गया है कि वह महिलाओं की मर्यादा के विरुद्ध रिवाजों को त्याग दे।

वर्ष 1971 में भारत में महिलाओं की स्थिति संबंधी समिति का गठन किया गया और उसे महिलाओं की दशा के बारे में प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिए कहा गया। समिति के "समानता की ओर" (टूवर्ड्स ईक्वैलिटी) शीर्षक से प्रस्तुत प्रतिवेदन के परिणामस्वरूप व्यापक पैमाने पर नीतिगत चर्चाएं हुईं जिसमें महिलाओं को सामाजिक क्षेत्र में कल्याणकारी नीतियों के लक्ष्य के रूप में ही नहीं वरन् विकास के महत्वपूर्ण कार्यकर्ता के रूप में माना गया। इसे छठी योजना की महिलाओं के उत्थान हेतु

निर्धारित बहुमुखी नीति में प्रतिबिम्बित किया गया है। इस योजना में महिलाओं के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य की देखभाल और परिवार-नियोजन, रोजगार, सम्भरण सेवाओं को उपलब्ध कराने तथा उन्हें सक्षम बनाने हेतु नीति और अनुकूल कानूनी वातावरण के लिए प्रावधान किया गया है। आगामी दो दशकों में महिलाओं के लिए राष्ट्रीय स्तर पर एक तंत्र बनाने के लिए विभिन्न अभिकरणों का एक नेटवर्क बनाया गया ताकि महिलाओं के उत्थान के लिए अपेक्षित परिवेश को तैयार किया जा सके।

प्रधान मंत्री जवाहर लाल नेहरू के निर्देश में 1953 में स्थापित केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड इस प्रकार का पहला समन्वयकारी अभिकरण था जिसकी लगभग एक दशक तक श्रीमती दुर्गाबाई देशमुख ने बड़ी दक्षता से अध्यक्षता की थी। विकास हेतु महिलाओं को मुख्यधारा में लाने की प्रक्रिया में तीव्रता लाने तथा महिलाओं के बारे में संयुक्त राष्ट्र संघ के विश्व सम्मेलन के कारण अंतर्राष्ट्रीय अभियान से प्रेरित होने के कारण व्यापक पैमाने पर सामंजस्य की आवश्यकता को महसूस करते हुए नवरचित मानव संसाधन विकास मंत्रालय के विभाग के रूप में 1985 में महिला और बाल विकास विभाग स्थापित किया गया। महिलाओं को अधिकारों और विशेषाधिकारों की उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए एक संविधि के अंतर्गत 1992 में राष्ट्रीय महिला आयोग का गठन किया गया। भारत में महिलाओं द्वारा किये जा रहे आंदोलनों के माध्यम से इसके लिए लम्बे अरसे से मांग की जा रही थी।

तब से अब तक उनके विकास से लेकर उन्हें सशक्त बनाने की प्रक्रिया से संबंधी परिदृश्य में बड़ी तेजी से परिवर्तन आया है। भारतीय महिलाओं के उत्थान में 1993 में किये गये 73वें और 74वें संशोधन के कारण एक नया मोड़ आया है। स्थानीय निकायों की एक तिहाई सदस्यता और इन संस्थाओं की एक तिहाई अध्यक्षता भी अब महिलाओं के लिए आरक्षित कर दी गई है। अधिकांश राज्यों में पंचायतों के लिए चुनाव किये जाने के परिणामस्वरूप लगभग दस लाख महिलाएं इन निर्णायक निकायों में शामिल हुई हैं तथा 7000 से भी अधिक महिलाएं इन निकायों की अध्यक्षता कर रही हैं। शुरू-शुरू में ऐसे पदों पर निरक्षर महिलाओं की नियुक्ति करने पर उनके अज्ञानी और अक्षमता की आशंका के बावजूद यह नया अनुभव काफी स्फूर्तिदायक सिद्ध हुआ है। अब मुख्यत: प्रशिक्षण और सजगता लाने के माध्यम से क्षमता बढ़ाने का प्रयास किया जा रहा है। इन बुनियादी स्तर के संगठनों में सामाजिक विकास के प्रति पूर्ववर्ती दृष्टिकोण में परिवर्तन शुरू हो गया है किन्तु वे अभी प्रभावी नहीं हो पाए हैं।

चतुर्थ विश्व महिला सम्मेलन के बाद भारत ने महिलाओं-पुरुषों के बीच भेद संबंधी मामलों के प्रति समाज को संवेदनशील बनाने के लिए अनेक नीतियां अपनायी हैं। व्यापक पैमाने पर विचार-विमर्श के बाद महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए राष्ट्रीय नीति का प्रारूप तैयार किया गया है जिसको अपनाया जाना बाकी है।

लोक सभा और राज्य की विधान पालिकाओं में महिलाओं के लिए एक तिहाई आरक्षण संबंधी विधेयक (संविधान का 81वां संशोधन) संसद के विचाराधीन है।

महिलाओं के उत्थान तथा उन्हें सशक्त बनाने के लिए तथा तत्संबंधी प्रक्रियाओं की गति तीव्र करने के लिए किये गये उपायों की समीक्षा करने हेतु संसद सदस्यों की एक समिति गठित की गयी थी। इससे समाज में महिलाओं को समुचित स्थान दिलाया जाना सुनिश्चित करने संबंधी नीति निर्धारक निकाय संसद की जिम्मेदारी और भी गुरुतर हो जाती है।

विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं की स्थिति की समीक्षा करने से अभी तक किये गये विभिन्न प्रयासों के प्रभाव और जिन विभिन्न क्षेत्रों पर और अधिक ध्यान दिया जाना है तथा जहां स्थिति चिंताजनक है उन्हें उजागर करना संभव हो जाता है।

मद	कार्य निष्पादन	चिंता का विषय
लिंग अनुपात	1991 में की गई जनगणना के अनुसार 407.1 मिलियन महिलाएं थीं जबकि पुरुषों की संख्या 439.23 मिलियन थी। जिससे उनके बीच 927:1000 का अनुपात बैठता है जो कि 1901 में 972 महिलाएं प्रति 1000 पुरुष, 1951 में 946 तथा 1981 में 934 से बहुत ही कम है।	लिंग अनुपात में गिरावट महिलाओं के निम्न दर्जे, मृत्यु की उच्च दर/या बालिकाओं के जन्म लेने की दर में कमी का संकेतक है। बालिकाओं को अधिक स्वस्थ माना जाता है इसलिए सामान्यत: महिला-पुरुष के बीच 1:1 से अधिक का अनुपात होता है। विकसित देशों में ऐसा ही है। चिंता का विषय तो महिलाओं का कम होना है। इसके लिए बालिका

मद	कार्य निष्पादन	चिंता का विषय
		शिशुओं की हत्या, जन्म पूर्व लिंग चयन की प्रवृति आदि मुख्य कारण हैं। यह पुरुषों को तरजीह देने का प्रतीक है।
आयु संरचना	आबादी में पहले से अपेक्षाकृत स्वस्थ महिलाओं की संख्या में वृद्धि के कारण कार्यरत आयु वर्ग में विद्यमान प्रौढ़ महिलाओं के अनुपात में वृद्धि।	गर्भधारण करने योग्य आयु वर्ग की महिलाओं में अपेक्षाकृत वृद्धि; महिलाओं में बेरोजगारी की वृद्धि।
आयु में वृद्धि	पुरुषों और महिलाओं दोनों की आयु सीमा में समान रूप से वृद्धि हुई है (यह 1986-90 में पुरुषों की अपेक्षा थोड़ी ज्यादा है) अब यह 61 वर्ष है।	सामान्य तौर पर महिलाओं की आयु-सीमा पुरुषों से चार से पांच वर्ष तक ज्यादा होती है जैसा कि विकसित देशों में वृद्ध, आश्रित और विधवा महिलाओं की संख्या में आधिक्य से स्पष्ट है।
मृत्यु दर	बालिकाओं और बालकों की मृत्यु दर में महत्वपूर्ण गिरावट आई है। 1970 और 1992 के दौरान बालकों के लिए यह दर 51.7 से गिर कर 24.9 और बालिकाओं के लिए 55.1 से गिर कर 26.2 हो गयी है।	समाज में बालिकाओं की उपेक्षा के कारण मातृ मृत्यु दर अधिक रहा।
	टीकाकरण कार्यक्रम की सफलता से बालक और बालिका शिशु मृत्यु दर 1978-80 में क्रमश: 123 और 131 से गिरकर 1993 में 74 हो गयी। 1992-93 में बाल उत्तरजीविका और सुरक्षित मातृत्व के लिए विशेष कार्यक्रम शुरू किया गया था। मृत्यु दर में समग्र रूप से गिरावट आई है। 30 वर्ष से ऊपर की आयु की महिलाओं की मृत्यु दर उच्च आयु समूह के पुरुषों की मृत्यु दर की तुलना में कम है।	महिला प्रधान परिवार और अधिक निर्धनता।
विवाह के समय आयु	बाल विवाह अवरोध अधिनियम, 1976 द्वारा विवाह आयु को बढ़ाकर बालिकाओं के लिए 18 वर्ष और बालकों के लिए 21 वर्ष कर दिया गया। 1992 में बालिकाओं के लिए विवाह की औसत आयु 19.5 वर्ष थी।	बालिकाओं की कम उम्र में विवाह और कम उम्र में गर्भधारण और समय से पूर्व पैदा हुए बच्चे अभी भी आम बात है। शिशु और मातृत्व मृत्यु के अलावा उच्च गर्भधारण दर उनमें से एक कारण है।
गर्भधारण	सभी आयु समूह में महिलाओं के लिए आयु विशेष गर्भधारण दर में गिरावट आई है। कुल गर्भधारण दर 1981 में 4.5 जन्म से गिरकर 1991 में 3.6 हो गयी। महिलाओं की गर्भधारण संख्या में कमी से वे अन्य उत्पादक कार्य कर सकती हैं।	जनसंख्या स्थायित्व के लिए गर्भधारण द को और कम करना होगा। चिन्ता इस बा की है कि महिलाएं सभी परिवार नियोज कार्यक्रमों का मुख्य लक्ष्य होती हैं। बेहत परिवार नियोजन और गर्भ नियंत्रण के लिए पुरुषों को लक्ष्य बनाने की नीति

मद	कार्य निष्पादन	चिंता का विषय
		तैयार करनी होगी। कम आयु के विवाह अभी भी एक आम बात है और यह उच्च गर्भधारण दर का कारण है।
साक्षरता	चार दशकों (1951-91) में महिला साक्षरता में पांच गुना वृद्धि हुई है अर्थात् यह 8.86% से बढ़कर 1991 में 39.9% हो गयी विशेषकर 1981-91 के दशक में महिला साक्षरता (9.6%) पुरुष साक्षरता (7.6%) से तुलनात्मक रूप से तीव्रगति से बढ़ी है। वर्ष 1951-1991 के बीच स्कूलों में बालिकाओं की संख्या में सभी स्तरों पर प्राथमिक स्तर पर (नौ गुणा), उच्च प्राथमिक/माध्यमिक स्तर पर (30 गुणा) और उच्च माध्यमिक स्तर पर (40 गुणा) वृद्धि हुई है।	कुछ राज्यों में महिला साक्षरता अभी भी 20% के लगभग है और 42 जिलों में अ.जा. की बालिकाओं के लिए यह 0 से 5% के लगभग है। सामान्यतया साक्षरता ग्रामीण क्षेत्रों में कम (महिलाओं के लिए 30%) है और अ.जा. के लिए और भी कम है। साक्षरता को बढ़ावा देने के लिए विशेष प्रयास अभी भी अपर्याप्त हैं और सामाजिक बंधन अभी भी व्याप्त हैं। अशिक्षा के कारण महिलाओं का दर्जा गिरता है। बालिकाओं द्वारा बीच में पढ़ाई छोड़ने की दर बहुत अधिक है। प्राथमिक स्कूलों में भर्ती होने वाली केवल 32% बालिकाएं ही प्राथमिक शिक्षा पूरी करती हैं। निम्न शिक्षा स्तर विशिष्ट कुशलता के विकास और बेहतर आर्थिक दर्जा प्राप्त करने के मार्ग में अवरोधक का कार्य करता है।
रोजगार	कार्य में महिलाओं की भागीदारी भी वर्ष 1991 में 14.22 प्रतिशत और 1981 में 19.67 प्रतिशत से बढ़कर 1991 में 22.27 प्रतिशत हो गई है। ग्रामीण क्षेत्रों में तो इस कार्य भागीदारी में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है जो 1971 में 15.92 प्रतिशत से बढ़कर 1991 में 26.79 प्रतिशत हो गई है। 1991 में कार्य में 22.27 प्रतिशत की महिला भागीदारी में से मुख्य श्रमिकों का योगदान 16.03 प्रतिशत था और सीमान्त मजदूरों का योगदान 6.24 प्रतिशत ही था। 1981-91 के बीच जहाँ ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में ही मुख्य श्रमिकों की भागीदारी में बढ़ोतरी हुई है, वहीं सीमान्त मजदूरों की भागीदारी ग्रामीण क्षेत्रों में तो बढ़ी है लेकिन शहरी क्षेत्रों में यह भागीदारी 1 प्रतिशत पर स्थिर रही है। प्रमुख राज्यों में कार्य भागीदारी में क्षेत्रीय अन्तर न्यूनतम 4 प्रतिशत से	परिवार के लोग आज भी अपनी महिलाओं को श्रमिक बताने या मानने में लज्जा महसूस करते हैं और वे इसे एक अपमान की बात समझते हैं। महिलाओं के द्वारा किये जाने वाले कार्य का देश में कहीं कोई लेखा/खाता नहीं होता और न ही इसके घरेलू कार्यों में भी उसका कोई मूल्यांकन नहीं होता है। महिलाओं की बहुसंख्या सीमान्त मजदूरों की श्रेणी में आती है। कतिपय राज्यों में इनकी कम भागीदारी सांस्कृतिक कारणों और इनके अपर्याप्त प्रतिनिधित्व के कारण से है। महिलाओं में बेरोजगारी बढ़ रही है। शहरी क्षेत्रों में तो शिक्षित महिलाओं में

मद	कार्य निष्पादन	चिंता का विषय
	34 प्रतिशत तक रहा है। जहाँ अन्य सेवा-क्षेत्रों में रोजगार अनुपात में मामूली वृद्धि हो रही है वहीं विनिर्माण उद्योग में यह कम हुआ है और कृषि में तो इसका उच्च अनुपात बना ही हुआ है। जहाँ कुछ कृषि मजदूर किसान हो गए हैं। संगठित क्षेत्र में महिला रोजगार में अवश्य उल्लेखनीय वृद्धि हुई है, यद्यपि इस संबंध में पुरुषों की 10 प्रतिशत वृद्धि की तुलना में यह समग्र महिला रोजगार का मात्र 4 प्रतिशत है। संगठित क्षेत्र में पुरुषों की तुलना में महिलाओं का अनुपात 1971 में 11 प्रतिशत से बढ़कर 1993 में 14 प्रतिशत से कुछ अधिक हो गया है।	यह और भी अधिक है, वे आज भी गौण/ छिटपुट और जोखिम भरे कार्यों में लगी हुई हैं।
विधान	महिलाओं को बेहतर दर्जा प्रदान करने और उनके अधिकारों का संरक्षण करने की दृष्टि से सभी प्रकार के कानून बनाए गए हैं।	अधिकांश प्रावधानों को लागू और कार्यान्वित करने में त्रुटियाँ बनी हुई हैं और उस दिशा में काफी कुछ किया जाना वांछित है तथा महिलाओं को कानून-प्रदत्त फायदे नहीं मिल रहे हैं। कानूनी उपबंधों में खामियों और अनुशंसित संशोधनों की संवीक्षा कार्य अत्यंत धीमी गति से विभिन्न चरणों में चल रहा है।
महिलाओं की प्रगति हेतु संसाधन	महिलाओं की प्रगति हेतु अनेकानेक कार्यक्रम शुरू किये गये हैं। एक महिला संघटक योजना तैयार करने के लिए इंदिरा महिला योजना के अंतर्गत इन कार्यक्रमों को एकीकृत करने का प्रस्ताव है।	अल्प आवंटन, अपूर्ण कार्यान्वयन और समन्वयन और एकीकरण, असन्तोषजनक, खराब प्रगति।
सामाजिक सुग्राहीकरण	विधायकों, प्रशासकों, नीतिनिर्माताओं, न्यायपालिका, विधि कार्यान्वयन अधिकारियों और महिलाओं एवम् पुरुषों के सुग्राहीकरण और उनमें जागरूकता पैदा करने की प्रक्रिया शुरू की गई है।	जागरूकता पैदा करने की प्रक्रिया असन्तोषप्रद, लिंग भेद संबंधी मुद्दे पर जागरूकता पैदा करने का कार्य शेष।
महिलाओं एवम् बालिकाओं के प्रति हिंसा और अत्याचार में कमी लाना	महिलायें संगठित हुई हैं और उन्हें कानूनी जानकारी देने संबंधी कार्य में प्रगति हुई है।	हिंसा और अत्याचार अभी भी व्यापक स्तर पर जारी है।

14

पर्यावरण

हमारी अत्यधिक जनसंख्या, तेजी से हो रहे शहरीकरण और बड़ी संख्या में कृषि आधारित उद्योगों के होने से हमारे देश में पर्यावरण को क्षति पहुंची है। 75 मिलियन हेक्टेयर भूमि पर फैले वन भी कुल भौगोलिक क्षेत्र के 33 प्रतिशत (पर्वतीय क्षेत्रों के लिए 66 प्रतिशत) भू-भाग पर वन रखने के राष्ट्रीय मानदंड से काफी कम है। अतिचराई वन संसाधनों का अत्यधिक वाणिज्यिक और गैर वाणिज्यिक दोहन और अवैध कब्जों ने जैव विविधता को अविश्वसनीय क्षति पहुंचाई है। घरेलू, औद्योगिक और अन्य प्रकार के प्रदूषणों के कारण भूमि, जल और वायु अत्यन्त प्रदूषित हो रही है जिससे लोग बीमारियों के शिकार हो रहे हैं और पूरी परिस्थिति की व्यवस्था को लगातार खतरा है। निसंदेह, हमने पर्यावरण के संरक्षण के लिए राष्ट्रीय नीतियां तैयार की हैं, कई कानून बनाए हैं। संस्थागत अवसंरचना सृजित की है, कार्य योजनाएं बनाई हैं और अंतर्राष्ट्रीय विचारों और समझौतों का समर्थन किया है। हम पर्यावरण पर पर्याप्त निवेश भी कर रहे हैं। क्या हम पहले से हो चुकी क्षति की भरपाई कर सकते हैं? हम किस प्रकार रियो घोषणा और कार्य सूची 21 का पालन करने जा रहे हैं?

प्राक्कथन

पर्यावरण को ''जीवन और जीवों के विकास को प्रभावित करने वाली सभी बाह्य परिस्थितियों और प्रभावों के समाहार'' के रूप में परिभाषित किया गया है। इस शब्द में उन सभी परिवर्तनशील चीजों पर विचार किया गया है जो प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से पर्यावरण को प्रभावित करती हैं। इनमें सामान्यत: सभी भौतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक कारक और जीवों के अस्तित्व अथवा विकास को प्रभावित करने वाली परिस्थितियां शामिल हैं।

भारतीय परम्परा के अनुसार, प्रकृति और मानव जाति जीवन समर्थित प्रणाली का अविभोज्य अंग है। पांच तत्व (अर्थात् वायु, जल, भूमि, वनस्पति और जीव जंतु) परस्पर सम्बद्ध और परस्पराश्रित है तथा इनका सह विकास हुआ है और ये सह अनुकूल हैं। इन पांचों तत्वों में से एक में गड़बड़ होने पर दूसरों में असंतुलन उत्पन्न हो जाता है।

आधुनिक समय में भी, जैसाकि हमारे संवैधानिक प्रावधानों, पर्यावरणीय विधान और योजनागत उद्देश्यों में स्पष्ट है, विकासात्मक कार्यों के साथ-साथ पर्यावरणीय सुरक्षा बनाये रखने के लिए प्रबुद्ध प्रयास किए गए हैं। भारतीय संविधान में अनुच्छेद 48क और अनुच्छेद 51क(छ) जिनमें यह कहा गया है कि ''राज्य पर्यावरण की सुरक्षा और सुधार करने और देश में वनों तथा वन्य जीवों की सुरक्षा करने'' और ''वनों, झीलों, नदियों तथा वन्य जीवों सहित प्राकृतिक पर्यावरण की सुरक्षा तथा सुधार करने का प्रयास करेगा और जीवित प्राणियों के प्रति सहानुभूति रखेगा'', के माध्यम से राज्य और सभी नागरिकों को कर्तव्य सौंपकर राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्तों संबंधी धारा में एक नया महत्वपूर्ण मार्ग निर्धारित किया गया है।

पिछले वर्षों में पर्यावरण और प्राकृतिक संसाधनों पर उत्तरोत्तर दबाव पड़ा है जिसके भयंकर परिणाम बढ़ते हुए अनुपात में स्पष्ट हो रहे हैं।

इन परिणामों से विकास के लाभ कम होते हैं और उन गरीब लोगों का जीवन स्तर बदतर हो जाता है जो प्रत्यक्ष रूप से प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर हैं। इस संदर्भ में संरक्षण तथा सतत् विकास पर पुन: बल देना अनिवार्य है।

इस संबंध में पश्चिमी देशों के अनुभव का उदाहरण दिया जा सकता है। वर्ष 1903 में पश्चिमी जर्मनी में उद्योगों पर पर्यावरण शुल्क लगाया गया था और यह पद्धति अभी भी बहुत सफल है। पश्चिमी देशों में यह देखा गया है कि जब कभी भी बड़े प्रदूषण नियंत्रण उपाय शुरू किए गए तो उद्योग जगत ने प्रारम्भ में इसका विरोध किया परंतु अंतत: प्रदूषण को विनिर्दिष्ट सीमा के भीतर रखने हेतु समुचित प्रौद्योगिकी विकसित हो जाएगी।

पर्यावरणीय समस्याएं

प्रकृति और आयाम

भारत में पर्यावरणीय समस्याओं को मोटे तौर पर दो श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है:-

(क) वे जो विकास प्रक्रिया के दुष्प्रभावों से उत्पन्न हो रही हैं; और

(ख) वे जो गरीबी और अर्थविकास की स्थिति से उत्पन्न हो रही हैं।

प्रथम श्रेणी की समस्याएं तीव्र आर्थिक उन्नति और विकास करने के प्रयासों तथा समाज के उन वर्गों, जो आर्थिक रूप से अधिक उन्नत हैं और प्राकृतिक संसाधनों की आपूर्ति पर भारी रुकावट डाल रहे हैं, द्वारा की गई मांग के सतत् दबावों के प्रभाव से संबद्ध है। गलत ढंग से तैयार की गई विकास परियोजनायें अक्सर पर्यावरणीय दृष्टि से भी विनाशकारी होती हैं। दूसरी श्रेणी का संबंध हमारी जनसंख्या के एक बड़े भाग के निर्धन होने तथा उनकी मूलभूत मानवीय आवश्यकताओं (खाद्य, ईंधन, आश्रय, रोजगार इत्यादि) को पूरा करने में साधनों की अपर्याप्त उपलब्धता के फलस्वरूप स्वास्थ्य और हमारे प्राकृतिक संसाधनों (भूमि, मृदा जल, वन्य जीवन इत्यादि) की समग्रता पर पड़ने वाले प्रभाव से है।

जनसंख्या विकास के लिए एक महत्वपूर्ण संसाधन है परन्तु यह उस समय पर्यावरणीय अवनति का मुख्य स्रोत बन जाती है जब यह समर्थित प्रणालियों की सीमाओं को पार कर जाती है। जब तक बढ़ती हुई जनसंख्या और जीवन समर्थित प्रणालियों के बीच संबंध को सुदृढ़ नहीं किया जाता तब तक विकास कार्यक्रम, चाहे वे कितने ही परिवर्तनकारी हों, से अपेक्षित परिणाम प्राप्त करने की संभावना नहीं है। प्रौद्योगिकीय उन्नति तथा स्थानिक वितरण के माध्यम से "वहन क्षमता" का विस्तार करना संभव है लेकिन इनमें से कोई भी जनसंख्या की असीमित वृद्धि का बोझ नहीं वहन कर सकती।

पशुओं को अधिक घास चराने, वाणिज्यिक और घरेलू दोनों आवश्यकता के लिए अधिक उपयोग करने, अतिक्रमण, झूम खेती की कतिपय पद्धतियों सहित अनुयुक्त प्रक्रियाओं और सड़कों भवनों, सिंचाई और विद्युत परियोजनाओं जैसे विकासात्मक कार्यों के कारण हमारी वन सम्पदा कम हो रही है। देश में 75.01 मिलियन हेक्टेयर भू-क्षेत्र पर वन हैं जो मैदानी क्षेत्रों के लिए 33 प्रतिशत और पर्वतीय क्षेत्रों के लिए 66 प्रतिशत के व्यापक राष्ट्रीय लक्ष्य की तुलना में कुल भौगोलिक क्षेत्र का 19.5 प्रतिशत है। इस क्षेत्र में भी केवल 11 प्रतिशत क्षेत्र पर वन है जिसमें 40 प्रतिशत अथवा इससे अधिक ऊपरी हिस्सा है। राज्य वन रिपोर्ट, 1995 के अनुसार वर्ष 1987-89 के दौरान देश में वास्तव में 64.01 मिलियन हेक्टेयर भू-क्षेत्र पर वन थे। प्राकृतिक परिवेश के विघटन के फलस्वरूप पौधे, जीव जन्तु और अणुजीवी प्रजातियां लुप्त हो रही हैं।

भारत के बोटेनिकल और जूलोजिकल सर्वेक्षणों के अनुसार लगभग 1500 पौधे और जीव जन्तु लुप्त प्राय: श्रेणी में आते हैं। देश में जैविक कमी जैविक उत्पादकता के क्षेत्र में स्थिर प्रगति के लिये गम्भीर खतरा है। जीन क्षरण से आणविक जीव विज्ञान और आनुवांशिक इंजीनियरी में हाल की प्रगति से पूर्ण आर्थिक और पारिस्थितिकीय लाभ प्राप्त करने की संभावनाएं भी समाप्त होती हैं।

हमारा अनूठे जल क्षेत्र जो जल जीवों और पक्षियों से भरपूर हैं, प्रदूषण और अत्यधिक दोहन की समस्याओं का सामना कर रहे हैं। देश की प्रमुख नदियों में भी प्रदूषण और गाद की समस्यायें उत्पन्न हो रही हैं। हमारे लम्बे तटीय क्षेत्र में भी इसी प्रकार की समस्या है। हमारी लम्बी तट सीमा के निकट अंधाधुंध निर्माण करने के कारण हमारे तटीय क्षेत्र बुरी तरह क्षतिग्रस्त हो गये हैं। मैनग्रोव और समुद्री घास सहित तटीय वनस्पति समाप्त होती जा रही है। हमारी पर्वतीय पारिस्थितिकीय व्यवस्था को गम्भीर खतरा है।

हमारी पारिस्थितिकीय व्यवस्था और जीवन रक्षक व्यवस्था पर इन मानवीय जख्मों को देखते हुए विशेषकर शहरी क्षेत्रों में हमें प्रदूषण और अस्वच्छता की गम्भीर समस्या का सामना करना पड़ रहा है। जहरीले अपशिष्ट पदार्थों वाले उद्योगों और अन्य विकास परियोजनाओं से अपूर्णीम क्षति हो रही है। इसके परिणामस्वरूप हमारे जल वाले क्षेत्रों में प्रदूषण फैल रहा है और जलीय वनस्पति और जीव जन्तुओं के विकास पर विपरीत प्रभाव पड़ रहा है।

पर्यावरणीय कुप्रबंध के कारण स्वास्थ्य और उत्पादकता पर पड़ने वाले प्रमुख प्रभावों के बारे में नीचे बताया गया है:

बाक्स 14.1 : पर्यावरणीय कुप्रबन्धन का मुख्य रूप से स्वास्थ्य तथा उत्पादकता पर प्रभाव

पर्यावरणीय समस्या	स्वास्थ्य पर प्रभाव	उत्पादकता पर प्रभाव
जल प्रदूषण तथा जल की कमी	प्रदूषण के कारण प्रतिवर्ष 20 लाख से अधिक व्यक्तियों की मृत्यु हो जाती है तथा अरबों लोग बीमार पड़ जाते हैं; जल की कमी के कारण घरों में सफाई नहीं रह पाती है तथा स्वास्थ्य का खतरा भी बना रहता है।	मत्स्यपालन में कमी आना; ग्रामीण घरेलू कार्यों पर कम समय दिया जाना तथा स्वच्छ जल प्रदान करने में नगरपालिका द्वारा कम खर्च किया जाना; जलभृत हसन के कारण अप्रत्यावर्ती सघनता; जल की कमी के कारण आर्थिक क्रियाकलापों पर रोक।
वायु प्रदूषण	अत्यधिक गंभीर तथा चिरकालिक स्वास्थ्य संबंधी प्रभाव; शहरों में धूल कण के उच्च स्तर के कारण प्रतिवर्ष 300,000-700,000 व्यक्तियों की असामयिक मृत्यु तथा बच्चों की कुल जनसंख्या के आधे को खांसी की चिरकालिक बीमारी; निर्धन तबके के ग्रामीण क्षेत्रों के 400-700 मिलियन व्यक्ति, मुख्य रूप से महिलायें तथा बच्चे घर के धुआं भरे वातावरण से प्रभावित होते हैं।	संकटपूर्ण समय में वाहनों तथा औद्योगिक क्रियाकलापों पर नियंत्रण; वनों तथा जल प्राप्ति के विभिन्न कुएं, तालाब, नदियां आदि पर अम्लीय वर्षा का प्रभाव।

ठोस तथा खतरनाक अपशिष्ट पदार्थ	सड़ रहे कूड़ा-करकट तथा बंद नालियों के कारण बीमारियों का फैलना; खास-तौर से स्थानीय परंतु अक्सर अतिपाती खतरनाक अपशिष्ट पदार्थों से खतरा।	भू-जल स्रोत का प्रदूषण।
मृदा अवक्रमण	मृदाक्षरण के कारण निर्धन किसानों के पोषाहार में कमी; सूखे की अत्यधिक संभावना।	उष्ण कटिबंधीय मृदा के संबंध में सकल घरेलू उत्पाद के 0.5–01.5 प्रतिशत तक खेतों की उत्पादकता में कमी; जलाशय, नदी, परिवहन संबंधी मार्गों तथा अन्य हाइड्रोलोजिक इनवेस्टमेंट के अपतट में गाद भरना।
वनों की कटाई	स्थानीय क्षेत्रों में बाढ़ आने के परिणामस्वरूप जल-माल की हानि तथा बीमारियों का फैलना।	जल जमाव की क्षमता तथा भू-क्षरण को रोकने की क्षमता में कमी; वनों द्वारा जल संभरण स्थायित्व तथा कार्बन पृथक्करण की सुविधा प्राप्त न होना।
जैव विविधता की कमी	नई औषधियों की संभाव्यता में कमी।	परिस्थिति की अनुकूलनीयता में कमी तथा आनुवांशिक संसाधनों का नुकसान।
वातावरण संबंधी परिवर्तन	वेक्टरजनित बीमारियों में वृद्धि की संभावना; मौसम संबंधी प्राकृतिक बीमारियों का खतरा; ओजोन परत के क्षीण होने के कारण बीमारियां (संपूर्ण विश्व में प्रतिवर्ष चर्म के कैंसर के लगभग 300,000 अतिरिक्त मामले; 1.7 मिलियन मोतियाबिंद के मामले)	समुद्र स्तर बढ़ने के कारण तटवर्ती निवेशों को क्षति; कृषि संबंधी उत्पादकता में क्षेत्रीय परिवर्तन, सामुद्रिक आहार श्रृंखला का भंग होना।

स्रोत: विश्व विकास रिपोर्ट 1992 (विश्व बैंक)

पर्यावरण संबंधी ढांचा

संवैधानिक तथा विधिक प्रावधान

जैसा कि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है कि 'संविधान बयालीसवां (संशोधन) अधिनियम' द्वारा राज्य के नीति निदेशक तत्व तथा मौलिक कर्तव्यों में जोड़े गये अनुच्छेद 48(क) तथा 51क(छ) द्वारा राज्यों तथा सभी नागरिकों को पर्यावरण संरक्षण के लिए निदेश दिया गया है।

भारत सरकार के लिए जनसंख्या नियंत्रण और परिवहन नियोजन के अलावा पर्यावरण से संबंधित किसी भी पहलू पर चाहे वे वन, वन्य जीव संरक्षण, भूमि जल अथवा वायु से संबंधित हों पर विधेयक लाने का व्यापक क्षेत्र और गुंजाइश है। पर्यावरण संबंधी सभी समस्याओं से निपटने के लिए हमने पर्याप्त कानून बनाये हैं:

बाक्स 14.2 : भारत के पर्यावरण से संबंधित कानून

विधि	किया गया प्रावधान
जल (प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण) अधिनियम, 1974, 1981 में यथासंशोधित।	जल प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण के लिए केन्द्रीय बोर्ड तथा राज्य बोर्डों की स्थापना।
वायु (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1981, 1988 में यथासंशोधित।	वायु और जल प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण के लिए केन्द्रीय बोर्ड तथा राज्य बोर्डों द्वारा जल प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण संबंधी मामलों को निपटाना।
पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986	केन्द्रीय बोर्ड को कारखानों तथा उन में रखे गये उपकरणों, संयंत्रों तथा रिकार्डों का निरीक्षण करने के लिये शक्तियां प्रदान करना।
जल (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) उपकर अधिनियम, 1977, 1991 में यथासंशोधित।	औद्योगिक जल खपत, स्थानीय प्रशासन, आदि द्वारा जल खपत पर उपकर उद्गृहीत करना।
लोकदायित्व बीमा अधिनियम, 1991	खतरनाक पदार्थों, आदि से संबंधित कार्य करते समय दुर्घटनाग्रस्त हुये—"व्यक्तियों को राहत देने का प्रावधान।"
राष्ट्रीय पर्यावरण न्यायाधिकरण अधिनियम, 1995	खतरनाक पदार्थों से संबंधित कार्य करते समय हुई किसी दुर्घटना से नुकसान का दायित्व निर्धारित करना और राष्ट्रीय पर्यावरण न्यायाधिकरण, आदि स्थापित करना।
राष्ट्रीय पर्यावरण—अपीलीय प्राधिकरण अध्यादेश, 1997	प्रदूषण नियंत्रण संबंधी प्रतिबंध के विरुद्ध अपील के मामलों की सुनवाई के लिये अपीलीय प्राधिकरण की स्थापना।

खतरनाक रसायनों, आर्सेनिक के आयात पर प्रतिबंध लगाने, साइनाइड पारा आदि के प्रबंधन, हैंडलिंग, विनिर्माण, भंडारण आदि के संबंध में विनियमन और अधिसूचनाएं जारी की गई हैं।

संस्थागत सहायता

पर्यावरण से संबंधित समस्याओं को हैंडल करने के लिए संस्थागत सहायता वर्षों पहले स्थापित की जा चुकी है। वर्ष 1972 में मानव पर्यावरण संबंधी एक समिति गठित की गई और वर्ष 1980 में केन्द्रीय पर्यावरण विभाग स्थापित किया गया था तथा सन् 1985 में इस विभाग को मंत्रालय में परिवर्तित कर दिया गया। तत्पश्चात् केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड और राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्डों की स्थापना की गई। वर्ष 1996 के अंत तक केन्द्रीय तथा राज्य बोर्डों द्वारा पर्यावरण से संबंधित 6000 से भी अधिक मामलों को पकड़ा गया। केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड द्वारा चलाई गई गतिविधियों में नर्मदा, ताप्ती, गोदावरी और महानदी आदि जैसी नदियों के बेसिन का अध्ययन तथा नदियों के प्रदूषित भागों का पता लगाना, इको-मार्क स्कीम चलाने संबंधी मानदंड, 1500 से भी अधिक प्रदूषण फैलाने वाले उद्योगों का पता लगाना तथा विभिन्न राज्यों में खतरनाक अपशिष्ट उत्पन्न करने वाले उद्योगों की सूची तैयार करना शामिल है।

योजना निवेश

चौथी पंचवर्षीय योजना में और इसके बाद से पर्यावरण का योजना दस्तावेज में विशेष रूप से उल्लेख किया जाता रहा है। योजना—दस्तावेजों में पर्यावरण पर निर्भर रहने वाले जीवों, पुनर्प्रयोज्य संसाधनों को बचाने, पर्यावरणीय विकास कार्यक्रमों, अवक्रमित पारि-प्रणाली (इको-सिस्टम) को पुन: जीवित करने, पर्यावरणीय सुरक्षा संबंधी राष्ट्रीय नीति, इत्यादि को स्थान दिया गया है।

तालिका 14.1

आठवीं योजना और वार्षिक योजना परिव्यय — पर्यावरण और वन मंत्रालय

(करोड़ रुपये में)

क्षेत्र परिव्यय	सातवीं योजना परिव्यय	आठवीं योजना परिव्यय	वार्षिक योजनाएं				
			1992-93	1993-94	1994-95	1995-96	1996-97
पर्यावरण	110	325	48	70	79	80.0	125.0
राष्ट्रीय नदी संरक्षण आदि	240	350	55	65	78	79.0	106.0
वन और वन्य जीव	155	250	62	85	100	107.5	148.4
राष्ट्रीय वनीकरण तथा पारि-विकास (इको-इनवेस्टमेंट) बोर्ड	292	275	115*	98	103	104.0	90.0
कुल	**797**	**1200**	**280**	**318**	**360**	**370.5**	**469.4**

*26.19 करोड़ रुपए राष्ट्रीय बंजर भूमि विकास बोर्ड को हस्तांतरित कर दिए गए।

स्रोत: वार्षिक रिपोर्ट-1996-97, पर्यावरण और वन मंत्रालय।

प्रदूषण की रोकथाम और नियंत्रण

जल प्रदूषण

निवारण और जल प्रदूषण के लिए शुरू की गई बड़ी योजनाओं में गंगा कार्य योजना, यमुना कार्य योजना और राष्ट्रीय नदी संरक्षण योजना (एन.आर.सी.पी.) शामिल हैं। इन योजनाओं के उद्देश्य नदी जल गुणवत्ता के अवक्रमण को रोकना, नदी प्रणालियों में बहिर्स्राव के बहाव को रोकना, नदी प्रदूषण निगरानी स्टेशन इत्यादि की स्थापना करना है।

वायु प्रदूषण

वायु प्रदूषण औद्योगिक प्रक्रमों, घरेलू स्रोतों, नॉन-प्वाइंट स्रोतों आदि के कारण फैलता है। मद्य निर्माणशालाओं, चीनी मिलों, कागज मिलों आदि से प्रदूषित उत्सर्जन और रसायन हमेशा ही निकलते रहे हैं। घरेलू हीटिंग और कुकिंग, विशेष रूप से जहां जीवाश्म ईंधन प्रयोग किया जाता है, भी वायु प्रदूषण के स्रोत हैं। नॉन-प्वाइंट स्रोतों में लोडिंग और अनलोडिंग कार्यकलाप खुले में कूड़ा-करकट जलाना, कृषि गतिविधियां आदि शामिल हैं। कृषि आधारित उद्योग अपशिष्ट जल और ठोस अपशिष्ट निकालते हैं। बताया जाता है कि भारत के 45 प्रतिशत बड़े और मझौले उद्योग कृषि आधारित हैं और इन उद्योगों के कारण वायु प्रदूषण काफी फैलता है। वायु प्रदूषित रसायन अक्सर कैंसर, श्वसन संबंधी समस्यायें, जन्मजात दोष तथा मस्तिष्क और स्नायुरोगों का कारण बनते हैं।

सामान्यतया भारत के सभी शहरों में शहरी वायु की गुणवत्ता में गिरावट आई है। कुछ शहरों के लिए वर्ष 1993 में राष्ट्रीय पर्यावरणीय इंजीनियरिंग अनुसंधान संस्थान द्वारा विभिन्न वातावरणीय प्रदूषकों हेतु वार्षिक औसत सान्द्रण का रुझान देखा गया था। मुम्बई, कलकत्ता और दिल्ली के लिए यह रुझान नीचे दिए गए चित्र 1 से 3 में दिया गया है।

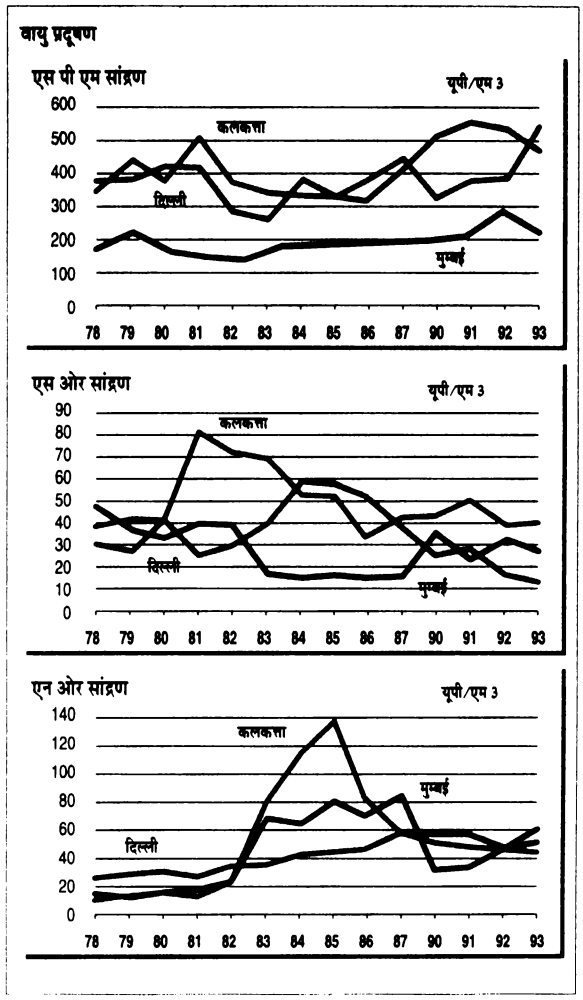

इन चित्रों से यह स्पष्ट है कि एनओ$_2$ (नाइट्रोजन आक्साइड) के सान्द्रण का रुझान मुम्बई, कलकत्ता और दिल्ली के लिए स्थिर बना हुआ है। जबकि एसओ$_2$ (सल्फर डाई आक्साइड) सान्द्रण दिल्ली में घट रहा है, यह मुम्बई और कलकत्ता में थोड़ा-सा बढ़ रहा है। एसपीएम (सस्पेन्डेड पर्टीक्युलेट मेटर) सान्द्रण का रुझान इन सभी शहरों में कुछ बढ़ा हुआ है।

सरकार द्वारा शुरू किए गए वायु प्रदूषण नियंत्रण उपायों में महत्वपूर्ण उपाय ये हैं:

- वायु और जल प्रदूषण उद्योगों के बड़े क्षेत्रों के लिए मानकों की स्थापना और अधिसूचना;
- परिवेशी वायु गुणवत्ता मानकों की स्थापना; देश के सबसे अधिक प्रदूषित 24 क्षेत्रों का पता लगाना और इन क्षेत्रों के लिए कार्य-योजनाएं तैयार करना;
- लघु औद्योगिक इकाइयों के लिए साझे अपशिष्ट उपचार संयंत्रों की स्थापना करने के लिए एक योजना का कार्यान्वयन;
- सड़क पर चलने वाले वाहनों के लिए स्पष्ट उत्सर्जन मानदंडों का प्रतिपादन और अधिसूचना; पूरे देश में कम सीसा वाले पेट्रोल को प्रचलित करना; और
- वाहनों से होने वाले उत्सर्जन का सर्वेक्षण, भारत के महानगरों में वाहनों में लगाए जाने वाले उत्प्रेरक परिवर्तकों की शुरूआत के लिए एक कार्यक्रम का कार्यान्वयन।

भारत के प्रमुख शहरों में वाहनों के अनुमानित प्रदूषण तथा राष्ट्रीय परिवेशी वायु गुणवत्ता मानक संबंधी विवरण नीचे दी गई तालिका में दिया गया है:

तालिका 14.2

12 प्रमुख शहरों में अनुमानित प्रदूषण

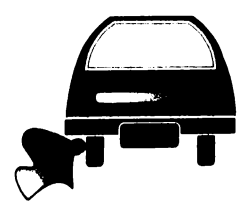

वाहन प्रदूषण भार
(टन प्रतिदिन)

शहर	1987	1994
दिल्ली	871.92	1046.30
मुम्बई	548.80	659.57
बंगलौर	253.72	304.47
कलकत्ता	244.77	293.71
अहमदाबाद	243.94	292.73
पुणे	212.76	255.31
चेन्नई	188.54	226.25
हैदराबाद	169.03	202.84
जयपुर	74.98	88.99
कानपुर	71.99	86.17
लखनऊ	69.58	83.49
नागपुर	47.80	57.39

स्रोत : राज्य सभा का 22.11.1996 का तारांकित प्रश्न सं. 57

तालिका 14.3

राष्ट्रीय परिवेशी वायु गुणवत्ता मानक

प्रदूषक	समय-भारित (वेटेड) औसत	परिवेशी वायु में सान्द्रण औद्योगिक क्षेत्र	रिहायशी, ग्रामीण और अन्य क्षेत्र	संवेदनशील क्षेत्र
सल्फर डाई-आक्साइड	वार्षिक औसत	80	60	15.00
(एसओ 2)	24 घण्टे	120	80	30.00
नाइट्रोजन आक्साइड	वार्षिक औसत	80	60	15.00
एनओ 2 के रूप में	24 घण्टे	120	80	30.00
सस्पेंडेड पर्टिकुलेट	वार्षिक औसत	360	140	70.00
मैटर (एसपीएम)	24 घण्टे	500	200	100.00
रेस्पायरेबल पार्टिकुलेट मैटर	वार्षिक औसत	120	60	50.00
(10 यू.एस. से कम आकार)	24 घण्टे	150	100	75.00
सीसा	वार्षिक औसत	1.0	0.75	0.50
	24 घण्टे	1.5	1.00	0.75
कार्बन	8 घण्टे	5.0	2.0	1.00
मोनोक्साइड	1 घण्टा	10.0	4.0	2.00

स्रोत : दिनांक 25.2.97 का लोक सभा का अतारांकित प्रश्न संख्या 607

भूमि प्रदूषण

ठोस अपशेष तथा उनका निपटान एक बड़ी समस्या है। आय में वृद्धि के साथ-साथ गैर-जैव अवक्रमणकारी अपशेष (नान-बायो डिग्रेडेबल) भी बढ़ रहे हैं। ये ठोस अपशेष निपटान न होने के कारण कृन्तकों और मक्खियों को आकर्षित करते हैं जो रोग फैलाते हैं। यह भूमि तथा जल संसाधनों को भी प्रदूषित और अवक्रमित करते हैं। स्वास्थ्य तथा पर्यावरण संबंधी समस्याओं को कम करने के लिए ठोस अपशेषों के उपयोग के लिए उपयुक्त प्रौद्योगिकियों का विकास करने की आवश्यकता है। ठोस अपशेष तथा उनकी रचना के बारे में नीचे एक विवरण प्रस्तुत किया गया है:

तालिका 14.4

शहरों से प्राप्त ठोस अपशेषों की रचना

विशेषताएं (%)

शहर	नान-डिग्रेडेबल कागज	प्लास्टिक	धातु	सीसा	राख एवं मिट्टी	डिग्रेडेबल
कलकत्ता	3.18	0.65	0.66	0.38	34.00	47.00
दिल्ली	6.29	0.85	1.21	0.57	36.00	35.00
नागपुर	1.88	1.35	1.33	1.34	41.42	34.81
बंगलौर	4.00	2.00	–	1.00	15.00	78.00
मुम्बई	10.00	2.00	3.60	0.20	44.20	40.00

स्रोत : भारत में अपशेषों से ऊर्जा पैदा करने की संभावनाएं, 1996 जैव-ऊर्जा समाचार खण्ड-1, सं.-1, पृ० 8

ध्वनि प्रदूषण

ध्वनि प्रदूषण के कारण श्रवण शक्ति में कमी, ध्वनिक आघात, हृदय-रोग, मानसिक अशांति आदि जैसे विकार और रोग हो सकते हैं। महानगरों में घनी आबादी, मोटर वाहनों और उद्योगों के कारण शोर बढ़ता ही जा रहा है। इसके लिए प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड धन्यवाद का पात्र है कि उसके द्वारा अस्पतालों, रिहायशी क्षेत्रों इत्यादि के आस-पास ध्वनि प्रदूषण को नियंत्रित किया जा रहा है। बोर्ड ने विभिन्न स्रोतों से उत्पन्न होने वाले शोर-शराबे पर नियंत्रण करने के लिए नियम भी बनाए हैं।

राष्ट्रीय नीति संबंधी दस्तावेज

भारत सरकार द्वारा पर्यावरण और विकास की समस्या से व्यापक रूप से निपटने के लिए राष्ट्रीय वन नीति, 1988 और पर्यावरण और विकास संबंधी राष्ट्रीय संरक्षण नीति दस्तावेज, 1992 को स्वीकार किया गया है।

पारिस्थितिकीय प्रणाली में आनुवांशिकी विविधता को बनाए रखने के लिए जैव भंडार स्थापित किया गया है। नम भू-क्षेत्रों, उष्णदेशीय वृक्षों और प्रवाल शैलमाला संबंधी राष्ट्रीय समिति का गठन भी किया गया है। भारत में लगभग 7000 वर्ग कि.मी. क्षेत्र उष्णकटिबंधीय क्षेत्र है जो कि विश्व के उष्णकटिबंधीय क्षेत्र का 7% है। अभी तक 13 नम भू-क्षेत्रों और 15 उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों के प्रबन्धन हेतु प्रबन्ध कार्य योजनाएं बनाई गई हैं। भारत ने 1994 में हुए जैविक विविधता संबंधी सम्मेलन का समर्थन भी किया है।

प्रदूषण में कमी लाने के लिए वर्ष 1992 में स्वीकार किए गए नीति दस्तावेज के अनुसार कानून बनाकर और प्रोत्साहन द्वारा भी स्वच्छ प्रौद्योगिकी को बढ़ावा दिया जा रहा है।

वन

भारत में लगभग 75 मिलियन हेक्टेयर अधिसूचित वन क्षेत्र है। हमारे देश की जनसंख्या के स्वरूप के कारण प्रति व्यक्ति वन क्षेत्र उपलब्धता केवल 0.08 हेक्टेयर है। संशोधित वन नीति (1988) की मुख्य विशेषताएं जैविकीय सन्तुलन का प्रत्यावर्तन और परिरक्षण, राष्ट्रीय विरासत का संरक्षण, मृदा संधारण तथा नदियों के जल ग्रहण क्षेत्रों आदि में वनोन्मूलन पर नियंत्रण, रेत के टीलों के विस्तार पर नियंत्रण, वृक्षारोपण तथा सामाजिक वानिकी के माध्यम से वन क्षेत्र का विस्तार, ग्रामीण लोगों के लिये ईंधन और चारे तथा जनजातीय लोगों के लिये वन उत्पादों का प्रावधान और वनों पर दबाव को कम करने हेतु जन अभियान एवं महिलाओं की भागीदारी है।

विश्व स्तरीय पहल

पर्यावरण के क्षेत्र में विश्व स्तर पर अनेक कदम उठाए गए हैं क्योंकि पर्यावरण संरक्षण प्रत्येक देश की मूल आवश्यकता है। पर्यावरण संरक्षण मानदंडों में समानता सुनिश्चित करने के लिये अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर समन्वित कार्यवाही किए जाने की आवश्यकता है।

बाक्स 14.3 : पर्यावरण संरक्षण के संबंध में अंतर्राष्ट्रीय पहल

1968	यूनेस्को द्वारा आयोजित जैवमंडलीय सम्मेलन; भू संसाधनों के समन्वित उपयोग पर विचार।
1970	खाद्य और कृषि संगठन द्वारा आयोजित मात्स्यिकी विशेषज्ञों का सम्मेलन; समुद्री प्रदूषण के प्रभावों पर चर्चा।
1972	मानव पर्यावरण पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन; स्टॉकहोम; भावी अंतर्राष्ट्रीय आचरण हेतु सिद्धांतों का विकास; एक नई अंतर्राष्ट्रीय पर्यावरण संस्था, यू.एन.ई.पी. का प्रारंभ।
1982	समुद्र संबंधी कानून पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन; समुद्री प्रदूषण पर नियंत्रण सहित समुद्र संबंधी कानून के विभिन्न पहलुओं पर चर्चा।
1992	पर्यावरण और विकास पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन, रियो डि जेनीरो (पृथ्वी शिखर-सम्मेलन); मानवता के समक्ष पर्यावरण और परस्पर जुड़ी अन्य समस्याओं पर चर्चा; रियो घोषणा तथा कार्य सूची 21 का निर्धारण। घोषणा में विश्व सुरक्षा के उद्देश्य की प्राप्ति हेतु व्यक्तियों और राष्ट्रों के आर्थिक तथा पर्यावरणीय आचरण को नियंत्रित करने संबंधी 27 सिद्धांतों का प्रस्तुतीकरण; पर्यावरण संरक्षण को विकास प्रक्रिया के अभिन्न अंग के रूप में मान्यता; कार्यसूची 21 सतत् विकास संबंधी कार्यवाही की रूपरेखा है; इसमें पर्यावरण और आर्थिक कार्यक्रमों के स्थानीय, क्षेत्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रस्तावित कार्यान्वयन हेतु उनके बीच संबंधों को दर्शाया गया है।

कार्यसूची 21

जून, 1992 में रियो डि जेनीरो में हुए संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण और विकास सम्मेलन ने नेताओं को अगली शताब्दी में पर्यावरणीय दृष्टि से विश्वसनीय विकास हेतु एक नीति पर सहमत होने का अवसर प्रदान किया है। यद्यपि पर्यावरण संबंधी अधिकांश समस्याओं पर स्थानीय और राष्ट्रीय स्तरों पर ही विचार किया जाएगा, किन्तु अनेक क्षेत्र ऐसे हैं, जहां परिवर्तन हेतु अंतर्राष्ट्रीय प्रतिबद्धता की आवश्यकता होती है। इन्हें कार्यसूची 21—जो कि अगली शताब्दी की कार्यसूची है—में शामिल किया गया है। सम्मेलन में इस प्रमुख दस्तावेज पर चर्चा की गई। इनमें निम्नलिखित शामिल हैं:

- गरीबी उन्मूलन और पर्यावरणीय स्वास्थ्य के लिए स्वच्छता और साफ जल उपलब्ध कराने, भीतरी वायु प्रदूषण कम करने और बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति जैसे उच्च उपलब्धि वाले कार्यक्रमों हेतु अंतर्राष्ट्रीय सहायता का आवंटन।
- भू-क्षरण और अवक्रमण को कम करने और कृषि व्यवसाय के सतत् विकास के लिए अनुसंधान और इसके विस्तार में पूंजी निवेश।
- परिवार नियोजन और विशेषकर बालिकाओं हेतु प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा के लिए अधिक संसाधनों का आवंटन।
- सरकारों को उनके द्वारा पर्यावरण को क्षति पहुंचाने वाले विकारों तथा वृहत आर्थिक असंतुलनों को दूर करने के संबंध में किए जाने वाले प्रयासों में समर्थन।
- प्राकृतिक पर्यावास और जैव विविधता के संरक्षण हेतु वित्तीय सहायता प्रदान करना।
- जलवायु परिवर्तन के अनुकूल गैर-कार्बन ऊर्जा विकल्पों के अनुसंधान और विकास में पूंजी निवेश।
- संरक्षणवादी दबाओं का प्रतिरोध तथा यह सुनिश्चित करना कि वस्तुओं और सेवाओं, जिसमें वित्त और प्रौद्योगिकी भी शामिल हैं, हेतु अंतर्राष्ट्रीय बाजार खुले रहें।

रियो घोषणा और कार्यसूची 21 को योजना आयोग के समन्वयन से विभिन्न मंत्रालयों के अंतर्गत क्षेत्रीय कार्यवाही के माध्यम से आयोजना प्रक्रिया के अंतर्गत लाथा जा रहा है। एक पर्यावरण कार्य-योजना तैयार की गई है। प्राथमिकता क्षेत्रों के रूप में पर्यावरण प्रबंधन, पर्यावरण प्रभाव का आकलन, पर्यावरणीय शिक्षा, वानिकी, शहरी प्रबंधन, पुनः प्रयोज्य ऊर्जा स्रोत, जल गुणवत्ता प्रबंधन आदि का चयन किया गया है।

सन्दर्भ

क. रिपोर्ट

1. अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष : भारत : इकोनोमिक रिफार्म्स एण्ड ग्रोथ (आई.एम.एफ., वाशिंगटन) 1995
2. अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन : वर्ल्ड इम्प्लायमेंट 1995 (अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन, जेनेवा) 1995
3. इंदिरा गांधी विकास अनुसंधान संस्थान (मुम्बई); इंडिया डेवलपमेंट रिपोर्ट 1997; बकीरत एस. पारिख द्वारा सम्पादित (दिल्ली, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस) 1997
4. एक्सप्रेस इन्वेस्टमेंट वीक, अगस्त, 4.10.1997
5. एशियाई विकास बैंक, एमर्जिंग एशिया : चेंजेस एण्ड चैलेंजेस (ए.डी.बी., मनीला, फिलीपाइन्स) 1997
6. एशियाई विकास बैंक : एशियन डेवलपमेंट आउटलुक, 1996 और 1997 (न्यूयार्क, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस) 1997
7. एशियाई विकास समीक्षा : स्टडीस आफ एशियन एण्ड पेसिफिक इकनामिक इशूज 1993, वाल्यूम II, सं. 2
8. ग्रामीण और औद्योगिक विकास अनुसंधान केन्द्र : भारत में शिक्षा
9. नेशनल काउंसिल ऑफ अप्लाइड इकानामिक रिसर्च (एन.सी.ए.इ.आर.) : दि इण्डियन इन्फ्रास्ट्रक्चर रिपोर्ट : पालिसी इम्पेरेटिव्स फार ग्रोथ एण्ड वेलफेयर (राकेश मोहन समिति रिपोर्ट) 1996
10. पापुलेशन फाउण्डेशन आफ इण्डिया : पापुलेशन पालिसी एण्ड रिप्रोडक्टिव हेल्थ
11. भारत : अंतरिक्ष विभाग, वार्षिक रिपोर्ट 1996-97
12. भारत : उद्योग मंत्रालय, सार्वजनिक उद्यम विभाग : पब्लिक एंटरप्राइस सर्वे 1995-96 (खण्ड-एक)
13. भारत जैव प्रौद्योगिकी विभाग, वार्षिक प्रतिवेदन 1996-97
14. भारत : पर्यावरण और वन मंत्रालय : निष्पादन बजट 1995-96
15. भारत : पर्यावरण और वन मंत्रालय : पर्यावरण और विकास संबंधी नीतिगत विवरण (नई दिल्ली, 1992)
16. भारत : पर्यावरण और वन मंत्रालय : वार्षिक प्रतिवेदन 1996-97
17. भारत परमाणु ऊर्जा विभाग, वार्षिक प्रतिवेदन 1996-97
18. भारत : मानव संसाधन विकास मंत्रालय, महिला और बाल विकास विभाग, विमेन इन इण्डिया, ए स्टेटिस्टीकल प्रोफाइल-1997
19. भारत : मानव संसाधन विकास मंत्रालय : महिला और बाल विकास विभाग : सूक्ष्मपोषकों (विटामिन ए और लौह) के संबंध में कार्यबल की रिपोर्ट
20. भारत : मानव संसाधन विकास मंत्रालय, शिक्षा विभाग : चुनिंदा शैक्षिक सांख्यिकीय आंकड़े 1995-96
21. भारत : मानव संसाधन विकास मंत्रालय, शिक्षा विभाग, वार्षिक प्रतिवेदन 1996-97 (भाग एक)
22. भारत : योजना आयोग : आठवीं पंचवर्षीय योजना 1992-97
23. भारत : योजना आयोग : एप्रोच टु द नाइन्थ फाइव इयर प्लान (1997—2002)
24. भारत : योजना आयोग—नौवीं योजना कार्यग्रुप का प्रारूप : पापुलेशन डायनामिक एण्ड पापुलेशन स्टेबिलाइजेशन
25. भारत : योजना आयोग : वार्षिक रिपोर्ट 1996-97
26. भारत : वित्त मंत्रालय : आर्थिक सर्वेक्षण 1996-97 (पिछले वर्षों के लिए भी)
27. भारत : वित्त मंत्रालय : गवर्नमेंट सब्सिडीस इन इण्डिया, डिस्कशन पेपर, 1997

28. भारत : विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी विभाग, वार्षिक रिपोर्ट 1996-97

29. भारत : शहरी कार्य तथा रोजगार मंत्रालय, शहर तथा ग्रामीण आयोजना संगठन, शहरी सांख्यिकी (अक्टूबर 1996)

30. भारत : श्रम मंत्रालय : वार्षिक प्रतिवेदन 1996-97

31. भारत : सूचना और प्रसारण मंत्रालय : पब्लिकेशन डिवीजन : भारत : ए रेफ्रेंस एनुअल 1996

32. भारत : स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय : वार्षिक प्रतिवेदन 1996-97

33. भारत : स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय, स्वास्थ्य सेवा महानिदेशालय, भारतीय स्वास्थ्य सूचना, 1994

34. मानव विकास केन्द्र (इस्लामाबाद) : ह्यूमन डेवलपमेंट इन साउथ एशिया : 1997 (कराची आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस) 1997

35. युनाइटेड नेशन्स पापुलेशन फण्ड (यू.एन.एफ.पी.ए.) : दि स्टेट आफ वर्ल्ड पापुलेशन, 1997

36. लोक सभा सचिवालय : केन्द्रीय बजट 1997-98; एक आकलन (फरवरी, 1997)

37. लोक सभा सचिवालय : राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों में राष्ट्रपति शासन, 1996

38. लोक सभा सचिवालय : लोक सभा में विभिन्न कार्यवाहियों पर लगा समय : एक आकलन, 1996

39. वर्ल्ड डेवलपमेंट रिपोर्ट 1992 : डेवलपमेंट एण्ड एनवायरनमेंट

40. विश्व बैंक : भारत : फाइव इयर्स आफ इस्टेबलाइजेशन एण्ड रिफार्म एण्ड दि चेलिंजिज अहेड (वाशिंगटन 1996)

41. विश्व बैंक : विश्व विकास रिपोर्ट 1997 (न्यूयार्क, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस) 1997

42. विश्व स्वास्थ्य संगठन : द वर्ल्ड हेल्थ रिपोर्ट 1996 (जेनेवा, 1996)

43. संयुक्त राष्ट्र औद्योगिक विकास संगठन : भारत : न्यू डाइमेंशन्स आफ इंडस्ट्रियल ग्रोथ (यू.एस.आई.डी.ओ., वियाना) 1990

44. संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम : ह्यूमन डेवलपमेंट रिपोर्ट, 1997 (न्यूयार्क आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस) 1997

45. सेंटर फार मानिटरिंग इण्डियन इकोनामी (सी.एम.आई.ई.) प्रोफाइल्स आफ स्टेट्स (सी.एम.आई.ई., मुम्बई) मार्च 1997

46. सेंटर फार मानिटरिंग इण्डियन इकोनामी (सी.एम.आई.ई.) : बेसिक स्टेटिस्टिक्स रिलेटिंग टू द इंडियन इकोनामी (सी.एम.आई.ई., मुम्बई) अगस्त 1994

ख. पुस्तकें

47. एशियन एण्ड पेसिफिक सेंटर फार ट्रांसफर आफ टेक्नोलाजी (बंगलौर), टेक्नालाजी पालिसीज एण्ड प्लानिंग (1986)

48. कपिला, उमा : इंडियन इकोनॉमी सिन्स इंडीपेन्डेन्स, दिल्ली [अकादमी फाउंडेशन] 1995

49. कश्यप, सुभाष सी. : कोअलिशन गवर्नमेंट एण्ड पालिटिक्स इन इंडिया

50. काउंसिल आफ साइंटिफिक एण्ड इंडस्ट्रीयल रिसर्च : साइंस एड्स इंडस्ट्री (नई दिल्ली, 1972)

51. कोहली, जितेन्द्र (सम्पादित) : दि बिजनेस गाइड टू इंडिया [सिंगापुर, बटरवर्थ-हेनेमन एशिया] 1996

52. गोपालन, सरला : टूवर्ड्स बेटर न्यूट्रीशन फार वीमेन एण्ड चिल्ड्रेन; प्रोब्लम्स एण्ड प्रोग्राम्स

53. चिल्लैया, राजा जे. टुवार्ड्स सस्टेनेबल ग्रोथ : एसेज इन फिसकल एण्ड फाइनेंशियल सेक्टर रिफार्म्स इन इण्डिया (दिल्ली, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस) 1996

54. जमाल खान, एम. : पैटर्न्स ऑफ पब्लिक एक्सपेन्डीचर एण्ड फाइनान्स (दिल्ली, प्रगति प्रकाशन) 1993

55. जालान, बिमल : इंडियाज इकोनॉमिक क्राइसिस : द वे अहेड (दिल्ली, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस) 1991

56. ठाकुर दिलीप, एस. : इकोनॉमिक ग्रोथ, डेवलपमेन्ट एण्ड डिस्ट्रीब्यूटिव जस्टिस इन डेवलपिंग कन्ट्रीज (नई दिल्ली, रिलायन्स पब्लिशिंग हाउस) 1996

57. दांडेकर, वी.एम. : द इंडियन इकोनोमी 1947—92, वाल्यूम-2: पापुलेशन, पावर्टी एण्ड इम्प्लायमेंट (नई दिल्ली, सेज पब्लिकेशन्स) 1996

58. पटेल, सुरेन्द्र जे. : इंडियन इकोनॉमी : टूवार्ड्स दि ट्वेंटी फर्स्ट सेन्चुरी (हैदराबाद, यूनिवर्सिटी प्रेस) 1955

59. पारिख, किरीत एस. एण्ड सुदर्शन, आर. (सम्पा.) : ह्यूमन डेवलपमेन्ट एण्ड स्ट्रक्चरल एडजस्टमेन्ट (मद्रास, मैकमिलन इंडिया लिमिटेड) 1993

60. प्रसाद, राजेश्वर : साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी : फ्यूचर पर्सपैक्टिव्ज़ (आगरा, वाई.के. पब्लिशर्स) 1991

61. मराठे, शरद एस. : रेगुलेशन एण्ड डेवलपमेंट : इंडियाज पालिसी एक्सपीरियंस आफ कंट्रोल्स ओवर इंडस्ट्री (न्यू दिल्ली, सेज पब्लिकेशन्स) 1986

62. मलगावकर, टेक्नोलाजीज फॉर इकोनॉमिक डेवलपमेंट (नई दिल्ली, आक्सफोर्ड एण्ड आईबीएच पब्लिशिंग कंपनी लि.) 1987

63. मलगावकर, पी.डी. : क्वालिटी ऑफ लाइफ एण्ड गवर्नेंस : ट्रेण्डस, आपशन्स एण्ड इन्स्टीट्यूशन्स (नई दिल्ली, कोणार्क पब्लिशर्ज प्राइवेट लिमिटेड) 1996

64. मैनपावर, प्रोफाइल इण्डिया इयरबुक, 1996

65. रंगाराव, बी.वी. एण्ड चौबे, एन.पी. (संपादित) : सोशल पर्सपैक्टिव आफ डेवलपमेंट आफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी इन इंडिया (कलकत्ता, नया प्रकाश), 1982

66. राय, एस.के. : इंडियन इंडस्ट्रियलाइजेशन, नई दिल्ली, प्रेन्टिस हाल आफ इंडिया प्राइवेट लिमिटेड, 1990

67. रोथरमुंड, डायटमर (सम्पादित) : लिबरलाइजिंग इंडिया : प्रोग्रेस एण्ड प्राब्लम्स (नई दिल्ली, मनोहर) 1996

68. लवकरे, पी.जे. एवं सहगल, सी.पी. : साईंस एण्ड टेक्नालाजी इन द स्टेट्स एंड यूनियन टेरिटरीज (नई दिल्ली, विले ईस्टर्न लिमिटेड) 1990

69. वर्गीस, के.वी. : इंडियन इकोनॉमी : प्रॉब्लम्स एण्ड प्रास्पेक्ट्स (नई दिल्ली, आशीष पब्लिशिंग हाउस) 1993

70. विश्व बैंक : प्राइमरी एजूकेशन इन इंडिया

71. श्रीवास्तव, ए.बी. : प्रोटेक्ट ग्लोबल इन्वायरनमेन्ट (इलाहाबाद, चुग पब्लिकेशन्स) 1994

72. सक्सेना, के.डी. : एनवायरनमेंट प्लानिंग, पॉलिसी एण्ड प्रोग्राम इन इंडिया (दिल्ली, शिप्रा पब्लिकेशन्स) 1993

73. सत्यमूर्ति, टी.वी. : इंडस्ट्री एण्ड एग्रीकल्चर इन इंडिया सिंस इन्डीपेंडेन्स (दिल्ली, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस) 1995

74. सिंह, बी.पी.एन. : फिसकल पालिसी एण्ड रिसोर्सिज़ मोबिलाइजेशन (नई दिल्ली, दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन्स) 1996

75. सिन्हा, आर.के. (एडीटिड) इंडियाज़ इकोनॉमिक रीफोर्मेज़ एण्ड बियोन्ड (दिल्ली, अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स) 1995

76. सुब्रहमण्या, आर.के.ए. : सोशल सिक्यूरिटी इन डेवलपिंग कंट्रीज (नई दिल्ली, हर-आनन्द पब्लिकेशन्स) 1994

77. सेन, अमर्त्य ड्रेजेजीन : इंडिया : इकोनॉमिक डेवलपमेंट एण्ड सोशल अपोरचूनिटी (आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस) 1996

78. हक, महबूब, उल : रिफलेक्शन्स आन ह्यूमन डेवलपमेन्ट (दिल्ली, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस) 1996

79. हसन, एन. : द सोशल सिक्यूरिटी सिस्टम ऑफ इंडिया (नई दिल्ली, एस. चाँद एण्ड कम्पनी) 1972

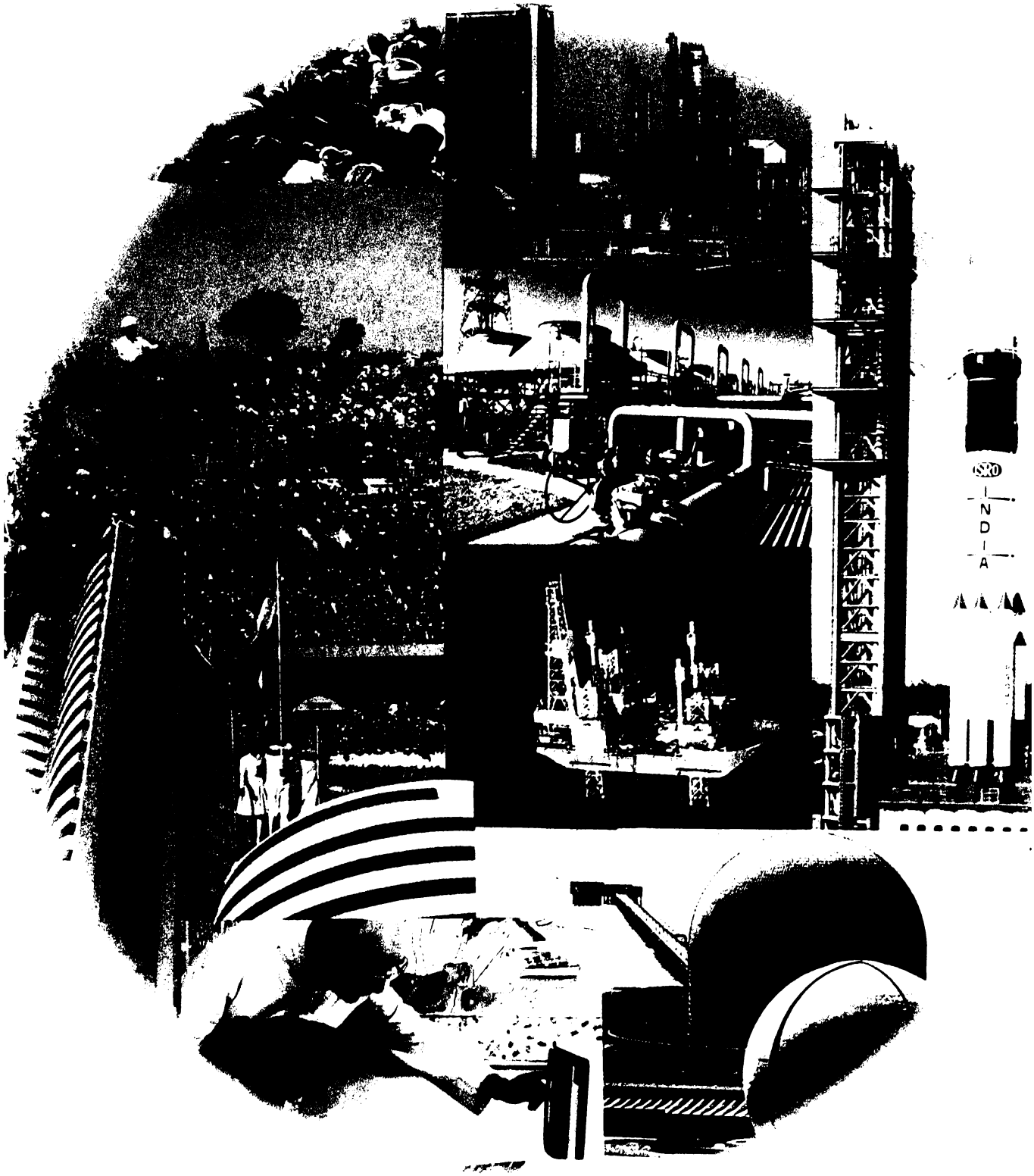

लोक सभा सचिवालय
नई दिल्ली